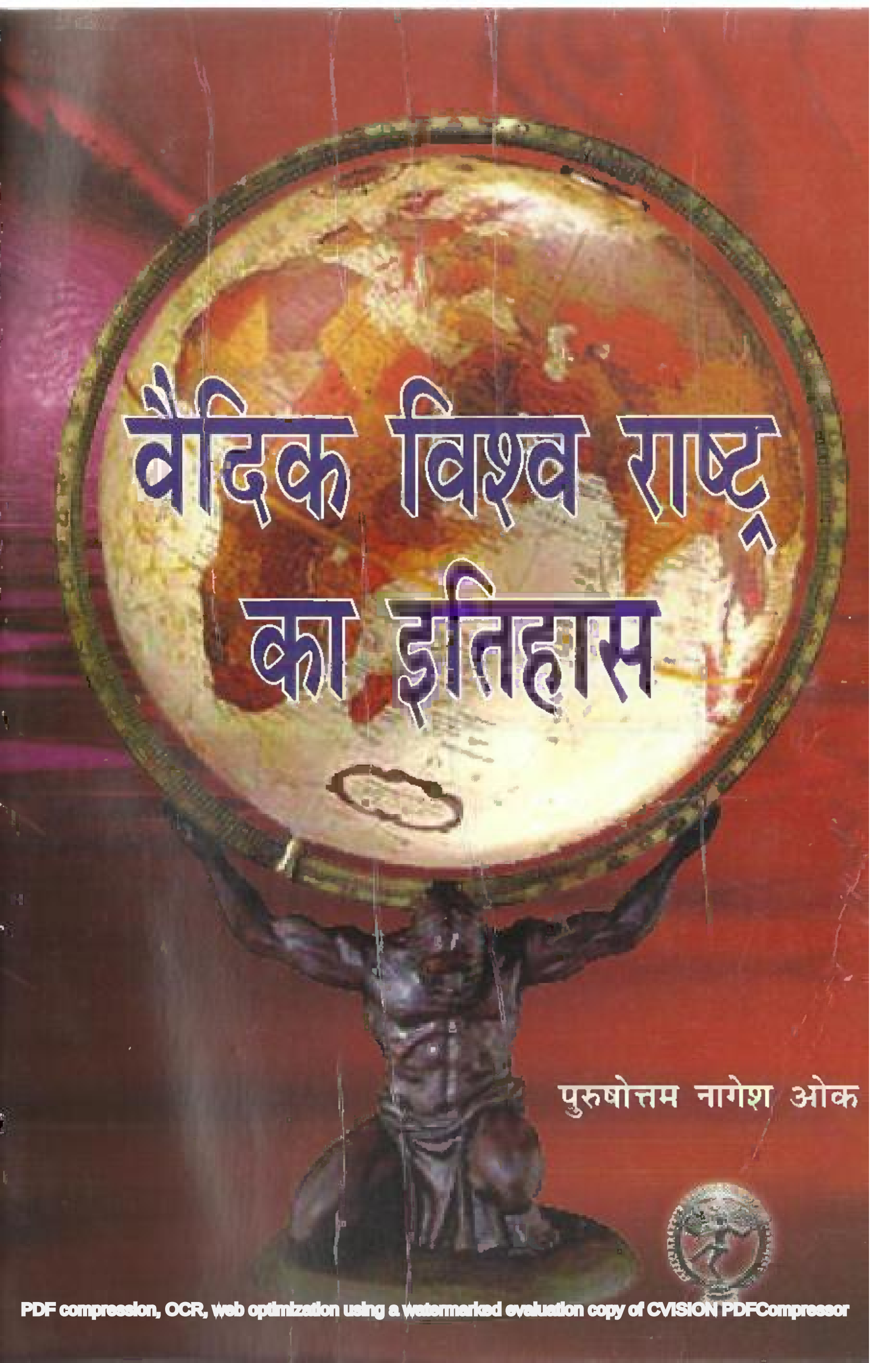

वैदिक विश्व राष्ट्र
का इतिहास
पुरुषोत्तम नागेश ओक

वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास

भाग तीन

लेखक

पुरुषोत्तम नागेश ओक

संस्थापक तथा अध्यक्ष

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान

हिन्दी साहित्य सदन

2, बी० डी चैम्बर, 10/54 डी० बी गुप्ता रोड,

करोल बाग, नई दिल्ली–110005

दूरभाष : 23553624

मूल्य 85.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली -110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन 23553624, 23551344
फैक्स 011-23553624
संस्करण 2009
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स

अर्पण

सार्वजनिक उपेक्षा, उदासीनता और विरोध के फलस्वरूप मेरे अनोखे इतिहास-संशोधन को बीस वर्ष पूरे हो जाने पर भी मुझे ऐसे धनी और पढ़े-लिखे लोग मिलते हैं जो कहते हैं हमने कभी आपके संशोधन की बाबत कुछ वार्ता तक नहीं सुनी। ऐसे अनेक संकटों में मेरा एकमेव जीवन-आधार एक विदेशी दूतावास के सम्पादक पद की मेरी नौकरी भी समाप्त कर दी गई। ऐसी कई संकट मालिकाओं का सामना करते हुए विश्व के झुठलाए इतिहास का भण्डाफोड़ करने का मेरा ज्ञानव्रत एवं सत्यव्रत अविरल और अविचलित चलाते रहने की क्षमता और दृढ़निश्चय जिस परमात्मा ने मुझे प्रदान किया उस भगवान् की कृपा में भी यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

—पुरुषोत्तम नागेश ओक

विषय-सूची

यूरोप खण्ड का वैदिक अतीत

यूरोप के भूगोल के सम्बन्ध में एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस खण्ड के अन्तर्गत कई देशों के नामों का अन्त्यपद "ईय" है, जैसे Russia यानि ऋषीय (ऋषियों का प्रदेश), Prussia (प्र-ऋषय यानि ऋषय प्रदेश से जुड़ा हुआ प्रदेश) जो प्र-ऋषय शब्द है। Siberia (सिबिरीय) का उच्चारण रशिया के निवासी 'शिबिर' ही करते हैं। यह नाम पड़ने का कारण यह है कि वहाँ बहुत हिमपात और गतिमान अतिशीत वायु होने से पक्की बस्ती नहीं होती थी। किसी कार्य (अध्ययन, निरीक्षण, एकान्त या ध्यान समाधि आदि के लिए) हेतु जाने वाले व्यक्ति सीमित समय तक वहाँ शिविर बनाकर रहते और लौट जाते थे। Rumania उर्फ Romania (रोमानिया) रमणीय शब्द ही है। बल्गारिया (Bulgaria) हो सकता है बालिगिरीय शब्द हो जिसका अपभ्रंश बालिगिरीय बनकर बल्गारिया बन गया, क्योंकि यूरोप में रामायण का प्रभाव हम इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग में पढ़ चुके हैं। स्पेन और फ्रांस को मिलाकर वर्तमान युग में इबेरिया (Iberia) कहते हैं जो 'ईबिरीय' शब्द है। कभी सारे यूरोप को ही 'ईबेरिया' अर्थात् ईबरीय कहते थे ऐसा जान पड़ता है। ऐथिओपिया (Ethiopia) एथिओपीय देश है। Austria अस्त्रीय (अस्त्रों का) देश है। Scandinavia स्कन्दनावीय देश है। अर्मेनिया (Armenia) अर्मनीय नाम है। Albania अल्बनीय नाम है। विचार करने पर और भी ऐसे कई नाम या लगभग सारे ही नाम ऐसे मिलेंगे जो वहाँ की प्राचीन वैदिक सभ्यता के द्योतक हैं।

प्राचीन यूरोपीय समाज के चार वर्ण

स्ट्रॅबो नाम के एक प्राचीन ग्रीक विद्वान् ने भूगोल का एक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में पृष्ठ २३० से २३४ पर उल्लेख है कि

"इबेरिया (उर्फ ईबरीय) के अधिकांश भाग में अच्छी खासी एक बस्ती है। उस (ईबरीय) प्रदेश के कुछ भाग (जैसे अर्मेनिया यानि अर्मनीय का एंचिस तथा अल्बानिया उर्फ अल्बनीय) काकेशीय पर्वत शृङ्खला से घिरे हुए हैं (इसी काकेशस् प्रदेश के अधिपति की पुत्री दशरथ पत्नी कैकेयी थी)। इस प्रदेश के निवासियों के भी चार वर्ण यानि वर्ग हैं। प्रथम श्रेणी के वे हैं जिनमें से राजा लोग नियुक्त होते हैं। दूसरा वर्ग पुरोहितों का है। तीसरा वर्ग है किसान और सैनिकों का। चौथे में अन्य जन सम्मिलित हैं। उनके पूज्य देवता हैं सूर्य, बृहस्पति तथा चन्द्र। इबेरिया के समीप एक चन्द्र मन्दिर है। राजा के पश्चात् पुरोहितों का सम्मान होता था। अल्बनीय जन वयोवृद्धों का बड़ा आदर करते हैं। माता-पिता और अन्य सारे ही गुरुजनों को अल्बनीय लोग पूज्य मानते हैं।

ऊपर उद्धृत किए स्ट्रॅबोक्त वर्णन से यह अनुमान निकलता है कि शिबिरीय, इबिरीय आदि नाम सारे यूरोप का निर्देश करते थे। किन्तु आजकल यूरोप के नैक्हल्प के स्पेन-पुर्तगाल-फ्रांस वाले कोने को ही इबेरीय पेनिनसुला (Iberian Peninsula) कहते हैं। इबेरिया नाम ही बिगड़कर यूरोप उर्फ 'ईरुप' यानि Europe बना, ऐसा प्रतीत होता है। विद्वान् मनीषि व वाचक इस पर विचार या संशोधन करें।

स्ट्रॅबो के कथन में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राचीन यूरोपीय समाज में चार वर्ण थे। अन्तर इतना ही है कि स्ट्रॅबो कहता है कि उसके समय में राजा के पश्चात् पुरोहितों का सम्मान होता था। वह तो वैदिक संस्कृति में सर्वदा ही होता रहा है। वर्णों में त्याग और विद्वत्ता की दृष्टि से ब्राह्मण का निर्देश भले ही सर्वप्रथम होता हो किन्तु वैदिक संस्कृति में राजा को ही सबसे अधिक सम्मान प्राप्त था। उन चार वर्णों का उल्लेख सिद्ध करता है कि ईसापूर्व समय में यूरोप में पूर्णत: वैदिक संस्कृति ही थी। यदि ऐसा नहीं होता तो यूरोपीय समाज में ठेठ वही चार वर्ण न होते जो वैदिक समाज-व्यवस्था में होते हैं।

सूर्य, बृहस्पति और चन्द्रमा को देवता कहकर पूजना भी वैदिक संस्कृति का ही अंग है।

स्ट्रॅबो के भौगोलीय ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३४८ पर अदृष्टा

देवी (Adresteia) के नाम का उल्लेख है। एक पूरा जिला भी उसी नाम से जाना जाता था। प्रियापस (Priapus) और पेरियम (Parium) नगरों के मध्य में अदृष्टा (Adresteia) नाम का एक नगर भी था। अदृष्टा यह संस्कृत शब्द 'भवितव्य' का द्योतक है। आगे क्या होगा कौन जानता है? उसी को वैदिक परम्परा में अदृष्ट कहते हैं। उसी का द्योतक देवता का मन्दिर, नगर और जिला यूरोप में होना कितना सबल प्रमाण है कि वहाँ की सभ्यता वैदिक थी। अदृष्टा एक प्रकार से भाग्यदेवी थी जिससे यह प्रार्थना की जाती थी कि "हे देवी भविष्य में हम दीन लोगों पर आपकी कृपा बनी रहे ताकि हमारा अदृष्ट भविष्यकाल भली प्रकार बीत जाए।"

एक अन्य ग्रीक ग्रन्थकार अन्तमुक्तेश (Antimachus) यानि शंकर ने लिखा है कि अदृष्टा (Adresteia) को ही नेमेसिस (Nemesis) भी कहते थे। वह ग्रीक तथा आंग्ल शब्द नेमेसिस (Nemesis) वास्तव में 'नामशेष' यह संस्कृत शब्द है। मानव के नामशेष होने तक का भवितव्य 'अदृष्ट' होता है। अतः इस भाग्यदेवी का निर्देश 'अदृष्टा' या 'नामशेषा' इन दोनों नामों से होना इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि यूरोप में प्राचीन-काल में वैदिक सभ्यता विद्यमान होने के साथ-साथ इस सभ्यता की भाषा संस्कृत भी दृढ़मूल थी।

प्राचीन वैदिक डाक-व्यवस्था

आंग्लभाषा में एक कहावत है 'History repeats itself' यानि मानवी इतिहास में एक जैसी घटनाएँ बार-बार होती रहती हैं। वर्तमान युग में "शासन द्वारा डाक-व्यवस्था चलाई जाती है"। आज लोग यह समझ बैठे हैं कि इसे यूरोपीय लोगों ने ही सर्वप्रथम चलाया, किन्तु यह कल्पना सही नहीं है। प्राचीन वैदिक सभ्यता में भी डाक-व्यवस्था थी। एक मध्य-युगीन यूरोपीय लेखक का कहना है कि डाक-व्यवस्था तो सर्वप्रथम भारतीयों द्वारा ही चलाई गई थी।

A Voyage to East Indies नाम का एक ग्रन्थ है, इसके लेखक हैं Fra Paoline da Tan Bartolomeo। वे रोमा उर्फ रोम नगर की Academy of Valetri के सदस्य थे और Propaganda यानि प्रचार-

संस्था में प्राच्य भाषाओं के प्राध्यापक थे। उन्होंने प्राच्य द्वीपों का जो प्रवास किया उसका उन्होंने वर्णन लिखा। उस ग्रन्थ के पृष्ठ १४७ पर दी टिप्पणी में फार्स्टर लिखते हैं "भारत में डाक-व्यवस्था चालू है। उस डाक-सेवा का नाम है 'अंजला'। प्राचीनकाल में इराण (पारसिक देश) में भी एक प्रकार की डाक-व्यवस्था उपलब्ध थी। उसे 'अंगरस' कहा करते थे। उसमें और अंजला (Angela) में कुछ समानता दीखती है। सम्भावना ऐसी लगती है कि ईराणी डाक-सेवा, भारतीय डाक-सेवा का अनुकरण रूप हो।"

Census संख्या शब्द है

आधुनिक युग में प्रत्येक देश में कितने लोग रहते हैं? उनकी सख्या, उनके कामधन्धे आदि का ब्योरा प्रति दस वर्ष इकट्ठा कर संकलित तथा प्रकाशित किया जाता है। इसे 'सेन्सस' (Census) कहा जाता है। यह आंग्ल शब्द है। वास्तव में यह 'संख्यस्' यानि 'संख्या संकलन' इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। इसे ऐसे कई प्रमाणों से जाना जा सकता है कि राष्ट्रीय या प्रादेशिक संख्या गणन की प्रथा वैदिक समाज व्यवस्था में अन्तर्भूत थी। उपरोक्त बार्टोलोमिओ के ग्रन्थ में उस प्रथा का उल्लेख है। John Philip Wasdin आस्ट्रिया देश का निवासी था। वह बगैर जूतों के नग्न पैरों से ही चला करता था। साधू बनकर उसने Bartolomeo नाम धारण किया था जो संस्कृत 'व्रतावलम्बी' शब्द का ईसाई अपभ्रंश है। उस व्यक्ति का जन्म होस (Hos) ग्राम में सन् १७४८ में हुआ था। उसके प्रवास वर्णन के पृष्ठ २५७ पर उल्लेख है कि "भारत में कोई महिला प्रसूत होने पर पति को स्थानीय सरकारी अधिकारी को अपत्यजन की वार्ता लिखवानी पड़ती थी ताकि उस विशिष्ट जमात की जनसंख्या सदैव पूर्णरूपेण ज्ञात हो सके।" इसी प्रकार सम्बन्धित विभागीय अधिकारी जन्म-मृत्यु की वार्ता और संख्या राजा तक पहुँचाते थे। भारतीय राजाओं के शासन की जनसंख्या का पूरा हिसाब-किताब रखने की यह प्रणाली इतनी प्राचीन है कि स्ट्रैबो नाम के प्राचीन ग्रीक ग्रन्थकार ने भी उसका उल्लेख किया है। इसी प्रकार प्रत्येक मन्दिर के पुरोहित भी अपने क्षेत्र के लोगों की जन्म-मृत्यु की सूची रखा करते थे। प्रत्येक शिशु के जन्म के समय होने वाली विधि के लिए ब्राह्मण बुलाया

जाता था। मन्दिरों के ब्राह्मणों का कर्त्तव्य होता है कि वे निजी विभाग में जन्म, मृत्यु, विवाह तथा प्रत्येक जात-पांत, आदि में होने वाली प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना का ब्यौरा रखें। अतः उन 'वारियर' (Variar) यानि वार्ताविहियों से यानि सामाजिक खाता-बहियों से प्रत्येक घर और कुल के विवाह-सम्बन्ध, नात-गोत, व्यवसाय, जीवन-व्यवहार, सांपत्तिक, सामाजिक तथा शारीरिक परिस्थिति आदि की बारीकियों सहित परिपूर्ण जानकारी उपलब्ध रखना बड़े आश्चर्य की बात थी।"

उपर उल्लिखित ग्रन्थ मूल जर्मन भाषा में है। उसका आंग्ल अनुवाद William Forster ने किया है। चित्र तथा टिप्पणियाँ Jonn Reinbold Forster ने जोड़ी हैं। J. Davis ने आंग्ल अनुवाद Chancery Lane, London में मुद्रित किया। लेखक जान फिलिप वास्डिन् उर्फ बार्तोलोमिओ १७७६ से १७८९ (कुल १३ वर्ष) तक भारत में रहा। इस अवधि के अनुभव उसने निजी ग्रन्थ में लिखे हैं। वह ग्रन्थ रोम में सन् १७९६ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। उसका जर्मन संस्करण सन् १७९८ में Dr. John Reinbold Forster ने प्रकाशित किया।

यह उल्लेख बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बार्तोलोमिओ ने प्रत्यक्ष देखा कि भारत स्थित प्रत्येक मन्दिर के पुरोहित किस प्रकार निजी विभाग में रहने वाले लोगों का पूरा लिखित ब्योरा रखते थे। उस संख्यांकन का ही आधुनिक आंग्ल अपभ्रंश 'संख्यस्' उर्फ Census है।

इससे खण्डित वैदिक प्रथा के पुनर्गठन में बड़ा साहाय्य तो मिलता ही है किन्तु उसके साथ-साथ प्रचलित कुछ भ्रांत कल्पनाओं का भी खण्डन होता है। बहुसंख्य विद्वानों की प्रचलित धारणा यह है कि पाश्चात्य देशों में जैसे विभिन्न कार्यप्रणाली का लिखित ब्योरा उपलब्ध होता है वैसा भारत में प्राप्य नहीं होने के कारण भारत के लोग इतिहास लिखना या विविध कार्यालयों के व्यवहारों का लिखित वर्णन रखना नहीं जानते थे। बार्तोलोमियों के कथन के अनुसार वह धारणा सरासर गलत है क्योंकि भारत के शासकीय अधिकारी और प्रत्येक मन्दिर के पुरोहित विभागीय समाज में अन्तर्भूत प्रत्येक व्यक्ति की तथा घटना की पूरी जानकारी लिखित रूप में रखते थे।

डायोसीस (Diocese) यानि देवाशीश

कृस्ती पंथ परम्परा में बिशप नामक धर्मगुरु के कार्य प्रदेश को डायसीस (Diocese) कहते हैं जो स्पष्टतया वैदिक प्रणाली का देवाशीश शब्द है। प्राचीन वैदिक प्रथा में प्रत्येक मन्दिर के पुरोहित की निगरानी के विभाग को उस प्रदेश के देवता का आशीष या कृपाछत्र उर्फ दयादृष्टि प्राप्य है ऐसा माना जाता था। अत: ऐसे प्रदेश को देवाशीश कहने की वैदिक परम्परा अभी भी है। प्रत्येक विभाग की स्नेहपूर्ण देखभाल और जानकारी परमात्मा के प्रतिनिधि के रूप में प्रत्येक मन्दिर का विद्वान वेदज्ञ पण्डित रखा करे, इससे और परिपूर्ण तथा उत्तम व्यवस्था क्या हो सकती है। कृस्ती पन्थ में भी यही प्रथा प्रचलित है।

वैदिक शिक्षा-पद्धति

बार्तोलोमिओ ने भारत में प्रचलित जो वैदिक शिक्षा-पद्धति देखी लगभग वही सारे विश्व में कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक व्यवहार में थी। महाभारतीय युद्ध से जो सर्वनाश हुआ उससे वैदिक विश्व साम्राज्य भंग होने से वैदिक शिक्षा प्रणाली का यकायक अन्त हो गया। किन्तु उस वैदिक संस्कृति की जड़ें भारत में गहरी गढ़ी होने के कारण वह प्राचीन वैदिक संस्कृति छिन्न-भिन्न अवस्था में ही क्यों न हो, भारत में टिकी रही। इस महान वैदिक शिक्षा वृक्ष की विश्व में फैली हुई शाखाएँ वैदिक विश्व-साम्राज्य नष्ट होने के कारण सूखकर कट गईं। सारे विश्व में वैदिक गुरुकुल शिक्षा ही प्रसृत थी। इसका एक सशक्त प्रमाण वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की प्रचलित परिभाषा में ही पाया जाता है। वर्तमान यूरोपीय शिक्षा-प्रणाली में प्रयोग होने वाली वह परिभाषा पूर्णतया वैदिक संस्कृत है।

अठारहवीं शताब्दी में जो गुरुकुल भारत में विद्यमान थे उनका प्रचलन कैसा था उसका वर्णन बार्तोलोमिओ ने लिखा है। उस समय तक ईसाई पन्थ और इस्लाम, इन दोनों ने मिलकर यूरोप, अफ्रीका आदि विश्व के अन्यान्य प्रदेशों से वैदिक शिक्षा-प्रणाली को नष्ट कर दिया था।

भारत में देखी वैदिक शिक्षा-प्रणाली की बाबत बार्तोलोमिओ लिखते

हैं—'भारत में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली बड़ी सीधी-सादी और सस्ती है। अर्द्धनग्न बच्चे (केरल में) किसी ताड़वृक्ष के तले कतारों में भूमि पर ही बैठ जाते हैं। उँगली से भूमि की मिट्टी पर ही वे बारहखड़ी के अक्षर, संख्या आदि लिखना सीखते हैं। वह काम होते ही मिट्टी पर हाथ फेरकर अक्षर मिटा दिए जाते हैं। उसी पर दुबारा वे अन्य लिखाई करते हैं। इसमें प्रवीण होने पर उन्हें अन्य विद्यालयों में प्रवेश मिलता था जहाँ वे ताड़-पत्रों पर लिखाई सीखते थे। गुरुजी के प्रवेश करते ही बड़ी नम्रता से छात्र साष्टांग प्रणिपात से उनका स्वागत करते थे। दाहिने हाथ की उँगली मुँह पर रखकर वे तब तक चुप रहते जब तक उन्हें बोलने की आज्ञा नहीं दी जाती थी। शिक्षा के प्रमुख विषय इस प्रकार के होते थे—लिखाई तथा हिसाब के तत्व, नियम तथा संकेत आदि। संस्कृत व्याकरण तथा बोल-चाल के नियम तथा पद्धति, अमरकोश का अध्ययन जिसमें देवदेवता, शास्त्र शाखाएँ, रंग, ध्वनि, सागर तथा नदियाँ, मानव, पशु, प्राणि, कला और भारत के व्यवसाय आदि के नाम अन्तर्भूत होते हैं। इससे संस्कृत भाषा और उसकी वाक्य रचना-पद्धति से छात्रों का अच्छा परिचय हो जाता था। गुरु जी श्लोकबद्ध छोटे वाक्यों द्वारा छात्रों को शिक्षा दिया करते थे जिससे छात्र न केवल लिखना-पढ़ना सीखते अपितु शिष्टाचरण और नीतिमत्ता भी सीखते। श्लोकबद्ध नीतिमत्ता के वे नियम छात्रों के मन पर बड़ा अच्छा प्रभाव डालते। उससे व्याकरण के नियम और शुद्ध लेखन तथा सम्भाषण के नियमों का छात्रों को परिचय हो जाता और उनके प्रौढ़ जीवन की नींव डल जाती। उस सिखलाई के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—(१) हम लोग नगरों में ही क्यों निवास करते हैं ? जंगलों में क्यों नहीं ? इसका उत्तर दिया जाता था, "हम इस कारण नगरों में रहते हैं कि हमें एक-दूसरे का सहवास प्राप्त हो, एक-दूसरे का भला कर सकें और अतिथियों तथा पथिकों की हम सेवा कर सकें।" (२) "निन्दा से लगा घाव खड्ग द्वारा किये घाव से गहरा होता है।" (३) "विनय तो प्रत्येक व्यक्ति को शोभा देती है किन्तु विद्वान और धनी को तो विनय अधिक चमकाती है।" (४) "कर्त्तव्यपरायण विवाहबद्ध दम्पत्ति का जीवन मार्ग उतना ही कठिन होता है जितना कि एक साधु की तपस्या का।"

"भारत के उद्यानों में या गुरुकुलों के प्रांगण में शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित होती है। कुछ लोग शिव को अग्नि का रूप मानकर पूजते हैं। गणेश और सरस्वती की मूर्तियाँ भी यहाँ प्रतिष्ठित होती हैं। गणेश शास्त्रीय विद्याओं का तथा विद्वानों का रक्षण करता है। सरस्वती वक्तृत्व और इतिहास की देवता है।

"भारतीय छात्रों को जो अन्य विषय पढ़ाए जाते हैं वे हैं छन्दशास्त्र, आत्मरक्षण, वनस्पतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, नौकायन विद्या, भाला फेंकना, कन्दूक क्रीड़ा, शतरंज, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, स्वाध्याय, पाँच वर्ष तक बिना कोई प्रश्न पूछे कही हुई पढ़ाई चुपचाप ग्रहण करते रहने की शिस्त छात्रों को लगाई जाती है। अन्य देशों में सबको एक ही समान कर्त्तव्य करना होगा ऐसा समझकर एक ही प्रकार की समान शिक्षा सब छात्रों को दी जाती है। भारत में ऐसा नहीं है। प्रत्येक विशिष्ट जाति के अनुसार जिस भारतीय को जो व्यवसाय करना पड़ेगा और जो कर्त्तव्य निभाना पड़ेगा उसे ध्यान में रखकर हर एक की शिक्षा भिन्न प्रकार की होती है। तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब से भारतीय राजाओं को विदेशी आक्रामकों ने परास्त किया तब से भारतीय शास्त्र और विद्याओं का स्तर गिर गया है और प्रान्त के प्रान्त लूटपाट के शिकार बन गए हैं। अनेक व्यवसायों की मिलावट हो गई है। पराए आक्रमणों के पूर्व भारतीय लोग धनी और सुखी होते थे। नीति-नियमों का पालन हुआ करता और न्याय तथा शान्ति का वातावरण हुआ करता था। मैंने स्वयं देखा है कि त्रावणकोर नरेश राम वर्मा की सन्तानों को उसी तरह से शिक्षा दी जाती थी जैसे शूद्रों को।" ऊपर उद्धृत उद्‌बोधक वर्णन बार्तोलोमिओ के प्रवास-वर्णन ग्रन्थ में पृष्ठ २६२ से २६७ पर अंकित है।

ऊपर दिया उद्धरण बड़ा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि २०० वर्ष पूर्व की वैदिक शिक्षा-प्रणाली के गुण उसमें वर्णित हैं। सीधी-सादी शिक्षा-पद्धति से विविध क्षेत्रों में निजी कर्त्तव्य भली प्रकार निभाने वाले उत्तम नागरिक उस निःशुल्क शिक्षा द्वारा तैयार होते रहते। उनका चरित्र अच्छा होता था। धनी हो या दरिद्र, राजा हो या प्रजा, सब एक साथ पढ़ा करते थे। सामाजिक स्तर का कोई भेदभाव नहीं होता था। विश्व भर के शिक्षाशास्त्री

ऊपर वर्णित आदर्श शिक्षा पद्धति से कई सबक सीख सकते हैं।

बार्तोलोमिओ के प्रवास-वर्णन के अनुवादक ने टिप्पणी में लिखा है कि ग्रीक दर्शनशास्त्री Pythogoras ने निजी शिक्षा भारत में ही पाई होगी क्योंकि उसके शिष्यों पर भी पाँच वर्ष तक कोई प्रश्न नहीं पूछने का बन्धन लागू था।

यह आवश्यक नहीं कि पाइथोगोरस की शिक्षा भारत में हुई हो। वह भारत में भले ही आया हो या पढ़ा भी हो किन्तु कहने का तात्पर्य यह है कि किसी की शिक्षा चाहे किसी प्रदेश में हुई हो, यत्र-तत्र-सर्वत्र प्राचीन-काल में वैदिक संस्कृति होने के कारण वैदिक शिक्षा ही दी जाती थी जैसे कि वर्तमान युग में चाहे कहीं पढ़ो, पाश्चात्य यूरोपीय शिक्षा प्रणाली प्रचलित है।

इसी कारण पायथागोरस नाम भी 'पीठगुरु' ऐसा संस्कृत शब्द ही है। हो सकता है कि वह उस व्यक्ति का जन्मदत्त नाम हो या किसी पीठगुरु बनने पर पड़ा नाम हो।

विद्वानों का प्रमाद

जब प्राचीन विश्व के इतिहास में भारतीय और अन्य प्रदेशों के व्यवहार या परिभाषा में कोई समानता पाई जाती है तो वर्तमान विद्वज्जन तर्क-वितर्क करते रहते हैं कि या तो पश्चिमी लोगों ने भारत का अनुकरण किया होगा या भारत ने उनका। यह दोनों अनुमान गलत हैं। समझने की बात यह है कि विश्व के निर्माण से कृस्तपन्थ के प्रसार तक सारे विश्व में वैदिक संस्कृति ही चलती रही। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वह वैदिक संस्कृति टूटी-फूटी लंगड़ी-लूली अवस्था में बसर करने लगी। अन्य प्रदेशों की अपेक्षा भारत में वैदिक संस्कृति की अवस्था अच्छी थी किन्तु फिर भी वह इतनी अच्छी या शुद्ध नहीं रही जितनी कि महाभारतीय युद्ध के पूर्व थी।

संस्कृत विश्वभाषा थी

अनुवादक ने बार्तोलोमिओ के ग्रन्थ के पृष्ठ ३१८ पर लिखी टिप्पणी में बताया है कि केवल टालेमी (Ptolemy) ही नहीं अपितु एरियन

(Arian) और स्ट्रबो (Stabo) के ग्रन्थों में भी संस्कृत शब्द पाए जाते हैं। इसके विपरीत अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक का अनुवाद करते हुए पृष्ठ ३३३-३४ पर लिखी टिप्पणी में अनुवादक जार्ज फार्स्टर (George Forster) कहते हैं, "संस्कृत भाषा ग्रीक लोगों को अज्ञात थी और भारत में भी संस्कृत भाषा का प्रयोग येसू कृस्त के जन्म के पश्चात् ही आरम्भ हुआ है।"

इसी प्रकार John Reinbold Forster और जार्ज फोर्स्टर की सूझ-बूझ में आकाश-पाताल का अन्तर था। प्राचीन ग्रीक विद्वानों को संस्कृत का ज्ञान होना अनिवार्य था क्योंकि महाभारतीय युद्ध तक विश्व में संस्कृत के अतिरिक्त कोई भाषा ही नहीं थी।

संस्कृत भाषा के प्रति जर्मन विद्वानों को बड़ी श्रद्धा, आदर और प्रेम होता है। उदाहरणार्थ आकाशवाणी द्वारा संस्कृत मे कार्यक्रम आधुनिक युग में भारत से भी पूर्व जर्मन देश द्वारा आरम्भ किया गया। जर्मन भाषा का ढाँचा संस्कृत जैसा ही होता है जैसा कि प्रथमा से सम्बोधन तक की विभक्तियाँ, संस्कृत जैसी जर्मन भाषा में भी होती हैं। ऐसा क्यों? वह इसलिए कि जर्मनी में प्राचीनकाल में संस्कृत का प्रचलन होने से उस भाषा के प्रति उनका जन्मजात लगाव रहा है। यद्यपि उस अतीत का वर्तमान युग में किसी को ठीक ज्ञान या स्मरण नहीं रहा तथापि पन्द्रह सौ वर्षों के ईसाई प्रचार से जर्मन लोगों को उनके कृस्तपूर्व इतिहास की विस्मृति करा दी गई है?

जर्मनी में संस्कृत का अध्ययन

आधुनिक युग में जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में संस्कृत का अध्ययन ईसाई पादरियों ने आरम्भ किया। उस अध्ययन में संस्कृत के प्रति प्रेम, यह उद्देश्य न होकर कृस्त धर्म प्रसार के हेतु संस्कृत के अध्ययन को एक साधन बनाना यह मूल उद्देश्य था ताकि संस्कृत के धर्मग्रन्थ पढ़कर उनकी किसी प्रकार निन्दा कर भारत की कर्मठ हिन्दू जनता के मन में हिन्दू धर्म के प्रति घृणा पैदा की जा सके और उन हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा सके।

J. G Harder (१७४४-१८०३) एक जर्मन कवि थे। उन्हें संस्कृत

में रुचि थी। अतः उन्होंने कालिदास रचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक पढ़कर अन्य समकालीन अग्रसर जर्मन कवि गेटे (Goetle) को उस संस्कृत नाटक से परिचित कराया। गेटे का जन्म सन् १७४४ में और मृत्यु सन् १८३२ में हुई। George Forster (१७५४-९४) ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् का जर्मन भाषा में अनुवाद किया है।

Schlegel कुल के तीन भाई वह नाटक पढ़कर बड़े प्रभावित हुए। उनमें से दो भाईयों ने आधुनिककाल में जर्मन देश में संस्कृत भाषा के अध्ययन का आरम्भ किया।

सन् १८१८ में W. Von Schlegel बॉन विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्राध्यापक बना। उसने सन् १८२३ में भगवद्गीता और सन् १८२९ में रामायण के जर्मन अनुवाद प्रकाशित किए।

१८१९ में एक जर्मन विद्वान् Framy Bapp का निष्कर्ष प्रकाशित हुआ कि ग्रीक, लैटिन, फारसी और जर्मन भाषाओं का संस्कृत से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। इससे यूरोपीय विद्वानों को बड़ा आश्चर्य और कौतुहल हुआ। उसके कारण Hegel, Ruckert, Heine और Schopenbour आदि जर्मन विद्वानों ने भारतीय (वैदिक) दर्शनशास्त्रों का अध्ययन किया। अन्य कुछ जर्मन व्यक्तियों ने वैदिक (हिन्दू) धर्म और बौद्ध पन्थ का अध्ययन आरम्भ किया। संस्कृत से परिचित होने पर भी हो सकता है कि Schlegel के ध्यान में एक बात न आई हो कि उसका स्वयं नाम 'श्लेगेल' संस्कृत 'श्लाघा' यानि 'प्रशंसा' से 'प्रशंसनीय' ऐसा पड़ा है।

वैदिक सोमलता

कई लोग अज्ञानवश "वैदिक काल–वैदिक काल" ऐसा उल्लेख करते रहते हैं। इस उद्गार में अनजाने उनकी यह अस्पष्ट धारणा प्रकट होती है कि मानव द्वारा किसी विशिष्ट समय में वेद काव्य रचा गया। यह बड़ी भूल है। वैदिककाल वही होगा जो सृष्टि या मानव की उत्पत्ति का प्रथम दिन था। क्योंकि मानव का निर्माण करते ही इस भवसागर में उसके मार्ग-दर्शन के लिए जो ईश्वरीय ज्ञान-ग्रन्थ मानव को दिया गया उसका नाम है 'वेद'।

वेदों में सूचित क्रियाकर्मों में सोमरस के अनेक गुणों का तथा सोमरस देवताओं को अर्पण करने का उल्लेख बार-बार आता है। सोमरस को पाना या तैयार करना बड़ा महत्त्व रखता था। ऋग्वेद का नौवां मण्डल सोमरस से ही सम्बन्धित है। उस सोमरस के अनेक उपयोग उस मण्डल में अलंकारिक भाषा में वर्णित हैं।

भारत पर एक सहस्र वर्षों के इस्लामी आक्रमणों के कारण सोमरस बनाने की सारी विधि नष्ट और अज्ञात होकर रह गई। किन्तु रूस में उस प्राचीन सोमरस की कुछ जानकारी अभी तक प्राप्य है। क्योंकि Russia ऋषियों का देश था। ओलम्पिक विश्व-क्रीड़ा स्पर्द्धाओं में रूसी अधिकारी अपने देश के क्रीड़ा-प्रवीणों को शक्ति और स्फूर्ति दिलाने हेतु Somotensie (यानी सोमवंशीय) जाति की किसी वनस्पति का आसव पिलाते हैं। उसे भाँग, गांजा जैसा नशीला पदार्थ नहीं माना जाता, अपितु वह एक उत्साह, शक्ति तथा तेज वर्द्धक बूटी मानी जाती है। उस वनस्पति का यूरोपीय शास्त्रीय नाम है Eleu Therococus Senticosus।

ऋग्वेद के अनुसार 'सोम' का बूटा अति प्राचीनकाल में श्येन के राजिक प्रदेश के पार के स्वर्लोक के 'द्यु' प्रदेश में लाया गया था। वह पहाड़ी प्रदेश में पाया जाता है। सुशोमा नदी घाटी के शर्यणवट (Sharyanawat) भाग के Arfikian प्रदेश में पाई जाने वाली सोम वनस्पति बड़ी गुणकारी कही जाती है। वह राजिक प्रदेश, कश्मीर के उत्तर में हिमालय की पहाड़ियों के पार है।

कुछ हरे-पीले ऐसे सोमवल्ली के पत्ते होते हैं। उन पत्तों पर मृदु तन्तुओं का आवरण होता है। उन पत्तों का आकार मोरपंख जैसा होता है। बहते जल में उन पत्तों को धोकर पत्थर से कूटा जाता, उन पत्तों की चटनी में जल मिलाकर उस मिश्रण को कपड़े में से छाना जाता, उस रस को गोदुग्ध या मधु से मिलाकर उसके भिन्न-भिन्न गुणकारी रसायन बनाए जाते।

सोमवल्ली के शक्ति और तेजप्रदायी गुणों के कारण उसकी टहनियाँ या पत्ते वैदिक समारोहों में मण्डप में लगाए जाते। क्रुस्तपंथी लोग क्रिसमस त्योहार में निजी घरों में Holly या Mistletor नामक वनस्पति की

टहनियों या पत्तों को शुभ मानकर जो प्रदर्शित करते हैं वह प्राचीन लुप्त सोमवल्ली का ही अर्वाचीन प्रतीक है।

केल्टिक लोगों की वैदिक परम्परा

"प्राचीन जमातों में सेल्ट उर्फ केल्ट जाति का नाम आता है। वर्तमान आंग्ल भूमि के उत्तरी और पश्चिमी भागों में तथा ब्रिटनि नामक प्रदेश में जो भाषाएँ बोली जाती हैं वे केल्टिक (यानि सेल्टिक उर्फ केल्टिक) कहलाती हैं। किन्तु प्राचीनकाल में पूरी ब्रिटिश भूमि फ्रांस, स्पेन, आल्पस पहाड़ों का प्रदेश, उत्तर इटली, यूगोस्लाविया के कुछ हिस्से और मध्य तुर्किस्तान में भी केल्टिक भाषाएँ बोली जाती थीं। उन सबकी एक विशिष्ट जीवन-पद्धति थो। वे लोग भिन्न व्यावसायिक जमातों में बँटे थे। उनमें राजा का स्थान सबसे ऊँचा होता था। किन्तु राजनयिक तथा सैनिकी मामलों में राजा मन्त्रियों से तथा दरबारियों से मन्त्रणा करता और धार्मिक मामलों तथा शुभमुहूर्तों के बारे में पुरोहितों से सलाह लेता।" यह उल्लेख The last Two Million years, Readers Digest History of Men नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ ४६ से उद्धृत हैं। Readers Digest Association London द्वारा यह ग्रन्थ १९७४ में प्रकाशित हुआ।

वे लोग कौन थे ? विश्व इतिहास से सम्बन्धित ऐसी कई समस्याओं का समाधान हमारे शोधसिद्धान्त में मिलता है कि लगभग ५८०० वर्ष पूर्व हुए महाभारतीय युद्ध तक विश्व के सभी लोग पूरी तरह से वैदिक परम्परा का ही पालन करते थे। महाभारतीय युद्ध के पश्चात संस्कृत भाषा एवम् वैदिक परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई। उसी टूटी-फूटी वैदिक सभ्यता का नाम यूरोप आदि भागों में सैल्टिक उर्फ केल्टिक पड़ा।

प्राचीन 'चोल' साम्राज्य

भाषा परीक्षा में जैसे किसी टूटे-फूटे, आधे-अधूरे वाक्य में सोच-समझकर योग्य शब्द भर कर वाक्य को पूरा और सार्थक बनाना पड़ता है, उसी प्रकार खण्डित इतिहास के अवशेषों का निरीक्षण कर अज्ञात कड़ियों को जोड़ना पडता है। ऐसी ही एक कड़ी 'चोल' नाम में मिलती है।

प्राचीन भारतीय राजघरानों में 'चोल वंश' का नाम प्रसिद्ध है। हाल में इसे अनेक राजवंशों में से एक गिना जाता है। किन्तु हो सकता है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् जिन अनेक छोटे-मोटे राजवंशों का नाम आता है उनमें चोल वंश का साम्राज्य सबसे विशाल रहा हो, क्योंकि उसके चिह्न एक विस्तीर्ण प्रदेश पर बिखरे पड़े हैं। चोल से ही चोल्टिक उर्फ केल्टिक नाम एक बड़े प्रदेश का और उसमें रहने वाले लोगों का पड़ा। इसके प्रमाण हम आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

एक तो यह कि मलयेशिया देश की राजधानी क्वालालम्पुर (Kuala Lampur) है जो स्पष्टतया 'चोलानामपुरम' ऐसा संस्कृत नाम है। उधर ब्रिटिश द्वीपों के स्काटलैंड प्रदेश में 'चोल मण्डल आलय' (Cholomondeley) नाम का एक गाँव है। आंग्ल अक्षर ch का उच्चार 'च', 'ख' या 'क' किया जाता है। अतः Chaldean (चाल्डियन), Khaldean (खाल्डियन), Kelts (केल्ट्स), Celts (सैल्टस) आदि चोल साम्राज्य के निवासी चोलतीय, चोल्डीय आदि के द्योतक हो सकते हैं।

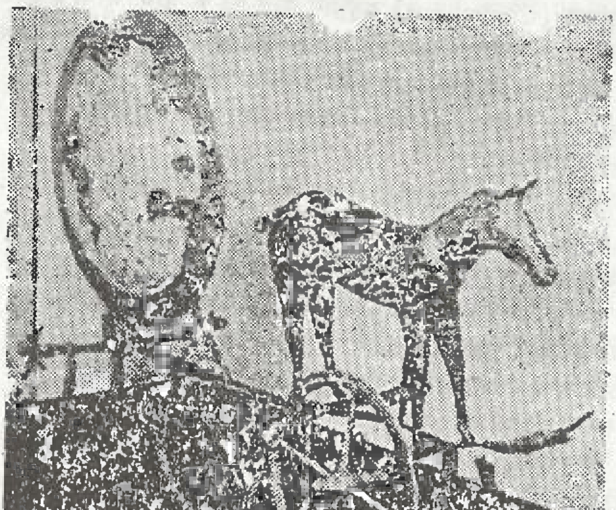
पूर्व में मलयेशिया और पश्चिम में ब्रिटिश भूमि इनके बीचोंबीच भारत में मद्रास के पास का जो सागरतट है उसका Coromondale Coast यानि कारोमोंडेल किनारा यह नाम पड़ा है जो वास्तव में चोलमण्डल का ही अपभ्रंश है। इस प्रकार महाभारतीय युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भग्न वैदिक विश्व साम्राज्य का एक विशाल भू-भाग चोल सम्राटों के अधीन था, यह ऊपर कई प्रमाणों से स्पष्ट होता है।

उस वैदिक साम्राज्य में डाक-वितरण व्यवस्था भी थी तथा जनसंख्या आदि का भी पूरा-पूरा हिसाब-किताब रखा जाता था। यह सब बातें, जो हम विद्यमान यूरोपीय देशों में देखते हैं वे एक प्रकार से प्राचीन भारतीय इतिहास का ही एक नया संस्करण हैं।

धरती और धरती पर जीव सृष्टि का मूल आधार सूर्य ही है। धरती पर हवा, वर्षा आदि का कर्ता-धर्ता भी सूर्य ही है। इस दृष्टि से सूर्य एक प्रकार से नित्य दर्शन देने वाला प्रत्यक्ष भगवान है।

अतः वैदिक संस्कृति में रथसप्तमी एक ऐसा त्योहार होता है जिसमें सूर्य की रथ पर आरूढ़ प्रतिमा दीवार पर या भूमि पर खींचकर उसकी

पूजा की जाती है। प्राचीन यूरोप में भी यही प्रथा थी। यह प्राचीन यूरोप की वैदिक संस्कृति का ठोस प्रमाण है। वैसे सूर्य रथ की लगभग १५०० वर्ष क्रुस्तपूर्व की एक प्रतिमा नीचे के चित्र में प्रदर्शित है। यूरोप के डेन्मार्क देश में Trundholm नाम के गाँव के एक दलदल से सन् १९०२ में यह सूर्यरथ का ढाँचा पाया गया। हो सकता है कि इस रथके सात अश्वों में से बीच का एक ही बचा हो। अश्व चित्र में दिखाई दे रहा है। उसके पीछे जो गोलाकार थाली-सी रथ पर आरूढ़ है वह है सुवर्ण रंग की चमकीली सूर्य की प्रतिमा। सूर्य के उत्तरायण के स्वागत के रूप में रथसप्तमी का पर्व लगभग जनवरी मास के अन्त में पड़ता है।



यह चित्र Readers Digest द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ History of Man : The last two million years १९७४ पृष्ठ ५७ से लिया गया है।

इस ग्रन्थ के शीर्षक में मानवीय इतिहास बीस लक्ष वर्ष का माना गया है जबकि वैदिक संस्कृति के हिसाब से यह वास्तव में लगभग दो अरब वर्ष का बैठता है।

सोव्हियट रशिया की प्राचीन वैदिक सभ्यता

विद्यमान राष्ट्रों में रशिया सर्वाधिक विस्तीर्ण देश है। इस देश में सन् १९१७ में जो राजनीति क्रान्ति हुई उसके फलस्वरूप वहाँ का शासन कम्युनिस्ट (Communist) कहलाने वाले गुट के हाथ आया। Communist यह 'समूहनिष्ठ' ऐसा संस्कृत शब्द है। इस विचारधारा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अपेक्षा सारे देशनिवासी जनसमूह की भलाई की दृष्टि से सारे कायदे कानून, आर्थिक बँटवारा इत्यादि की सामूहिक व्यवस्था की जाती है।

सन् १९१७ की क्रान्ति से उस देश का नाम Union of Soviet Socialist Republics रखा गया है। उस नाम में Soviet यह श्वेत संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। उसी प्रकार का आंग्ल Sovereign (सॉव्हरिन्) यानि 'स्व राजन्' शब्द है। इन उदाहरणों से पता चलता है कि संस्कृत 'श्व' अक्षर यूरोपीय भाषाओं में Sove या Sovi लिखा जाने लगा। रशिया का श्वेत नाम पड़ने का कारण है वहाँ का हिमपात, जिससे सारी भूमि दीर्घकाल या सर्वकाल श्वेत ही दीखती है।

सारे यूरोप पर जब से ईसाई मत थोपा गया तब से यूरोप के वैदिक अतीत के सारे प्रमाण जहाँ तक बने वहाँ तक नष्ट किए जाते रहे। वही हाल रशिया का हुआ। अतः रशिया और यूरोप के लोगों को उनकी प्राचीन लुप्त वैदिक संस्कृति का परिचय कराना आवश्यक है।

यद्यपि Russia शब्द का विद्यमान यूरोपीय उच्चार रशिया है तथापि वह ऋषीय यानि ऋषियों का प्रदेश इस अर्थ का शब्द है। यह उस आंग्ल शब्दान्तर्गत अक्षरों से पता चलता है।

वैदिक परम्परा में यद्यपि ऋषियों का संचार कार्यानुसार सारी पृथ्वी

पर (और अन्तरिक्ष में भी) होता रहता था तथापि व्यक्तिगत साधना, ध्यान, तपस्या, एकान्त आदि के हेतु उन्होंने वह प्रदेश चुन रखा था जो तब से ऋषीय (प्रदेश) कहलाता है। यह तभी हो सकता था जब वैदिक तत्वानुसार सारी मानव जाति एक वसुधैव कुटुम्बकम् मानी जाती थी। सारी पृथ्वी पर जब एक सार्वभौम शासन होता था तब राजपुत्रों की शिक्षा के लिए चुना प्रान्त राजस्थान कहलाने लगा और ऋषियों के उकान्त का प्रदेश ऋषीय (Russia) कहलाने लगा। एक ही घर की विभिन्न कक्षाओं को जैसे पाक-गृह, स्नानगृह, शय्यागृह आदि नाम दिए जाते हैं उसी प्रकार वैदिक संस्कृति के वसुधैव कुटुम्बकम् के अन्तर्गत सारे भूतल को एक घर मानकर उसके विविध भागों को राजस्थान, ऋषिस्थान उर्फ ऋषीय यह नाम दिए गए। विश्व के विशिष्ट प्रदेशों को राजपुत्रों का और ऋषियों का नाम दिया जाना इस बात का प्रमाण है कि कृतयुग से लेकर महाभारतीय युद्ध तक समस्त पृथ्वी पर एक ही वैदिक सम्राट का शासन होता था। इससे पुराणों में कही बातों की पुष्टि होती है।

उस समय भारतवर्ष यह सारी पृथ्वी का नाम था क्योंकि उस पर भरत का शासन था।

Universe इस आंग्ल शब्द का अर्थ है Uni यानि एक संयुक्त और वर्स (Verse) यानि सारी गोल पृथ्वी। बारहमासों का जो एक वर्ष होता है वह सारी (छह) ऋतुओं को समेटने वाला, एक वर्षा से दूसरी वर्षा तक का पूरा काल ऋतुचक्र होता है। उसी प्रकार भारतवर्ष यह भरत के शासन वाली पूरी गोल पृथ्वी कहलाती थी।

अतः भारतवर्ष शब्द को केवल हिन्दुस्थान का द्योतक समझना ठीक नहीं। विश्व में प्रसृत वैदिक संस्कृति का संकोच होकर वह जब केवल भारत में ही समाई रह गई तब से गलती से केवल हिन्दुस्थान को ही भारतवर्ष समझकर भगवान् राम, श्रीकृष्ण आदि की सारी जीवनगाथा भारत में ही घटी ऐसा निर्माण हुआ। जब सारा विश्व भारतवर्ष कहलाता था उस समय हमारा यह देश यन्दुस्थान, सिन्धुस्थान, सिन्धुदेश, जम्बुद्वीप आदि नामों से जाना जाता था।

उस समय रशिया ऋक्षीय प्रदेश कहलाता था। उसी से जुड़ा हुआ

जर्मनी का भाग प्रषीय (Prussia) उर्फ प्रशिया अभी भी कहलाता है जो प्र-ऋषीय यानी ऋषि प्रदेश से संलग्न इस अर्थ का संस्कृत प्र-ऋषीय नाम है। पुराणों के अनुसार ऋषिकुल के प्रजनेता उर्फ प्रजापति कश्यप ऋषि थे। उनकी स्मृति रशिया देश के Caspian Sea यानी काश्यपीय सागर से अभी तक उजागर है।

वैदिक परम्परा के अन्य एक प्रख्यात ऋषि हैं बाल्मीक। उन्हीं के नाम से ऋषीय (उर्फ रशिया) देशान्तर्गत एक प्रान्त का नाम Kalmyk काल्मीक पड़ा है जो वस्तुत: बाल्मीक का अपभ्रंश है। बाल्मीक रचित रामायण की परम्परा वर्तमान ईसाई बने रशियन लोग अभी तक किस प्रकार जतन किए हुए हैं उसका विवरण हमने इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत किया है।

प्राचीन वैदिक वेधशालाएँ

फलज्योतिष विद्या वैदिक सभ्यता का एक विशिष्ट अंग है। प्राचीन ऋषीय देश में उसके चिह्न पाए जाना अनिवार्य था क्योंकि फलज्योतिष, ऋषियों के अध्ययन का प्रमुख विषय था।

ऋषीय देश की प्राचीन वेधशालाओं का वृथा श्रेय उलूघ बेग नाम के मुसलमान को दिया जाता है जबकि इस्लाम में पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त और उन पर आधारित फलज्योतिष विद्या का कोई स्थान, काम या अस्तित्व नहीं होता। अत: उलूघ बेग के नाम दर्ज की गई ऋषीय उर्फ रशिया देश की वेधशालाएँ सारी इस्लामपूर्व परम्परा की हैं।

तैमूरलंग, बाबर आदि बर्बर इस्लामी आक्रामक निजी संस्मरणों में बार-बार फलज्योतिष विद्या का उल्लेख कर बताते हैं कि वे निजी ज्योतिषी से वार्ता-विमर्श से योग्य मुहूर्त आदि पूछकर ही चढ़ाई या लड़ाई का दिन और वेला निश्चित करते थे। इस प्रकार प्राचीन विश्व में फलज्योतिष का अस्तित्व जहाँ-तहाँ इसलिए दीखता है कि वहाँ के लोग क्रुस्ती या इस्लामी बनाए जाने पर भी फलज्योतिष विद्या से इसलिए काम लेते रहे कि उनके पूर्वज वैदिकधर्मी यानी हिन्दू थे और पीढ़ियों से उन्हें उस विद्या में अपार श्रद्धा थी।

अर्वाचीन इतिहास संशोधन का दोष

इतिहास अध्ययन एवं संशोधन की वर्तमान पद्धति में जो अनेक दोष हैं उनमें एक महत्त्वपूर्ण दोष यह है कि उसमें कही-सुनी बातों पर ही विश्वास कर उन्हीं को दोहराया जाता है। जैसे कि देहली में जो प्राचीन वेधशाला है वह जयपुर नरेश सवाई जयसिंह द्वितीय की कहीं जाती रही जबकि दिल्ली-उज्जयिनी-कोलम्बो को जोड़ने वाली भारत की ज्योतिषीय 'ख' रेखा (Meridian) का उल्लेख प्राचीनतम काल से चला आ रहा है। इससे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि कोलम्बो, उज्जयिनी और देहली में प्राचीन वेधशालाएं थीं। देहली और उज्जयिनी में वे वेधशालाएं अब भी हैं। समय-समय पर उनकी देखभाल और दुरुस्ती होती रहती थी। अतः सवाई जयसिंह के समय देहली वाली वेधशाला की विस्तृत दुरस्ती करनी पड़ी होगी क्योंकि बर्बर इस्लामी आक्रामकों द्वारा वैदिक संस्कृति के ऐसे पवित्र, उपयुक्त या अध्ययनस्थल जान-बूझकर तहस-नहस कर दिए जाते थे। उस मरम्मत को ही नव-निर्माण कार्य समझना मध्ययुगीन इतिहास संशोधन की भारी भूल है। मुसलमानों ने भी जब ध्वस्त हिन्दू इमारतों की मरम्मत करवाई या उनमें झाड़ू भी लगवाया तो उन्हीं हमलावरों को उन कब्जा की गई इमारतों का निर्माता कहा गया है।

अतः रशिया में भी जो ऐतिहासिक वेधशालाएं हैं वे इस्लामपूर्व काल की हैं। उनके इतिहास के गहरे अध्ययन की आवश्यकता है।

मोक्षनदी तथा मोक्ष नगरी

रशिया की राजधानी का नाम है Moscow। वह जिस नदी के किनारे है उस नदी का नाम भी Moscow ही है। उस शब्द का स्थानिक उच्चार मस्कवा किया जाता है। वह वास्तव में प्राचीन वैदिक मोक्ष शब्द है। वह बड़ा अर्थपूर्ण है। क्योंकि मोक्ष प्राप्ति ही उन ऋषिओं का ध्येय था। Moscow शब्द को यदि Moesow ऐसा लिखा जाए तो मोक्ष उच्चार होता है।

पर्वतीय गुफाएं

रशिया की पहाड़ी घाटियों में अनेक गुफाएं प्राचीन वैदिक परम्परा

की बनी हुई हैं। भारत में भी अजंता, वेरुल, कार्ले, भाजे, पाण्डव, लेणी आदि कहलाने वाली जो अनेक गुफाएँ हैं, संकुचित दृष्टि से बौद्ध काल की मानी गई हैं। सृष्टि के उत्पत्तिकाल से वेदपाठी गुरुकुल अरण्य से घिरी पहाड़ी गुफाओं में ही हुआ करते थे। इस व्यवस्था की कई विशेषताएँ होती थीं। नगरों से दूर इन स्थलों में सर्वदा शान्ति होती थी। सारा परिसर प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण नयनरम्य होता। शिकार, वनस्पति का ज्ञान, पशु-पक्षियों के जीवन का अध्ययन आदि की वहाँ प्राकृतिक सुविधा होती। चट्टानों की गुफाएँ वर्षा आदि से सुरक्षित और बगैर मरम्मत किए या रंग दिए सैकड़ों वर्षों तक अच्छी खासी बनी रहतीं। शुद्ध वायु और जल सदा विपुल मात्रा में उपलब्ध रहता। चाहे कितने भी प्रेक्षक या अतिथि आएँ तो उनके निवास और भोजन की व्यवस्था सरलता से हो जाती। अधिक कक्षों की आवश्यकता पड़ने पर चट्टानें काटकर कम खर्चे में वे बनाए जा सकते थे। कुशल कारीगरों द्वारा वे गुफाएँ आवश्कतानुसार छोटी-बड़ी, उन्नत या निम्न, ऊँचाई या भू-स्तर पर, सीधी-सादी या महलों जैसी विशाल तथा बारीक सुन्दर विपुल नक्काशी वाली बनाई जातीं।

अत: रशिया में जितनी भी ऐसी गुफाएँ हैं वे नित्य वेदपाठ से गूंजती रहती थीं। ऐसी ही एक गुफा का शोध कुछ वर्ष पूर्व लगा। उसका वर्णन नवम्बर २७, १९८३ के रविवासरीय आंग्ल दैनिक Indian Express में S. K. Malhan ने लिखा है। किन्तु उस लेखक ने भी वही गलतियाँ की हैं जो सामान्यतया सभी आधुनिक विद्वान करते हैं। उन गुफाओं के निर्माण में भारतीय प्रभाव दिखाई देता है या उनकी बौद्ध शैली है या उसमें चीन काल की भी कुछ छटा है इत्यादि निष्कर्ष उस लेखक ने प्रकट किए हैं।

इसमें समझने की बात यह है कि हिन्दू, आर्य, सनातन भारतीय वैदिक शैली ही प्राचीनकालीन गुफाओं, मन्दिरों या राजमहलों में दिखाई देती है। उनको हिन्दू-बौद्ध-जैन-चीनी आदि कहकर उनमें फूट डालना या उनको भिन्न समझना बुद्धिमानी नहीं है। जैसे मन्दिर में चाहे किसी देवता की मूर्ति हो मन्दिर शैली भिन्न नहीं होती वैसे ही किसी मन्दिर में किसी जैन तीर्थंकर की मूर्ति हो या बुद्ध की मूर्ति हो मन्दिर शैली वही रहती है। उदाहरण के लिए कमलासन, अष्टकोणीय आकार, प्रदक्षिणा मार्ग

पूजा, आरती, घण्टानाद, दूध, मधु चन्दन, केशर आदि का अभिषेक आदि आदि।

मल्हन ने लिखा है कि 'रशिया के दक्षिण उज्बेक स्थान में Termey (गाँव) के समीप Kare Tepe पहाड़ी में उत्खनन करते हुए जब सोवियत् पुरातत्वविदों को हाल में एक प्राचीन गुफाशाला के अवशेष दिखे तो सोवियत मध्य एशिया तथा भारत के बीच प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों का एक और सूत्र हाथ आया।''

योगायोगवश समय-समय पर मिलने वाले ऐसे छोटे-मोटे प्रमाणों पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए उन पर से कुछ अल्पस्वरूप अनुमानों के तुषार उड़ाते रहने की वर्तमान विद्वानों की घिसीपिटी कार्य-प्रणाली को बदल देने की आवश्यकता है। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि विश्व के आरम्भ से ईसाई पन्थ तथा इस्लाम के प्रसार तक सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही होने से सारे अवशेषों में वैदिक शैली की समानता दीखना अनिवार्य है। तथापि उनको चीनी, ग्रीक, भारतीय या बौद्ध आदि कहकर उनमें फूट डालना या उनमें भेद करना ठीक नहीं। विश्व भर में जो अवशेष आज तक पाए गए हैं या आगे पाए जाएँगे उन सबको एक वैदिक सभ्यता का अंग मान-कर उनका अध्ययन करना अधिक सरल, लाभदायक तथा तथ्यपूर्ण सिद्ध होगा।

मल्हन के लेख में उल्लेख है कि ''Huai Tsao' नाम का एक यात्री सन् ७२८ ई० में Termey गाँव के परिसर में पहुँचा। उस भेंट के संस्मरण उसने लिखे हैं। उसके अनुसार Huo-To-Lo (यानी 'हुट्टल') के राजा और प्रजा बौद्ध थे। उस प्रदेश में कई बौद्ध विहार थे। एक प्राचीन दस्तावेज में ७वीं शताब्दी के मध्य में समरकन्द (नगर) के कुछ बौद्ध मन्दिरों के जीर्णोद्धार का वर्णन पाया जाता है।''

इससे विद्वानों को यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि समरकन्द नगर में या जिले में जितनी भी ऐतिहासिक मस्जिदें, मकबरे या गिरिजाघर हैं वे सारे कब्जा किए हुए हिन्दू मन्दिर या महल हैं।

उस क्षेत्र का जो वैदिक क्षेत्रपाल था उसका महल समरकन्द नगर में आज भी विद्यमान है किन्तु उसे गलती से तैमूरलंग का मकबरा कहा जा

रहा है। तैमूरलंग के नाम उसमें भले ही कोई झूठी या सच्ची क़ब्र बनी हो किन्तु तैमूरलंग की मृतदेह को दफनाने के पश्चात् वह विशाल इमारत बनाई गई ऐसा तर्क करना कोई बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है। जीते जी कोई किसी दूसरे के लिए महल नहीं बनाता तो एक क्रूर, पापी, दुष्ट, लुटेरे, कातिल तैमूरलंग के निर्जीव, अचेतन, जड़, शव के दफन स्थान पर पहले से लाखों रुपए खर्च कर एक विशाल महल बनाने वाला या बनाने वाले महा-मूर्ख कौन थे ?

मल्हन आगे लिखते हैं कि यद्यपि तीन शिखर वाले उस पहाड़ी के दक्षिण अग्र में ही कुछ पुरातत्वीय उत्खनन अभी हो पाया है तथापि उससे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उस बौद्ध केन्द्र में दर्जनों भिन्न विहार बने हुए हैं। प्रत्येक में कई गुफाएँ तथा मन्दिर, कक्ष, सभागृह आदि बनाए गए हैं। कई स्थानों पर उनकी दो-दो कतारें हैं। कुछ विहारों में स्तूप बने हुए हैं तो कहीं खम्बों वाले दालान थे जिन्हें 'ऐवान्' कहा जाता था। वे गुफा, मन्दिर तथा ऐवान प्राय: रंगीन चित्रों से सजाए गए हैं। चित्र या तो देवताओं के या दान देने वालों के या पौराणिक कथा के प्रसंग के बने हुए हैं।

ऊपर उद्धृत 'ऐवान' शब्द इस्लाम पूर्व वैदिक परम्परा का है। तथापि आधुनिक विद्वान् 'ऐवान-ए-गालिब' आदि वाक्प्रचार सुनकर उस शब्द को इस्लामी मानने लगे हैं। इतिहास का यथार्थ ज्ञान न होने से कैसा विपरीत निष्कर्ष निकाला जाता है उसका यह एक मोटा उदाहरण है।

उससे उल्टा सिद्धान्त यह निकलता है कि इस्लाम का अपना कुछ नहीं है। इस्लाम की परम्परा और परिभाषा सारी वैदिक संस्कृति ही है।

Kara-Tepe नामक स्थान पर किए गए पुरातत्वीय उत्खनन की एक विशिष्टता यह है कि वहाँ विभिन्न भाषा तथा लिपियों के शिलालेख पाए गए हैं। उनमें कुछ तो ग्रीक वर्णमाला वाली कुशान लिपि में, ब्राह्मी में, खरोष्ठी में, मध्य इराणी लिपि में और अभी तक न पढ़ी जाने वाली किसी अरेमाइक लिपि में हैं।

वहाँ दीवारों पर रंगीन चित्रकारी भी दिखाई दी है। उनमें से कई भारतीय चित्रकारों द्वारा बनाए गए हैं। वहाँ की बुद्ध मूर्तियाँ भारतीय मूर्तियों जैसी हैं। स्थानिक लोगों के पास कुछ संस्कृत में लिखे दस्तावेज भी

पाए गए। रेशम, कागज आदि कुछ प्राचीन सामग्री भी प्राप्त हुई।

इसी प्रकारकी संस्कृत सामग्री अन्य देशों में भी थी। अभी भी होगी। किन्तु वह छिपी होगी, छिपा दी गई होगी या नष्ट कर दी गई। ईसाई और इस्लामी बनाए लोगोंको उनके नेताओं ने संस्कृत सामग्री छिपाने को या जलाने को बाध्य किया।

मल्हन ने एक रशियन संशोधक S. Oldlenburge (१८६३-१९३४) का उल्लेख किया है। ओल्डेनवर्ग ने भारतीय इतिहास, संस्कृत तथा पौराणिक कथाओं के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख लिखा है। ओल्डेनबर्ग का वह कार्य पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही सम्पन्न हुआ होगा अन्यथा यकायक उसके अन्य देशों को छोड़ भारतीय परम्परा में ही रुचि निर्माण होने का क्या कारण ?

उन प्राकृतिक पूर्व संस्कारों के कारण ही ओल्डनबर्ग ने अन्य विद्वानों से भिन्न औरहमारे कथन से पूरी तरह मेल खाने वाला निष्कर्ष यह निकाला है कि "बौद्ध कला कोई भिन्न नहीं है, वह परम्परागत प्राचीन भारतीय चित्रकला का ही एक अंग है। क्योंकि बौद्ध परम्परा का भारत में अन्त होने पर भी भारत से चित्रकला, मूर्तिकला आदि का अन्त नहीं हुआ।"

भारतीय चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला आदिका अध्ययन, अध्यापन करने वाले पराए लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारत की परम्परा को बौद्ध, जैन आदि कहकर उसकी तोड़-मरोड़ करना अयोग्य है। Kara-Tape यह परंतप (यानी शत्रु को ताप देने वाला वैदिक वीर) जैसा कोई संस्कृत शब्द है।

चीनी तुर्कस्थान में ओल्डेनबर्ग को सहस्र बुद्ध मूर्तियों वाली एक गुफा का पता लगा। वैदिक परम्परा में 'सहस्र' का उल्लेख बार-बार आता है। जैसे सहस्र दल कमल या मदुराई का मीनाक्षी मन्दिर तथा रामेश्वर मन्दिर के एक-एक सहस्र स्तम्भ। इस गुफा की छत और दीवारों पर रंगीन चित्रकारी है, दीवारों पर कई वैदिक देव देवता दर्शाए गए हैं।

चीनी तुर्कस्थान में महाभारत की झाँकी

Kurgan-Tube नाम का एक नगर उस प्रदेश के Vakhash घाटी

(Valley) में है। उस नगर से १० किलोमीटर दूरी पर Arin-Tepe (अरितप भी संस्कृत परंतप अर्थ का ही शब्द है) नाम के स्थान पर एक प्राचीन (वैदिक) मठ पाया गया। वहाँ एक विशालकाय मूर्ति का टूटा हाथ पड़ा है। उसका केवल एक अँगूठा ही पूरे जीवित मनुष्य के आकार का है। उससे उस अरितप की मूर्ति की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

Kurgan यह कुरुगण शब्द है। परंतप शब्द भगवद्गीता में बार-बार आता है। जिस विशालकाय मूर्ति का वह टूटा हाथ पाया गया, वह भीम की मूर्ति हो सकती है।

आधुनिक विद्वानों का दोष—विदेशी विद्वानों का और उनकी बनाई प्रणाली की शैक्षणिक उपाधियाँ पाने वाले भारतीय अध्यापक, प्राध्यापक तथा अन्य विद्वानों का यह दोष रहा है कि वे प्राचीनतम अवशेषों को बौद्ध निर्माण ही समझते रहे हैं। उससे पूर्व महाभारत तथा रामायणकाल की मूर्तिकला, चित्रकला आदि का होना अवश्यम्भावी है, यह वे भूल ही गए।

पुरातत्व में वाक्प्रचार का महत्त्व— चीनी तुर्कस्थान में कुरुगण परंतप आदि महाभारतकालीन वाक्प्रचार का अभी तक रूढ़ रहना एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण है। पुरातत्व में आज तक के विद्वान् केवल भूमिगत अवशेषों का ही अन्तर्भाव करते हैं। पुरातत्व में पारिभाषिक अवशेषों का भी अन्तर्भाव अवश्य होना चाहिए। क्योंकि कई बार मानवनिर्मित चित्र या इमारतें आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर भी लाखों मुखों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आ रहे वाक्प्रचारों में कई मौलिक प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति अवशेष सुरक्षित पाए जाते हैं। अतः पुरातत्वीय अध्ययन में पारम्परिक वाक्प्रचारों का विचार और विवरण करना आवश्यक समझा जाना चाहिए। इसे केवल काकतालीय समानता समझकर उपेक्षित करने की आज तक की प्रथा त्याग देनी चाहिए।

तुर्कमानीय (Turkemania) प्रदेश के Merve गाँव में एक प्राचीन मन्दिर पाया गया। उसमें एक स्तूप, एक मठ और एक गर्भस्थान बना हुआ था। स्तूप पर चढ़ने के लिए एक जीना बना हुआ है। उस मन्दिर में बनी मिट्टी की एक विशाल बुद्ध मूर्ति इस्लामी आक्रामकों ने नष्ट कर दी।

चंगेजखान पर वृथा दोषारोपण—चंगेजखान एक बौद्धमत्त हिन्दू

विजेता था जिसने दुष्ट और क्रूर इस्लामी हमलावारों की मिट्टी अनेक बार पलीद की। इसके फलस्वरूप इस्लामी लेखकों ने चंगेजखान को क्रूरकर्मा कहकर लम्बे-चौड़े प्रदेशों में आतंक और तबाही मचाने का दोष देकर प्राचीन इमारतें, मन्दिर, मठ आदि नष्ट करने का अपराध चंगेजखान के माथे पर थोप दिया।

सारे विश्व में वैदिक प्रणाली (जिसमें बौद्ध, जैन आदि सारे उप प्रवाह सम्मिलित हैं) के बिखरे हुए मन्दिर, मठ, मूर्ति या गुफाएँ, स्तूप आदि ईसाइयों ने और मुसलमानों ने नष्ट किए। उस विध्वंस पर ईसाई लोग इसलिए चुप हैं कि शायद उन्हें उसका दोष किसी अन्य व्यक्ति या जाति पर मढ़ देने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु मुसलमानों ने की हुई विश्व-भर की तबाही और लूटपाट उन्होंने चंगेजखान या भारत के जाट तथा मरहठ्ठे आदि के मत्थे गढ़ दी है। इस्लामी इतिहास लेखक तथा मुसल-मान अध्यापक-प्राध्यापकों की उस हेराफेरी से जनता को सावधान रहना चाहिए।

चंगेजखान का पोता ही उस कुल में प्रथम मुसलमान बना। अतः प्रत्येक मुसलमान हिन्दू बापदादों का वंशज है यह हमारा निष्कर्ष चंगेजखान के कुल को भी लागू है।

मुसलमानों की उस चाटुकारी के कारण ही अरबस्थान का पूरा इतिहास सारे विश्व को उल्टा पढ़ाया गया है।

यूरोप के विद्वान् भी मुसलमान लेखकों की उस चाटुकारी और हेरा-फेरी के कारण समझे बैठे हैं कि अरबस्थान में इस्लाम की प्रस्थापना होते ही अरबों में विद्या और कला को उत्तेजना मिली। अरब बड़े विद्वान् और कलाकार हो गए और जब एक तरफ अरबी सेनानी विश्वभर में मारकाट कर रहे थे दूसरी तरफ अरबी विद्वान् विद्वत्ता और कला के दीप लगाते चले गए।

सच बात तो यह है कि महाभारतीय युद्ध तक अरबस्थान में भी वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा होने के कारण वंश विद्या और कला उच्चतम अवस्था में थी। तत्पश्चात् गुरुकुल शिक्षा पद्धति और वैदिक शासन टूट जाने से विश्व के अन्य देशों की तरह अरबस्थान में भी विद्या और कला का

स्तर गिरता गया। तथापि इस्लाम की स्थापना के बाद तो बची-खुची शान्ति, सभ्यता और विद्या पूर्णतया लुप्त हो गई। उसे एक प्रकार का ग्रहण लग गया और मारकाट, लूटपाट तथा निरक्षरता का जो दौर आरम्भ हुआ उसी का नाम इस्लाम है।

अन्य देशों पर आक्रमण कर मुसलमानों ने वहाँ की बची-खुची इमारतें तथा नगर इस्लाम द्वारा निर्मित कहना आरम्भ कर दिया। अतः जैसा कि मैंने 'ताजमहल हिन्दू मन्दिर भवन है' अपनी इस पुस्तक में मैंने समझाया है कि विद्वानों को प्राचीन इमारतों का पुनः अध्ययन-निरीक्षण करना आवश्यक है। स्पेन देश में कार्डोव्हानगर की एक विशाल इमारत को मुसलमानों की बनाई मस्जिद कहा जाता है तथा अलहम्ब्रा महल इस्लामी वस्तु समझी जाती है। वह निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हो सकते हैं। क्योंकि भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतें मेरे संशोधन से इस्लामपूर्व सिद्ध हुई हैं। ताजमहल पुस्तक में दिए गए मेरे उस सुझाव के अनुसार एक अमरीकी विद्वान् ने स्पेन देशान्तर्गत उन प्राचीन इमारतों की प्राथमिक जाँच-पड़ताल की। उस जाँच से उसे पक्का विश्वास हो गया कि वे इस्लामपूर्व की इमारतें हैं।

शंकर की प्रतिमा या बुद्ध की ?—हो सकता है कि पाश्चात्य ईसाई पुरातत्वविदों ने या मुसलमानों ने वैदिक देवताओं के अवशेषों को बौद्ध अवशेष ही समझा हो या बौद्धों ने प्राचीन वैदिक देवताओं की मूर्तियों में कुछ अदल-बदल करके उन्हें बौद्ध रूप दे दिया हो।

यह शंका आने योग्य एक घटना मल्हण के ऊपर कहे लेख में उल्लिखित है। करधाना (उझवे के स्थान) प्रदेश के Kuva गाँव में एक प्राचीन मन्दिर पाया गया जिसमें एक विशाल मूर्ति के ललाट पर तीसरी आँख भी है। फिर भी पुरातत्वविद उसे बुद्ध ही कहते हैं। तो हो सकता है कि बुद्ध भक्ति में बह कर लोगों ने भगवान शंकर की तीन चक्षुवाली मूर्ति को बुद्ध के रूप में ही ढालना आरम्भ कर दिया हो या बुद्ध को शंकर का रूप दे डाला हो या बुद्ध को शंकर का ही अवतार मानकर उसे तीसरा चक्षु भी दे दिया हो।

इसी प्रथा के अनुसार शेषशायी विष्णु की मूर्ति की नकल कर बौद्धों ने भी बुद्ध की प्रतिमाएँ लेटी हुई बनानी आरम्भ कर दीं। विष्णु को शेषशायी बताने का प्रमुख कारण यह है कि भगवान विष्णु के गर्भ से ब्रह्मा

का जन्म होने का वह चित्र है इसलिए प्रसूति के समय भगवान का लेटे रहना स्वाभाविक है। किन्तु बुद्ध को लेटा हुआ बताने का कोई प्रयोजन नहीं। किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति की मूर्ति सामान्यतया लेटी हुई बताना शिष्टाचार नहीं है।

बौद्धों ने जैसे ही निजी पन्थ को वैदिक प्रथाओं में ढालना चाहा वैसे ही ईसाईयों ने भी कृष्णजन्म कथा पर ही क्रुस्त के जन्म की कहानी ढाल दी। लताओं को जैसे वृक्षों के सहारे से ही खड़ा होना आता है उसी प्रकार नए पन्थों को भी आद्यतम (वैदिक) परम्पराओं का सहारा लेकर ही उठना पड़ता है।

शिवरीय प्रदेश

राजधानी मोस्को (उर्फ मोक्ष) के पूर्व में Sibreia (यानि शिबिरीय) नाम का बड़ा विस्तीर्ण प्रदेश है। उसे रशियन जनता स्वयं 'शिबिर' ही कहती है। वह संस्कृत शब्द ही है। वह नाम पड़ने का कारण यह है कि उस प्रदेश में बहुत शीत और तेज वायु तथा हिमपात के कारण जन बस्ती बहुत ही विरल है। अधिकतर लोग वहाँ किसी निरीक्षण, अध्ययन आदि कार्यवश जब आते हैं तो उन्हें वहाँ शिबिर बनाकर ही रहना पड़ता है। उस प्रदेश का यह संस्कृत नाम पड़ना उसकी प्राचीन वैदिक संस्कृत परम्परा का द्योतक है।

श्वेत

Soviet Russia यह श्वेत (हिमाच्छादित) ऋषीय ऐसा नाम है, यह हम ऊपर कह ही चुके हैं। वहाँ के एक आधुनिक सर्वाधिकारी शासक Stalin की पुत्री का नाम श्वेतलाना (Svetlana) कहा जाता था जो वस्तुत: श्वेतानना यानि गौरवर्णी या गोरे रूपवाली, गोरे चेहरे वाली—इस अर्थ का संस्कृत अपभ्रंश है।

बल सेविक

रशियन लोगों को बोल्शेविक कहा जाता है। वह बल सेविक यानि बल की उपासना करने वाले इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। उस प्रदेश में जब

ऋषि लोग रहा करते थे तब सब प्रकार का बल (तपोबल, विद्याबल, शस्त्र-बल) आदि प्राप्त करना ही उनका ध्येय था। उसी को वे सारा निजी जीवन बताते थे। अतः उन्हें बल सेवक उर्फ बलसेविक ऐसा नाम पड़ा जो आधुनिक काल में बोल्शेविक बोला जाता है। उन ऋषि-मुनियों में सारे ही शक्ति अथवा बल के सेवक थे। विद्युतशक्ति, आध्यात्मिक, नैतिक, शस्त्रास्त्र का बल या मन्त्र-तन्त्र का बल ऐसे उसके भिन्न-भिन्न प्रकार होते थे।

ग्राम

रशिया में नगरों के नामों के अन्त पद कई बार ग्राद होते हैं। जैसे स्टालिनग्राद, लेनिनग्राद। वह संस्कृत ग्राम शब्द का अपभ्रंश गाँव या गाम हुआ जैसे विरमगाम या पिंपकगाँव। रशिया के नगरों का नाम ठेठ संस्कृत उच्चारण के अनुसार स्टालिनग्राम, लेनिनग्राम होना चाहिए था। उसके बजाय वे नगर 'ग्राद' कहलाते हैं।

कृष्ण

भारत के समान ही यूरोप में भी कृष्ण नाम बड़ा ही लोकप्रिय था। जहाँ भी क्राइस्ट, क्रस्तीना, क्रस्नन आदि नाम पाए जाएँ वहाँ समझ लेना चाहिए कि वह कृष्ण या कृष्णा इन शब्दों के बिगड़े उच्चारण हैं। संस्कृत "ष्ण" जोड़ अक्षर का भारत में और यूरोप में भी ष्ट अपभ्रंश हुआ है। जैसे भारत के कन्नड़ प्रदेश में किसी का नाम कृष्ण रखा हो तो कृष्ट का कृष्टप्पा पुकारा जाता है। बंगाली लोग भी कृष्ण को कृष्ट या कैस्टो कहकर बुलाते हैं।

वृष्णु का भी विष्टु, विष्ठु और विठु अपभ्रंश होते हैं। जैसे भारत के जमशेदपुर नगर में विष्टुपुर विभाग है जो मूलतः विष्णुपुर है।

ग्रीस नाम जीझस (iesus-Jesus) और कृष्ण नाम कृष्ट उच्चारा जाने लगा। अतः ईशस कृष्ण का ही जीझस् क्राइस्ट उच्चार रूढ़ हुआ। यह भी एक प्रमाण है कि जीझस क्राइस्ट नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं। कुछ कृष्णपन्थी आततायी, सत्तापिपासु व्यक्ति जब अन्य पन्थियों से अलग फूटकर एक नए पंथ के नाम से सत्ता, अधिकार और सम्पत्ति हथियाने का प्रयास करने लगे तो उस उच्चार भेद का लाभ उठाकर जीझस

क्राइस्ट एक अलग ही व्यक्ति था ऐसा दुराग्रह करते हुए उन्होंने जीझस क्राइस्ट नाम से एक ऊट-पटांग काल्पनिक चरित्र ढाल दिया। उसी कपोल-कल्पित जीझस कृस्त पर कृस्ती धर्म उर्फ पन्थ का सारा ढाँचा खड़ा कर दिया गया है।

रशिया का कृष्ण नगर

रशिया के साइबेरिया उर्फ शिबिरीय प्रदेश में राजधानी मास्को के लगभग २००० मील पूर्व में स्थित एक नगर का नाम कृष्णोयारक (Kresnoyarak) है जो स्पष्टतया कृष्ण के नाम से बसा हुआ है। इस प्रकार यूरोप में अनेक नगर कृष्ण नाम से या कृष्ण के विविध नामों से बसे होने चाहिएँ। उनका पता लगाकर उनकी सूची बनाना एक मौलिक शोधकार्य हो सकेगा।

यूरोप और एशिया में कृष्णपंथ

भक्ति वेदान्त प्रभुपाद द्वारा यूरोप और अमेरिका में चलाया हुआ एक कृष्णभक्ति पन्थ है जो ISKCON (International Society for Krishna Consciousness) यानि 'अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण साक्षात्कारी संघटन' कहलाता है।

मदिरा और मांसभक्षी यूरोपीय विद्वानों ने सूट-बूट त्याग कर सहस्त्रों की संख्या में पूरे वैष्णवपन्थी बनकर सच्ची कृष्ण भक्ति का आधुनिक युग का एक चमत्कार-सा दिखा दिया।

और तो और कड़े निर्बंधवाले कम्युनिस्ट रशिया देश में भी इस आधुनिक कृष्णपन्थ का चंचुप्रवेश हो गया है। योगायोग रामकृष्णयारक नगर में ही उस कृष्णपन्थ की प्रथम शाखा स्थापित हुई है।

वेदपाठ

इस सम्बन्ध में Sotsialisti Cheskaya Industrija नाम के रशियन समाचार-पत्र ने उस पन्थ पर टीका टिप्पणी करने वाली एक वार्ता प्रकाशित की थी। विविध कारखानें, उद्योग आदि के व्यवस्थापक उस समाचार-पत्र के प्रमुख ग्राहक होते हैं। उस वार्ता में उल्लेख था कि "अमेरिका में विपुल

दीखने वाले केसरिया वस्त्रधारी कृष्णसाक्षात्कारी अब रशिया में भी आ धमके हैं।"

यह तो एक-न-एक दिन होना ही था। कहते हैं कि इतिहास अपने आपको दोहराता रहता है। रशिया मूलत: वैदिक संस्कृति का देश होने के कारण यद्यपि वहाँ गत एक सहस्र वर्षों से कृस्तीपन्थ छा गया है, वहाँ किसी-न-किसी बहाने वैदिक सभ्यता का पुनरुत्थान होना अटल था।

रशिया के शिबिरीय प्रदेश में लोक बस्ती विरल होने से और शीत तथा तेज हवा प्रकृति के प्रकोप के कारण कृस्ती धर्म का प्रभाव उस प्रदेश में शिथिल-सा ही रहा है। वहाँ के गिरजाघरों में ईसाई प्रार्थना से पूर्व वैदिक मन्त्रों जैसे मुँह से कुछ अगडम बगडम पुटपुटाने की प्रथा है। उसका अर्थ किसी को ज्ञात नहीं तथापि वह प्राचीन वेद पठन का एक नकली अनुकरण वहाँ अभी तक ईसाई प्रवचन के पूर्व आवश्यक समझा जाता है।

वैदिक अग्नि मन्दिर

कैस्पियन उर्फ काश्यपीय सागर तट पर रशिया में बाकु नगर है जो नौकाओं के आवागमन का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। उस नगर में एक प्राचीन वैदिक अग्नि मन्दिर उर्फ यज्ञशाला है जिसे आधुनिक काल में ज्वालामाई का मन्दिर कहा जाता था। सन् १९३९ से १९४५ के द्वितीय महायुद्ध तक कोई न कोई पंजाबी या सिन्धी साधु पैदल चलकर वहाँ पहुँच जाता और धूनी लगाकर बैठा रहता। उस नगर के सिन्धी व्यापारी उसके उदर निर्वाह की व्यवस्था करते। उस मन्दिर में एक प्राकृतिक ज्वाला (भूमि से निकली हुई)जलती रहती थी क्योंकि वहाँ की भूमि में खनिज तेल (पैट्रोल) विपुल मात्रा में विद्यमान है। पैट्रोल शब्द 'प्रस्तर तेल' ऐसा संस्कृतोद्भव है।

उस मन्दिर में अनादिकाल से वेदमन्त्रोच्चारण के साथ यज्ञ होते रहने के कारण सदियों से वहाँ राख के ढेर के ढेर लगे हुए हैं। उस मन्दिर में आधुनिक गुरुमुखी लिपी में शिलालेख तो हैं ही किन्तु मन्दिर में यदि उत्खनन किया जाए और राख के ढेर निकाले जाएँ तो वहाँ संस्कृत शिलालेख तथा देवी-देवताओं की मूर्तियाँ आदि अवश्य प्राप्त होंगी। किन्तु ऐसा पुरातत्वीय

उत्खनन किसी वैदिक प्रेमी, संस्कृत प्रेमी व्यक्ति की निगरानी में होना आवश्यक है। यूरोप खण्ड में आज तक ऐतिहासिक और पुरातत्वीय उत्खनन ईसाई व्यक्तियों के द्वारा किये जाने के कारण उन्हें प्राप्त वैदिक अवशेष या तो उन्होंने जानबूझकर छिपा दिए या नष्ट कर दिए या उनका गलत, विकृत अर्थ लगाया। जैसे ग्रीस में भगवान कृष्ण की प्रतिमाएँ इमारतों में पाई गई, सिक्कों पर भी दिखाई दीं फिर भी उनका कोई बोलबाला नहीं हुआ। इटली में उत्खनन में पाए गए प्राचीन घरों में रामायण प्रसंगों के चित्र अंकित होते हुए भी इटली के पुरातत्वविद उनकी बाबत पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।

रशिया में भी इस दृष्टि से शोध करने पर कई वैदिक स्थल पाए जायेंगे। इससे पूर्व भी कुछ पाए गए होंगे जिनकी पहचान या अर्थ ठीक प्रकार नहीं लगाया गया होगा।

वैदिक रथ का चित्र

मुम्बई से प्रकाशित Times of India दैनिक के ३० अगस्त, १९८२ के सांध्य दैनिक में प्रकाशित एक वार्तानुसार रशिया ताजिकिस्थान प्रदेश में किसी स्थान पर एक प्राचीन भवन की दीवार पर वैदिक रथ का चित्र रेखांकित पाया गया है।

रशियान्तर्गत वैदिक परम्परा का पुनरुत्थान

रशिया की राजधानी मास्को उर्फ मोक्षनगरी में सन् १८७९ में एक सरकारी ग्रन्थ समारोह आयोजित हुआ था। उसमें ISKCON यानि कृष्ण साक्षात्कारी पन्थ के भक्तिवेदान्त ग्रन्थ संस्थान ने भी अपनी एक दुकान लगाई थी। हजारों रशियन प्रेक्षक उस केन्द्र में आकर वैदिक कृष्ण साहित्य देखते, पढ़ते, खरीद कर ले जाते, भारतीय रसोई का स्वाद लेते, विविध खाद्यपदार्थ बनाने की विधि ज्ञात करवा लेते। इस प्रकार उस मेले में हजारों रशियन लोगों को उस आधुनिक कृष्ण पन्थ के परिचय से सदियों से लुप्त-गुप्त-सुप्त प्राचीन वैदिक परम्परा की अनजाने अनुभूति होने लगी।

इसके फलस्वरूप लगभग डेढ़ वर्ष में कृष्णसाक्षात्कारी संघटन का प्रसार रशिया में मास्को नगरी के २००० मील पूर्ववर्ती कृष्णयारक नगर

तक हो गया।

Yevgeny Tretyokov नाम के एक रशियन युवक ने मास्को वाले सन् १९७९ के ग्रन्थ समारोह में कुछ भारतीय खाद्यान्न बनाना सीखा था। कृष्णयारक नगर के कृष्णसाक्षात्कारी संघटना केन्द्र की जब प्रथम सभा हुई तो उसमें वह युवक वैष्णवी केसरी धोती कुरता आदि वस्त्र धारण कर उपस्थित हुआ। उसने कुछ संस्कृत मन्त्र बोले और वैदिक दिनचर्या से शरीर तथा मन कैसे शुद्ध, स्वस्थ और कार्यक्षम रहता है इसका विवरण उपस्थित लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया।

तथापि आधुनिक समूहनिष्ठ रशियन सरकारी यन्त्रणा ने उस कृष्ण-साक्षात्कारी संघटना का उसी प्रकार छल करना आरम्भ किया जैसे पौराणिक काल में उसी प्रदेश में हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद की विष्णु भक्ति समाप्त करने के उद्देश्य से किया था। यह भी इतिहास दोहराए जाने वाली ही बात है।

रशिया की संस्कृत-परम्परा

रशिया का प्राचीन वैदक-संस्कृत परम्परा के प्रमाण वर्तमान रशियन भाषा में प्राप्त होते हैं। रशियन भाषा के कई शब्द और वाक्य के वाक्य संस्कृत ढांचे के स्पष्ट दिखाई देते हैं।

उदाहरणार्थ सस्कृत का 'स्नुषा' (यानि बहू) शब्द रशियन भाषा में 'स्नोखा'-बना हुआ है। ष का उच्चार ख भारत की प्राकृत भाषाओं में भी दिखाई पड़ता है। जैसे शिष्य का उच्चारण पंजाब में शिख उर्फ शीख बना। अरबस्थान में शिष्य का उच्चारण शेख होने लगा।

रशियन भाषा में एक आग को अगोन और अनेक को अग्नि ही कहा जाता है। दर्भ यानि घास को दूर्भ कहते हैं। उसी का रूपान्तर आंग्ल भाषा में टर्फ (Turf) हुआ है।

रशिया के लिथुआनिया प्रदेश की भाषा तो संस्कृतमय ही है। वहाँ अच्छा उर्फ अच्छ शब्द है जैसे संस्कृत में सु-अच्छ यानी स्वच्छ कहा जाता है।

रशियन लोगों के संस्कृत नाम

रशियन और यूरोपीय नामों का मूल खोजने पर वे वैदिक प्रणाली के ही प्रतीत होंगे। जैसे Andrews और अण्ड्रोपोन्ह नाम इन्द्र शब्द के भिन्न रूप हैं। Lebadev यह नाम लवदेव है।

रशिया में आयुर्वेद का प्रचार

अष्टांग आयुर्वेद का एक संस्कृत ग्रन्थ रशिया में पाया गया है। कोई अत्यधिक रोगपीड़ित होने पर रशिया के शिबिर प्रदेश में आयुर्देवता की स्थापना कर उसकी आराधना कर रोगी को दीर्घायु कराने की प्रार्थना की जाती है। वह आयुर्वेदीय ग्रन्थ तथा रशिया में पाई गई आयुर्देवता की मूर्ति भारत की राजधानी देहली में २२ Hauz khas वाले भवन में International Academy of Indian culture में प्रदर्शित है।

उसी संस्थान के जिन कार्यकर्ताओं ने रशिया का दौरा किया था उनका कहना है कि विशेषत: शिबिर प्रदेश में अभी तक आयुर्वेद का बड़ा प्रभाव है और वहाँ हिंगाष्टक, त्रिफला आदि प्राचीन आयुर्वेदिक दवाइयां बनती हैं। जनता द्वारा उन ओषधियों का प्रयोग होता रहता है। शिबिर के निवासियों में अभी तक गंगाजल के प्रति बड़ा आदरभाव है। इन चिह्नों से वहाँ प्राचीन वैदिक परम्परा का अनुमान लगाया जा सकता है।

रशिया में इमारतों पर गुम्बद होते हैं। वे वहाँ के प्राचीन वैदिक स्थापत्य के लक्षण हैं। इस्लामी परम्परा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। क्योंकि इस्लाम रशिया में लगभग एक सहस्र वर्षों से प्राचीन नहीं है, किन्तु वैदिक सभ्यता तो वहाँ लाखों वर्ष पुरानी है।

यद्यपि वर्तमान समय में हिन्दुस्थान और रशिया दो भिन्न राष्ट्र बन गये हैं तथापि प्राचीनकाल में वे एक ही सार्वभौम वैदिक सभ्यता के दो कक्ष थे। रशिया यानि ऋषीय आश्रमों में प्रशिक्षण पाने वाले द्रविड़ यानी द्रष्टा और ज्ञानी कार्यकर्ता विश्व के विभिन्न प्रदेशों में जाकर धर्म तथा समाज का मार्गदर्शन, व्यवस्थापन किया करते थे। इस प्रकार आर्य वैदिकसनातन धर्म के अधीक्षकों का द्रविड़ नाम पड़ा।

प्राचीन वैदिक आदिघई जमात

Asimov नाम के एक रशियन प्राच्यविद्यातज्ञ के अनुसार रशिया देश में जो विविध ऐतिहासिक वस्तु संग्रहालय (यानि Museum) हैं उनमें प्रदर्शनार्थ रखी गई ब्रांस धातु की परशु एवं विष्णु भगवान की मूर्तियाँ आदि उस प्रदेश के निवासी आदिघई लोगों की कलाकृतियां हैं। उनमें जो नक्काशी, चित्रकारी आदि बनी हुई है, वह भारतीय कारीगरी से मिलती-जुलती है। उनमें गज प्रतिमाएँ भी हैं जबकि उस शीत प्रदेश में हाथी नहीं पाए जाते।

विश्व में जहाँ भी हाथी की प्रतिमाएँ दर्शाई गई हैं, वहाँ निश्चित ही भारत का प्रभाव था। क्योंकि भारतीय परम्परा में गज सर्वदा बल, सेवा, ज्ञान, शक्ति तथा वैभव का प्रतीक माना गया है। वह गज प्रतीक प्राचीन वैदिक परम्परा में विश्वभर में प्रयुक्त होता था। कुरान की प्राचीन प्रतियों में अरबस्थान में पृष्ठों के किनारे रंगीन गजमूर्तियों से सजाए गए हैं। वह प्राचीन भारतीय वैदिक परम्परा का द्योतक है। इस्लामी परम्परा में किसी भी जीव का चित्र खींचना निषिद्ध माना गया है। तब भी यदि कुरान की प्रतियाँ ही गजमूर्तियों से सजाई गई हैं तो अरबस्थान की वैदिक सभ्यता कितनी गहरी रही होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

आदिघई लोकगीतों में धूप आदि के जो वर्णन हैं उससे भारत से उनका गहरा परिचय होने का प्रमाण मिलता है। उनके गहने भी हिन्दू गहनों के समान होते हैं। आदिघई लोगों में वैदिक गीतों और नृत्यों की परम्परा थी।

सारी कलाएँ और विद्याएँ वेदों में बीज या सूत्र रूप में निबद्ध होने के कारण आदिघई परम्पराओं में विभिन्न प्राचीन कला और विद्याओं के अंश प्राप्त होते हैं। भूमिति, खगोल, ज्योतिष्, ज्यामिति, अंकगणित आदि विषयों का भी इन लोगों की पारम्परिक विद्या में अन्तर्भाव हैं। यह जानकारी श्री असिमोव (Asimov) ने Nehru Planetorium मुंबई नगर में हुए सन् १९८१ के परिसंवाद में दी।

रशियन लेखागारों में ६०० प्राचीन दस्तावेज, पोथियाँ, गाथाएँ आदि हैं जो संस्कृत में या प्राचीन भाषाओं में हैं।

प्रचलन बिना विद्या नष्ट होती है

कुछ लोगों का प्रश्न है कि यदि वेदों में सारी विद्याएँ, कलाएँ, शास्त्र ही अन्तर्भूत हैं तो वे सारी भारत से या अन्य प्रदेशों से नष्ट क्यों हो गईं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पढ़ाई में यदि खण्ड पड़ जाए, रुकावट आ जाए तो विद्या उड़कर या भूलकर नष्ट-सी हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति निजी अनुभव का ही सिहावलोकन करे। व्यक्ति विद्यार्थी दशा में कितना ही विद्वान् क्यों न हो वह काम-धन्धे में लगा द्रव्यार्जन में मग्न होकर निजी विद्या को दोहराता न रहे तो वह निजी सन्तान को भी उच्चस्तरीय ज्ञान देने योग्य नहीं रहता, सब भूल-भाल जाता है। अपनी सन्तान को पढ़ाने-सिखाने के लिए भी उसे किसी शिक्षक को लगाना पड़ता है।

वेदान्तर्गत विद्याएँ, शास्त्र, कला आदि इसी प्रकार लुप्त हो गये। महाभारतीय युद्ध के सर्वनाश के कारण सारा शासन, सुरक्षा-व्यवस्था और गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली टूटकर भंग हो गई। जो कुछ बचा-खुचा ज्ञान था वह एक सहस्र वर्षों के इस्लामी तथा ईसाई हमलों से दुबारा नष्ट हो गया। तो बचा ही क्या ? केवल टूटे-फूटे खण्डहर, गटरें, दरिद्रता और निरक्षरता।

रशियन त्योहार तथा उत्सव आदि

जाड़े के दिनों में रशियन लोग Kupalo के अन्त्यसंस्कार का पर्व मनाते हैं। घास की एक प्रतिमा बनाकर उसे भूमि में गाड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् होली लगाकर युवक-युवतियाँ एक Kolo नृत्य करती हैं। Rufni Koff नाम के लेखक ने ऐसे परम्परागत गीतों का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। फ्रेंच भाषा में M. Romband ने उनका विवरण और वर्णन प्रस्तुत किया है। यह फ्रेंच नाम वस्तुतः रामभक्त का अपभ्रंश है। Kolo यह काल (यानि महाकाल) का अपभ्रंश है।

रशियन Kupalo आंग्लभाषा में क्यूपिड (Cupid) कहलाता है। संस्कृत का वह कोप-द नाम है। पार्वती को पुत्र प्राप्ति के लिए शंकर जी को तपस्या से जागृत करना था, अतः उसने मदन को भेजा। मदन ने शंकर की कामवासना जागृत कराने हेतु निजी कुसुम, पल्लव आदि के बाण छोड़ने

शुरू किये। ध्यान-मग्न शंकर जी इससे विचलित हो गये। उनकी समाधि में बाधा आने लगी। उन्होंने क्रोध-भरा अपना तृतीय चक्षु खोला तो उसमें से अंगारों की वर्षा-सी होने लगी। सामने मदन थे। वे भस्म हो गये। मदन की पत्नी रति शोकाकुल होकर शंकर की आराधना करने लगी। तब शंकर ने रति को वर देकर मदन को अनंग बनाया यानि बिना शरीर का अस्तित्व दिया। रति का वह विलाप कालिदास के कुमारसम्भव काव्य में प्रसिद्ध है। उसी घटना से मदन का नाम "शंकर को कोप देने वाला" इस अर्थ से कोप-द पड़ा। यूरोप में इसी कारण उसे कहीं Cupid कहीं Kupalo कहा जाता है। उसी के देहान्त के उपलक्ष्य में घास की मदन उर्फ स्मर की प्रतिमा रशिया में भूमि में गाड़कर उसकी स्मृति में युवक-युवतियाँ नाचते गाते हैं। भारत में वह त्योहार होलिकोत्सव के नाम से जाना जाता है। उसमें युवक-युवतियाँ रंग खेलते हैं। कामदेव की स्मृति में यह उत्सव सारे विश्व में युवावर्ग द्वारा मनाना प्राचीन विश्वप्रसृत वैदिक संस्कृति का कितना महत्त्वपूर्ण प्रमाण है? अनियन्त्रित कामवासना को भस्म कर युवक-युवतियों का मेल संयम से होना चाहिए, यह उस पर्व का सार हो सकता है।

इस दृष्टि से रशिया के ईसापूर्व समारोहों की बारीकी से समालोचना करने पर उनके वैदिक स्रोतों का अवश्य पता लगेगा।

रशिया देश के समरकन्द नगर में स्थित यह उत्तुंग प्रासाद तैमूरलंग की कब्र कहलाता है।

एक विशाल इमारत को कब्र समझाना विश्व के इतिहास की भारी भूल है। उससे इतिहास, पुरातत्व तथा स्थापत्य विद्या में बहुत बड़े दोष या सम्भ्रम का विष फैल गया है।

किसी शव को भूमि में खुदे गड्ढे में गाड़ने के पश्चात् वह गड्ढा बन्द करने के लिए और दफन स्थान के निशान हेतु ऊपर ईंटें और चूने से जो छोटा-सा टीला बनाया जाता है, उसे कब्र कहते हैं।

ऐसे बने बनाए विशाल भवन जब इतिहास की उथल-पुथल के कारण दो-चार पीढ़ी खाली, नाकाम पड़े रहते हैं तो आगामी पीढ़ियाँ उसे मल-मूत्र विसर्जन के काम में या कब्रस्थान के रूप में प्रयोग करती रहती हैं।

एक संस्कृत कवि ने ठीक ही कहा है कि "देखो समय-समय में कितना अन्तर पड़ता है। कभी किसी स्थान में राजमहल की शोभा और शृंगार होता है तो कुछ समय पश्चात् वही स्थान वीरान होकर उसमें जंगली पशु या गीदड़ चक्कर काटने लगते हैं।" अत: किसी भवन के अन्दर कोई असली या नकली कब्र दिखाई देने पर उस मृत व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् वह भवन बनाया गया; ऐसा अनुमान लगाना अयोग्य है। यदि उसका कोई ठोस प्रमाण हो तो अलग बात है।

किन्तु विचार ऐसा करना चाहिए कि तैमूरलंग जैसे क्रूर, दुष्ट, कातिल लुटेरे के शव के आसरे के लिए एक निरर्थक विशाल भवन बनाने वाला तैमूरलंग का प्रेमी कौन था? एक शव पर न्योछावर करने के लिए लाखों रुपये कहाँ से आये? यदि तैमूरलंग के खजाने के ही रुपये उसके हाथ लगे हों तो मानव स्वभाव के अनुसार मृतक का वारिस लालायित होकर मृतक का धन निजी रंग-ढंग में खर्च करता है। मृतक की रोक-टोक न होने से मृतक के धन से वारिस स्वयं के लिए महल बनाता है। हिसाब-किताब की और देख-रेख की झंझट उत्पन्न करने वाला और निजी समय व्यर्थ दौड़ाने वाला शव के लिए महल बनाने का निरर्थक प्रयास भला कौन अपने सिर पर लेगा?

दूसरा एक प्रश्न मन में ऐसा उठता है कि जिस किसी व्यक्ति ने तैमूरलंग के शव के लिए इतना बड़ा महल बनाया, वह स्वयं किस महल में रहता था? उसका स्वयं का कोई भवन न होते हुए केवल एक शव के लिए इतना बड़ा भवन बनाने की उसे क्या आवश्यकता पड़ी?

तीसरा प्रश्न यह उठता है कि यदि मृत तैमूरलंग का इतना ऊँचा महल है तो जीवित तैमूरलंग कहाँ रहता था? यदि जीवित तैमूरलंग का कोई महल नहीं तो मृत तैमूरलंग के लिए इतना विशाल महल कहाँ से टपक पड़ा?

यदि तैमूरलंग के मृत शरीर के लिए इतना बड़ा महल आवश्यक हो तो जीवित तैमूरलंग और उसका कुनबा तथा दरबार आदि के लिए इससे दस गुना विशाल भवन होना चाहिए था। वह तो है नहीं।

इसी प्रकार ईजिप्त उर्फ मिसर (मिस्र) देश में पिरामिड यह मरुस्थल

स्थित किले हैं। तूतनखामन या और किसी मृत सम्राट के शव के आश्रयस्थान के निमित्त पिरामिड का निर्माण हुआ; यह समझना भारी भूल है।

इसी प्रकार समरकन्द वाली इमारत तैमूरलंग पूर्व (हिन्दू वैदिक) सम्राटों का महल था। तैमूरलंग का जब उस प्रदेश पर अधिकार हो गया, तब वह उस महल में रहने लगा। जब तैमूरलंग मर गया तो उसी समय या कुछ वर्ष पश्चात् उसकी एक नकली (या असली) कब्र सेवादारों ने या आश्रितों ने इसलिए बना दी कि उसकी देखभाल के बहाने वे उस विशाल महल में टिके रहें और दर्शकों से धन कमाते रहें।

उस विशाल भवन के प्रवेश द्वार की जो कमान है उसके बाएँ कोने में गौर से देखें उदयभान सूर्य, बाघ और सफेद हिरण के चित्र वहाँ जड़े हुए हैं। यह प्रात:काल के शिकार का दृश्य है। उसे वहाँ के रशियन स्थलदर्शक सूर साडूल कहते हैं। किन्तु वे उसका अर्थ नहीं जानते। वह 'सूर्यशार्दूल' शब्द है। उस संस्कृत नाम से वह भवन किसी संस्कृत भाषी हिन्दू राजा का प्रासाद था, यही निष्कर्ष निकलता है। उस प्रासाद की स्थापत्य शैली वैदिक है, इस्लामी नहीं। ऐसे चित्र इस्लामी प्रथा में निषिद्ध माने गये हैं। तैमूरलंग का ऐसे चित्र से कोई सम्बन्ध भी नहीं बनता।

उस चित्र से संशोधन का एक नया सूत्र यह मिलता है कि सारे विश्व पर शासन करने वाले वैदिक सम्राटों के ऐसे कई राजचिह्न विश्व में बिखरे पड़े हैं। उनका संकलन होना आवश्यक है। दिल्ली के सुल्तानधारी नाम के भवन में वराह और कामधेनु का एक प्राचीन हिन्दू राजचिह्न और दिल्ली के लाल किले में तराजू का राजचिह्न पाए गए हैं। पृथ्वी गोल पर अपना पंजा धरने वाला सिंह, हिरण का राजचिह्न भी इस्लामपूर्व वैदिक स्रोत का ही चिह्न है।

जर्मनी का वैदिक अतीत

आधुनिक युग में कई जर्मन विद्वानों ने संस्कृत भाषा के अध्ययन में बड़ी रुचि ली है। यूरोप के अन्य देशवासियों की अपेक्षा जर्मन लोगों का संस्कृत के प्रति अधिक लगाव केवल एक योगायोग समझना सही नहीं होगा। जर्मनी की अति प्राचीन लुप्त-गुप्त दृढ़ संस्कृत-वैदिक परम्परा के कारण ही जर्मन लोगों में संस्कृत के प्रति गहरा आकर्षण है। ईसा पूर्व समय में जर्मनी में संस्कृत भाषा और वैदिक परम्परा ही थी। यूरोप के अन्य देशों के समान जर्मनी पर भी जब कृस्तीपन्थ थोपा गया तब वहाँ की संस्कृत, वैदिक सभ्यता कृस्ती दबाव से ढककर अज्ञात रह गई।

जर्मनी का प्रमुख भाग पर्शिया उर्फ प्रशिया (प्रऋषीय) कहलाता है। वह प्रऋषीय यानि ऋषि देश से जुड़ा हुआ, इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। ऋषि लोग संस्कृत भाषी थे। उनकी वैदिक सभ्यता थी। अतः प्रऋषीय देश में वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा की जड़ें गहरी होना स्वाभाविक है।

जर्मनी नाम तो उस देश को परायों ने दिया है। जर्मन लोग स्वयं निजी देश को Deutschland (डाइत्श लैण्ड) कहते हैं। वह संस्कृत दैत्य-स्थान नाम है।

पुराणों में वर्णन है कि ऋषिकुल की ही एक शाखा दैत्य कहलाई। क्योंकि वे दिती की सन्तान थे। दैत्य बड़े प्रबल बन गए। यूरोप और अफ्रीका खण्डों में उनके प्राचीन साम्राज्य के चिह्न अभी भी पाए जाते हैं। उन्हीं दैत्य लोगों के स्वामित्व के कारण जर्मनी डाइट्सलैंड यानी दैत्य-स्थान कहलाता है।

हालैण्ड देश के लोग जो डच (Dutch) कहलाते हैं, वे भी वैदिक दैत्य वंश के ही हैं। दैत्य का अपभ्रंश डच कैसे होता है, यह भारतांतर्गत

एक उदाहरण से देखें। उत्तर प्रदेश प्रान्त में एक नगर है भाहराइच जो प्राचीनकाल में बह्वदादित्य कहलाता था। जिस प्रकार वहाँ आदित्य शब्द इच बनकर रह गया, उसी प्रकार यूरोप में दैत्य शब्द का उच्चारण डच हुआ।

एक आधुनिक जर्मन संस्कृत भाषा का ज्ञाता था। उसका नाम था Max Muller। उसका उच्चारण मॅक्समुलर किया जाता था। उन्होंने ऋग्वेद का आंग्ल अनुवाद प्रकाशित किया। उस ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर उन्होंने निजी परिचय 'मया शर्मन् देश जातेन गोतीर्थ निवासिना मोक्षमूलर नाम्ना' इस प्रकार संस्कृत भाषा में अंकित किया है।

उनके उस भाष्य से प्रतीत होता है कि जर्मन यह शर्मन का ही अपभ्रंश है। मैक्समुलर यद्यपि जर्मन थे, वे ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सेवक होने से ऑक्सफोर्ड नगर में रहते थे। ऑक्सफोर्ड का अनुवाद उन्होंने 'गोतीर्थ' ठीक ही किया है।

मैक्समुलर ने निजी नाम का विवरण 'मोक्षमूलर' लिखा है जो योग्य ही है। क्योंकि हम इसके पूर्व बतला चुके हैं कि ऋषियों का लक्ष्य मोक्ष होने के कारण ऋषीय देश की राजधानी मोक्ष उर्फ मस्क्वा कहलाती है। अतः जर्मनी उर्फ प्रशिया यानि प्रऋषीय देश में मोक्षमूलर यह नाम प्रचलित होना स्वाभाविक था।

इस विवरण से एक महत्वपूर्ण सूत्र यह मिलता है कि यूरोप के कई नाम जिनमें मॅक्स (Max) उपपद लगता है जैसे (Maxwell) वे मोक्ष शब्द के अपभ्रंश हैं।

टॅसिट्स (Tacitus) नाम के एक प्राचीन ग्रीक लेखक ने जर्मन लोगों की दिनचर्या के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है वह उनकी वैदिक परम्परा का द्योतक है। टॅसिट्स ने लिखा है कि जर्मन लोग प्रातः उठते ही प्रथम शौच और मुखमार्जन करते हैं जो निश्चित ही पूर्ववर्ती लोगों की प्रथा है। जर्मनी जैसे शीत देश की ऐसी परम्परा हो नहीं सकती। वे लम्बे, ढीले वस्त्र परिधान धारण करते हैं और लम्बे बाल रखकर सिर के ऊपर बालों की गाँठ बाँधते हैं जो ब्राह्मणों की प्रथा है।" (पृष्ठ ६३, खण्ड १, Annals and Antiquities of Rajasthan, लेखक James Tod)

वेदभूमि

आर्य वैदिक सनातन धर्म के द्रविड़ यानि (द्र-विद) द्रष्टा और ज्ञाता लोग सारे विश्व में सामाजिक और धार्मिक जीवन के अधीक्षक होते थे। अत: वे जर्मनी में भी होते थे। A Complete History of the Druids नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ २६ पर उल्लेख है कि "हमें समाचार मिला है कि Vaitland नाम के जर्मनी के प्रदेश में किसी मठ में छह प्राचीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं जो द्रविड़ों के पुतले थे। वे सात फुट ऊँची मूर्तियाँ थीं। पैरों में कुछ (जूते आदि) पहना नहीं था। उनके सिर किसी वस्त्र के पल्लू से ढके थे। उनकी कमर पर एक छोटी थैली-सी लटकी थी। लम्बी दाढ़ी के बीच से (दाएँ-बाएँ) दो भाग किए गए थे। एक हाथ में कोई ग्रन्थ था और दूसरे डायोजिनीज जैसा कोई दण्ड। उनके चेहरे गम्भीर और दु:खी थे। आँखें भूमि की ओर देख रही थीं। मन्दिर के द्वार के बाहर वे प्रतिमाएँ खड़ी दिखाई देती थीं।

ऊपर दिए उद्धरण से पता लगता है कि जर्मनी के एक भाग का नाम Vaitland (वेटलैंड) रहा है जो स्पष्टतया वेदस्थान का अपभ्रंश है। अत: वे प्रतिमाएँ वेदपाठी पुरोहितों की यानि ऋषियों की थीं। वे मूर्तियाँ जिस मन्दिर के सम्मुख थीं वह मन्दिर शिव या विष्णु जैसे किसी वैदिक देव का होना स्वाभाविक ही है। अत: सप्तर्षि की भाँति उस प्रदेश के प्राचीन गुरुकुल चलाने वाले छह प्रख्यात ऋषियों की वे प्रतिमाएँ होनी चाहिएँ।

स्वास्तिक चिह्न 卐

सन् १९३०-३२ के लगभग जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नात्सी उर्फ नाजी पक्ष का गठन हुआ। उनका चिह्न स्वास्तिक था। इतना ही नहीं उस चिह्न को जर्मन लोग स्वयं स्वास्तिक ही कहते थे। वह संस्कृत सु-अस्ति-क यानि 'मंगल करने वाला' ऐसा शब्द है। यह स्वास्तिक चिह्न केवल जर्मनी में ही नहीं अपितु सारे विश्व में प्रचलित था। रोमन राजघरानें के खाने-पीने के चाँदी के बर्तनों पर भी स्वास्तिक खुदा होता था।

कुछ लोगों की धारणा है कि भारतीय स्वास्तिक दाहिनी तरफ मुड़ा हुआ होता है जबकि जर्मनी का स्वास्तिक बाईं तरफ मुड़ा होता था।

वस्तुत: वैदिक प्रथा में इन दोनों प्रकार के स्वास्तिक हैं। तन्त्र-मन्त्र शास्त्र के ग्रन्थों में ये दोनों प्रकार के स्वास्तिक अन्तर्भूत होते हैं।

एक अल्प-सा भेद यह है कि राक्षस लोग वाममार्गी होने के कारण अधिकतर बाएँ दण्ड वाला स्वास्तिक पसन्द दिया करते थे। जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में दैत्यों का शासन होने के कारण वहाँ बाएँ मोड़ का स्वास्तिक होना स्वाभाविक था।

अरब स्थान के मक्का नगर के काबा मन्दिर में भी मुसलमान लोग दाहिने से बाईं ओर वाली परिक्रमा करते हैं। इसे आंग्लभाषा में anti-clockwise यानि घड़ी के उल्टे क्रम की परिक्रमा कहते हैं। अत: अरब-स्थान में भी दैत्यों का ही शासन था, ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

स्वास्तिक यह अष्टदिशा निदर्शक चिह्न है। इतना ही नहीं वह इस गतिमान विश्व का प्रतीक है। अनेक ग्रहों का भ्रमण, वायु की गति, सागर की लहरें आदि इस विश्व में जो चेतना या गति है उस दैवीशक्ति का प्रतीक "स्वास्तिक" है।

देहली से आगरा सड़क मार्ग से जाते हुए आगरा से छह मील पहले एक सात मंजिला, केसरी रंग के प्रस्तरों का चौसोपा (चौ भुजा) महल है जिसे अकबर की कब्र कहा जाता है। उसमें अकबर के नाम की एक कब्र है। हो सकता है कि वह नकली कब्र ही हो जो हिन्दुओं की आँखों में धूल झोंकने के उद्देश्य से झूठमूठ ही अकबर की कही जाती हो। उसके उत्तुंग प्रवेश द्वार के दोनों ओर की दीवारों पर २०-३० फुट की ऊँचाई पर लाल पत्थरों में जड़े दो काले स्वास्तिक बनाए गए हैं। वे भी बाईं भुजा के हैं। वह इमारत प्राचीन हिन्दु राजमहल की होने के कारण वहाँ का बाईं भुजा का स्वास्तिक इस बात का प्रमाण है कि वैदिक प्रथा में दोनों प्रकार के स्वास्तिक प्रचलित थे। हो सकता है कि पुराणों में देव और दैत्यों का जो संघर्ष वर्णित है उसमें देव दाहिने मोड़ का स्वास्तिक पसन्द करते हों और दैत्य बाईं ओर का।

भूमि-प्रदान पत्र

प्राचीन भारत में किसी व्यक्ति को जब कोई भूमि प्रदान की जाती थी

तो उसका अधिकार पत्र जिस प्रकार लिखा जाता था, ठेठ उसी प्रकार के भूमि-प्रदान पत्र जर्मनी में भी पाए गए हैं। दोनों में आरम्भ में ईश्वर का स्मरण और स्तवन होता है। भूमि के हस्तान्तरण के समय उपस्थित साक्षी व्यक्तियों के नाम अंकित होते हैं। दिए जाने वाले भू-खण्ड का वर्णन होता है। भूमि के हस्तान्तरण का कारण लिखा जाता है। नए स्वामी को उस भूमि का उपभोग सर्वदा प्राप्त हो और उसमें कभी कोई हस्तक्षेप न करे, ऐसा आदेश होता है। इस प्रकार जर्मनी और भारत दोनों में प्राचीन भूमि-प्रदान-पत्र एक जैसे होना दोनों में समान वैदिक परम्परा का द्योतक है।

बुर्ग यानि दुर्ग

जर्मनी में बुर्ग से अन्त होने वाले कई स्थानीय नाम हैं जैसे हिंडेनबुर्ग, हायडेलबुर्ग। वहाँ बुर्ग यह प्राचीन संस्कृत दुर्ग शब्द का अपभ्रंश है। जर्मन भाषा में बुर्ग शब्द का अर्थ केवल पहाड़ समझा जाता है जबकि मूल संस्कृत में दुर्ग का अर्थ होता है किला। तो हो सकता है कि सदियों से संस्कृत से बिछुड़ जाने के पश्चात् जैसे उच्चारण में अन्तर पड़ा वैसे ही थोड़ा अन्तर अर्थ में भी पड़कर संस्कृत का दुर्ग शब्द जर्मनी में बुर्ग बनकर केवल पहाड़ी का द्योतक ही रह गया जबकि भारत में सामान्यतया दुर्ग से गिरि दुर्ग का ही बोध होता है।

भारत में भी दुर्ग का बुर्ग अपभ्रंश बताया जा सकता है। कर्नाटक प्रान्त में जो गुलबर्गा नगर है उसका प्राचीन नाम कलमदुर्ग था जो गुलबर्गा में परावर्तित हो गया। अतः हिंडेनबुर्ग का अर्थ है 'हिंदूनां दुर्गः' यानि हिन्दुओं का किला। हायडेलबर्ग का अर्थ है हय-दल-दुर्ग यानि घोड़ों की सेना का दुर्ग। हो सकता है कि उस किले में प्रमुखतया अश्वदल रखा जाता हो।

धन्यवाद

प्राचीन विश्वभर में वैदिक सभ्यता का प्रमाण 'धन्य', यह कृतज्ञता-दर्शी शब्द में पाया जाता है। भारत में जैसे उपकारकर्ता को धन्य हो, ऐसा कहा जाता है उसी का अपभ्रंश जर्मन भाषा में डंक और आंग्ल बोलचाल में थंक हुआ है। वे शब्द भी उन भाषाओं में धन्यता का भाव प्रकट करते हैं।

मान अन्त्यपद

जर्मन प्रदेश के कई नामों में मान अन्त्यपद लगता है। जैसे Hermann, बर्गमन, जो मानव शब्द का द्योतक हो सकता है या श्रीमान, बुद्धिमान ऐसा विशेष गुणवाचक भी हो सकता है किन्तु चाहे किसी अर्थ में भी क्यों न हों वह संस्कृत परम्परा का ही शब्द है।

राम

वैदिक परम्परा का राम नाम यूरोप में कई स्थानों को और व्यक्तियों को लगता है जैसे आंग्लभूमि में Ramston यह स्थानवाचक शब्द जर्मनी में Ramstein लिखा जाता है। जर्मन भाषा में Stein का अर्थ पत्थर भी होता है क्योंकि जड़त्व या भार के कारण वह एक स्थान पर पड़ा रहता है। पश्चिम जर्मनी में जिस स्थान पर नवम्बर, १९८३ में अमेरिकी Pershing II विस्फोटक, संहारी प्रक्षेपणास्त्र रशिया की दिशा में प्रहार करने के लिए सज्ज रखा गया है उस स्थान का नाम Ramstein यानि रामस्थान है। अत: जर्मन शब्दकोशों में Stein का नाम केवल पत्थर लिखा और स्थान अर्थ नहीं दिया हो तो हमारे इस सिद्धान्त के आधार से जैसे विश्व के इतिहास का पुनर्लेखन आवश्यक हो गया है वैसे ही यूरोपीय भाषाओं के शब्दकोषों का भी पुनर्लेखन करना होगा। क्योंकि आंग्ल, जर्मन आदि भाषाओं के शब्दकोष जब आधुनिक युग में तैयार किए गए तब उन कोषकारों को यह तथ्य विदित नहीं था कि विश्व की सारी भाषाएँ देवदत्त संस्कृत भाषा के ही फटे-टूटे टुकड़े हैं। इतिहास में मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू का विवरण अन्तर्भूत रहता है। अत: इतिहास यदि दूषित या भ्रमपूर्ण हो गया तो जीवन के कतिपय अंगों का वर्णन भ्रमपूर्ण हो जाता है। इसी कारण सारी भाषाओं का उद्‌गम संस्कृत से ही हुआ है, यह तथ्य न जानने वाले विद्वानों ने जब विविध भाषाओं के शब्दकोष तैयार किए तब वे मनगढ़न्त, ऊटपटांग व्युत्पत्तियाँ देते चले गए। अत: विश्व इतिहास पुनर्लेखन इतना महान कार्य है कि उसमें विविध भाषाओं के शब्दकोषों का पुनर्लेखन भी सम्मिलित है।

जर्मनी में हनुमान

प्राचीन विश्व में सर्वत्र वैदिक सभ्यता होने से उसके अन्तर्गत सर्वत्र रामायण का भी पठन होता था यह हम इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में दर्शा चुके हैं। अत: जर्मनी में हनुमान नाम दिखाई देना कोई आश्चर्य की बात नहीं। होम्योपैथी (Homoeopathy) चिकित्साशास्त्र का जनक आधुनिक जर्मनी का Hahneniman नाम का व्यक्ति था। वह हनुमान नाम है। उसके शास्त्र का नाम भी सम-इव-पथी यानि रोग के लक्षणों जैसे लक्षण उत्पन्न करने वाले उपचार की पद्धति है। सम-इव पथी का उच्चार हम-इव-पथि बना क्योंकि सप्ताह का हप्ताह, सिन्धु का हिन्दु, Semisphere का hemisphere ऐसा उच्चार भेद प्रचलित है।

जर्मन साहित्य में रामायण की स्मृति Lowen-herty यानि सिंह हृदयी (वीर योद्धा) की कथाओं में गुंथी हुई है। मूल रामायण टूट-फूटकर उसके कुछ अंश ही जर्मन साहित्य में इधर-उधर बिखरे तथा विकृत अवस्था में पाए जाते हैं। क्रुस्ती प्रचारकों ने जर्मनी का राम-साहित्य नष्ट करने की पराकाष्टा की। कुछ भाग कालगति से ही नष्ट या विकृत हो गया।

क्रूसेड्स (Crusades) कहलाने वाले युद्ध जब मुसलमानों में और ईसाइयों में बारहवीं शताब्दी में हुए तब आंग्ल द्वीपों का एक राजा रिचर्ड भी उन युद्धों में मुसलमानों के विरुद्ध लड़ा था। आंग्ल इतिहास में दुष्ट मुसलमानों के विरोधक के नाते उसका नाम Richard the Lionhearted यानि सिंह हृदय वाला रिचर्ड ऐसा ख्यात है।

उन क्रूसेडस में इंग्लैण्ड के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों के राजा लोग भी शामिल थे। अत: प्रत्येक यूरोपीय ईसाई देश के साहित्य में स्थानीय राजाओं की बहादुरी का वर्णन आना चाहिए था। तथापि आश्चर्य की बात यह है कि सारे यूरोपीय देशों के साहित्य में Richard the Lion-hearted की ही प्रशंसा पाई जाती है। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि वे कथाएँ वास्तव में १२वीं शताब्दी के आंग्ल राजा Richard the Lion-hearted की न होकर रामचन्द्र The Lion hearted यानि सिंह हृदयी भगवान राम की हैं। तथापि क्रुस्ती पादरियों ने जानबूझकर उस प्राचीन रामकथा को Crusades में भाग लेने वाले बारहवीं शताब्दी के

रिचर्ड की कथा से मिलाकर आगामी पीढ़ियों को बड़ी खूबी से मूल रामायण से वंचित कर छोड़ा। यह एक तरह का षड्यन्त्र था। कृस्ती प्रचारकों ने ऐसे अनेक षड्यन्त्रों द्वारा यूरोप से छिन्न-भिन्न, बचे-खुचे वैदिक संस्कृति के अवशेषों का नामोनिशान मिटाने की पराकाष्ठा की।

प्राचीन जर्मनी के वैदिक शासक

कृस्तपूर्व जर्मनी के विख्यात मृत क्षेत्रपालों को चिता पर जलाने की बजाय बड़े मान और गौरव के साथ भूमि में दफन किया जाता था ऐसा अनुमान है। वैदिक प्रथा तो शव को दहन करने की है। फिर भी दफन किए हुए कुछ शव मिले हैं। वह क्यों ? हो सकता है कि उस समय दाह-संस्कार के लिए ईंधन की कमी या अत्यादर के कारण विशिष्ट क्षत्रियों के शव, संन्यासियों के शवों की भाँति दफनाने की प्रथा हो। ऐसे दो दफन प्रसंगों का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं।

London नगर से प्रकाशित प्रसिद्ध Times दैनिक के अक्तूबर १२, १९७८ के अंक में कृस्तिपूर्ण छठवी शताब्दी में जमीन में दफनाए गए एक शव के शोध का वर्णन है। वह शव केल्टिक शासक का बताया गया है। केल्टिक, चोलतिक यानि चोलवंशीय या चोल साम्राज्याधीन व्यक्ति हो सकता है, इसका उल्लेख हमने पहले भी किया है।

उस शव की कब्र एक लम्बा चौडा गोलाकार भूमिगत कक्ष था। उस कक्ष में शव के साथ उस व्यक्ति की सम्पत्ति, चार पहियों वाला राजशाही रथ, सुवर्ण गहने, एक नक्काशीदार पलंग, ब्रांज धातु की थालियाँ, शस्त्र और वस्त्र आदि भी रखे हुए थे। उस दफन स्थान का नाम Vaihingen है पश्चिम जर्मनी के Ludwisberg नगर के निकट वह गाँव है। उस गोलाकार कक्ष का diameter साठ गज है। कक्ष की मिट्टी की दीवार के साथ-साथ एक स्तर पत्थरों का और दूसरा स्तर लकड़ी की पटरियों का है। इस प्रकार भू-तल से शिखर तक रक्षात्मक रचना की गई थी। दफन कक्ष, मध्य में पाँच गज लम्बाई और पाँच गज चौड़ाई का, चौकोर लकड़ी की दीवारों से बनाया गया था। शासक का अस्थिपंजर पहियों वाले पलंग पर लेटा हुआ था। पलंग के आधारस्तम्भ मानवाकृति बनाए गए थे। शव का गला एक

सुनहरे रंग के वस्त्र से लपेटा हुआ था। उँगलियों में सोने की अँगूठियाँ पहनी थीं। दो सर्पाकार सुवर्ण के बाजूबंध भी थे। कमर पर एक सुनहरे वस्त्र का पट्टा (कमरबंध) भी पहनाया गया था। पैरों में चमड़े के जूते थे। बाणों से भरा हुआ तरकश साथ था। बाणों के अग्र सुनहरी मुलम्मा चढ़ाये हुए लोहे के थे। बाणों पर भी सुनहरी कलाकारी थी। पलँग के समीप घोड़ों का एक चाबुक, सुवर्णपात्र और सिंह की प्रतिमाओं से सुशोभित एक ब्राँज धातु की बड़ी देगची धरी हुई थी। देगची में मधुपर्क के अवशेष होने चाहिएँ क्योंकि अन्य दफन स्थानों में ऐसी ही सामग्री के साथ देगची में मधुपर्क के अवशेष प्राप्त हुए थे। सादी बुनाई के ऊनी वस्त्रों के वहाँ जो अवशेष मिले उनसे यह अनुमान होता है कि दीवारें ऊनी पर्दों से ढकी थीं।

सर्वाधिक दंग करने वाली वस्तु थी रथ। वह लकड़ी का और लोहे का बना हुआ था। लोहे की शृङ्खलाएँ भी उस पर लटकी हुई थीं। घोड़े जोतने के चमड़े के पट्टे आदि सवारी की पूरी सामग्री वहाँ थी। चौदह थालियों का एक प्रकार का भोजन प्रबन्ध भी रथ में धरा हुआ था। Bonn विश्वविद्यालय के प्राग्-इतिहास विषय के अध्यापक Otto Kleismann का कथन है कि वह दफनकक्ष और उसके अन्दर पाई गई अधिकतर वस्तुएँ (प्राचीन इटली में पाए गए) एट्रुस्कन् सभ्यता की दफनविधि से मिलते-जुलते हैं।

क्रुस्तपूर्व इटली की एस्ट्रुस्कन-सभ्यता पूरी तरह से वैदिक थी। इस बात का निवारण हमने इसी ग्रन्थ में अन्यत्र प्रस्तुत किया ही है। अतः उससे मिलती-जुलती बातें यदि जर्मनी में पाई गई हैं तो जर्मनी की भी उस समय की सभ्यता वैदिक ही थी इसमें कोई सन्देह नहीं।

कालगति की महिमा समझें या निकटता का परिणाम समझें, हरएक प्रदेश के देशों में कई बार एक ही समान प्रकार का रहन-सहन पाया जाता है। जैसे रोम नगर से जो ईसाई धर्म की लहर चली उसकी लपेट में धीरे-धीरे सारा यूरोपखण्ड आ गया। परिणामस्वरूप लगभग एक सहस्र वर्षों से पूरे यूरोप में ईसाई रहन-सहन, आचार-विचार आदि छाए हुए हैं। अतः जब इटली में वैदिक ढाँचे की एट्रुस्कन् परम्परा थी तो समकालीन जर्मनी में वही विचारधारा और जीवन प्रणाली होना स्वाभाविक था।

असमानता से संघर्ष

यदि दोनों की जीवन-प्रणाली समान न हो तो वह एक स्थायी संघर्ष का बड़ा कारण बन जाता है। जैसे भारत में जब करोड़ों लोग मुसलमान बनाए गए तो उन्होंने हिन्दुओं से शत्रुता करके पाकिस्तान के नाम से एक हिस्सा अलग करा लिया। अतः प्रत्येक दूरदर्शी शासक ने इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सीमावर्ती देशों के रहन-सहन, आचार-विचार आदि भिन्न न हों। यदि भिन्नता रही तो दोनों एक-दूसरे को निगलने की फिराक में रहते हैं। और ऐसे विरोध की परिस्थितियाँ जब उत्पन्न होती हैं तब हिन्दुओं जैसे दया और क्षमाहीन, मृदु हृदय वाले लोग बहुसंख्य, ताकतवर और अधिक समृद्ध होते हुए भी चीन और पाकिस्तान जैसे शत्रुओं से मार खा जाते हैं। अतः हिन्दुओं ने भगवान राम और कृष्ण के आदेशानुसार 'रणकर्कश' होकर कठोर राजनीति का अवलम्बन कर सारे विश्व में पुनः वैदिक सभ्यता का प्रसार करने का दायित्व निभाना चाहिए।

अक्तूबर १९१७ से रशिया द्वारा कम्युनिस्ट विचारधारा अपनाने के कारण यूरोप के अन्य राष्ट्र और अमेरिका का एक स्थायी शत्रु निर्माण होकर दोनों पक्षों में एक-दूसरे पर काबू पाने की होड़ लगी हुई है।

इतिहासज्ञों का दोष

ईसापूर्व इटली की एट्रुस्कन सभ्यता जैसी ही सभ्यता तत्कालीन जर्मनी में थी इस ऑटोक्लीस्कन के निष्कर्ष से हम पूर्णतया सहमत हैं।

किन्तु इस सन्दर्भ में हम आज तक के आधुनिक इतिहास संशोधकों की निष्कर्ष पद्धति का एक बड़ा दोष बतलाना चाहते हैं। सीमित और खण्डित निष्कर्ष पद्धति निकालने की उनकी पद्धति से हम कतई सहमत नहीं हैं। उदाहरणार्थ जब हड़प्पा और मोहेनजोदाड़ो के अवशेष प्राप्त हुए तो तत्कालीन विद्वानों ने यह कहना आरम्भ किया कि तत्कालीन अन्य संलग्न प्रदेशों से हड़प्पा और मोहेनजोदाडो की सभ्यता पूर्णतया भिन्न और अपने ढंग की एकमेव थी। कुछ वर्ष पश्चात् भारत में दूर-दूर के स्थानों पर और विश्व में अन्यत्र कई स्थानों पर जब इसी प्रकार के अवशेष पाए गए तो उन विद्वानों को मुंह की खानी पड़ी और यह कबूल करना पड़ा कि उस समय के

विश्व में उसी स्तर की सभ्यता और भी कई जगह थी।

यही बात यूरोप के बाबत दिखाई देती है। यदि ईसापूर्व सातवीं शताब्दी से ईसापूर्व पहली शताब्दी तक इटली में एट्रुस्कन् सभ्यता थी (यह इतिहासज्ञों को प्रदीर्घ समय से ज्ञात है) तो उन्होंने, वैसी ही सभ्यता तत्कालीन यूरोप के अन्य देशों में भी होनी चाहिए, यह निष्कर्ष आज तक क्यों नहीं निकाला ? उन्हें वाइहिनजेन Vaihingen के अवशेष प्राप्त होने तक राह क्यों देखनी पड़ी ? इटली की सभ्यता का उदाहरण देखकर यदि वे यूरोप के ऐतिहासिक स्थानों की खोज आरम्भ कर देते तो उन्हें कई स्थानों पर एट्रुस्कन् सभ्यता के समान अवशेष प्राप्त होते, और वे एक यूरोपव्यापी निष्कर्ष पर पहुँच सकते थे। अतः इतिहासज्ञों को खण्डित, सीमित निष्कर्ष निकालने की आदत छोड़ देनी चाहिए।

वाइहिनजेन की दफ़नभूमि से प्राप्त रथ, बाण, ढेकची पर लगी सिंह की प्रतिमाएँ, कमरबंध, बाजूबंध सर्पाकृति आदि सारे वैदिक संस्कृति के चिह्न हैं।

रथ को आंग्ल भाषा में Chariat कहते हैं। उसमें से पहले तीन अक्षर छोड़कर riot यह शब्द 'रथ' शब्द ही प्रतीत होगा। हो सकता है कि आंग्ल भाषा में अश्वरथ शब्द Aswarath लिखते-लिखते aschariot बन गया हो और पश्चात् as निकालकर केवल Chariot अक्षर रह गया हो।

दूसरा क्षत्रिय शासक

सन् १९८० के मार्च मास के National Geographic मासिक में एक सचित्र विस्तृत लेख में पुरातत्वीय उत्खनन में जर्मनी में पाए गए अन्य एक क्षत्रिय शासक के शव का ब्योरा दिया गया है। वह शव हॉच्डॉर्फ (Hochdorf) गाँव में पाया गया। वह गाँव पश्चिम जर्मनी के Stuttgardt नगर के समीप है।

हॉच्डॉर्फ गाँव में एक टीला-सा बना हुआ था। इसका उत्खनन करने पर ठेठ वैसा ही अन्य एक दफन कक्ष पाया गया जैसा वाइहिनजेन में था। उस कक्ष की चारदीवारी भी लकड़ी और पत्थरों से सुरक्षित की गई थी।

जाँच करने पर वह शव २५०० वर्ष प्राचीन सिद्ध हुआ। उस समय

यूरोप में ईसाई धर्म नहीं था, वदिक सभ्यता ही थी। शव उसी प्रकार ब्राँझ धातु के सुनहरे मंच पर लिटाया हुआ था। शव के पहने वस्त्र ठेठ महाभारत-कालीन पोशाक, जैसे भारतीय नाटकों में पहने जाते हैं, वैसे ही थे।

शव के पैरों के समीप पलंग के निकट वैसी ही सिंह मूर्तियों से सुशोभित डेकची रखी हुई थी जिसमें मधुपर्क के अवशेष पाए गए। सम्माननीय व्यक्ति का स्वागत करते समय या उसे विदा करते समय उसे मधुपर्क (मधु और दही का पेय) देने की वैदिक प्रथा है। आंग्ल भाषा में उसे Mead कहा जाता है। वह स्पष्टतया संस्कृत मधु शब्द ही है। हो सकता है कि मृत शासकों का प्राचीन जर्मनी की वैदिक सभ्यता के अन्तर्गत अन्त्यसंस्कार करते समय मृतक के मुँह में भी गंगाजल की भाँति मधुपर्क की कुछ बूँद डाल दी जाती हों और साथ डेकची में भी मधुपर्क रख दिया जाता हो। यूरोपीय संशोधकों ने मृतक के मुख की जाँच कर पता लगाना चाहिए कि क्या उसे मरणोपरान्त कोई मधुपर्क दिया गया था ?

शव के पास कुछ लिखित इतिहास क्यों नहीं ?

यूरोपीय विद्वान् कई बार यह आक्षेप उठा चुके हैं कि यूरोप में जिस प्रकार विविध कार्यालय, संस्थान या व्यक्ति के दस्तावेज कई सदियों के पाए जाते हैं वैसे भारत में क्यों नहीं पाए जाते ? इसका उत्तर हम पहले भी दे चुके हैं कि एक सहस्र वर्षों के इस्लामी और यूरोपीय हमलों से भारतीय ऐतिहासिक कागजात लूटे गए, नष्ट कर दिए गए या हो गए।

किन्तु हम अब यूरोप के लोगों से उल्टा यह पूछना चाहते हैं कि यदि उनमें इतिहास के प्रति भारतीय हिन्दू लोगों से अधिक आस्था रही है, ऐसी उनकी धारणा है, तो वे यह बताएँ कि यूरोप में प्रसिद्ध मृतकों के शव जहाँ भी बड़े समारम्भ के साथ दफनाए पाए गए हैं, वहाँ उन व्यक्तियों का इतिहास या तफसील पत्थर, ताड़पत्री, लकड़ी या कागज पर लिखा हुआ उन्होंने क्यों नहीं छोड़ा ? यदि उन शवों के पास मृतक का जीवन सम्बन्धी कुछ ब्यौरा छोड़ा गया होता तो आज हमें उसका ऐतिहासिक दृष्टि से कितना लाभ होता ?

सेक्सनी (Saxony)

प्राचीन जर्मनी के स्थलनामों की संस्कृत व्युत्पत्ति ढूंढ़ना ऐतिहासिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हो सकता है। जैसे जर्मनी के एक प्रान्त का नाम है सेक्सनी (Saxony), जो शक-सेनी का अपभ्रंश है। भारत में सक्सेना नाम के कई कुल हैं, जो शकों की सेना में हिसाब-किताब, पत्र-व्यवहार आदि का काम किया करते थे। शकों ने भारत पर हमला किया; अतः वे हिन्दू विरोधी थे, ऐसी कई लोगों की धारणा निराधार है।

कुरु

महाभारतीय युद्ध के समय एक सौ कौरव और पाँच पाण्डव सारे कुरु-कुल की सन्तान थे। विश्व के वे अन्तिम वैदिक सम्राट् होने के नाते उनके सगे-सम्बन्धी सर्वत्र शासनाधिकारी थे। एक जर्मन उपनाम Kuhr उसी 'कुरु' नाम का अपभ्रंश है।

जर्मन भाषा स्वयं संस्कृत का एक प्राकृत रूप होने के कारण जर्मन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत ही होनी चाहिए। उदाहरणार्थ आयझेन् यानि 'लोहा' इस अर्थ का शब्द जर्मन भाषा में Eisen ऐसा लिखा जाता है। वह 'आयसम्' ऐसा संस्कृत शब्द है।

जर्मनी में किसी व्यक्ति को आदरवाचक 'श्रीमान्' जैसा 'हर' (Herr) शब्द लगाया जाता है। उसका मूल वैदिक परम्परा में मिलता है। जैसे भारत में 'हर गंगे, हरे राम, हरे कृष्ण' ऐसा कहा जाता है। इतना ही नहीं अपितु महादेव को 'हर हर महादेव' इस प्रकार दो बार 'हर' इसलिए कहा जाता है कि वे महादेव होने के नाते अन्य देवों से एक श्रेणी ऊपर हैं। इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरु या स्वामी का उल्लेख करते समय स्वामी श्री श्री १०८ या सद्गुरु आनन्दमहाराज श्री श्री १००८ ऐसा कहने की प्रथा होती है। इसका अर्थ है कि उनका व्यक्तित्व सौ बार या १००८ बार 'श्री' कहने लायक श्रेष्ठ है।

प्राचीन यूरोप में वैदिक देवी-देवताओं का पूजन

ईसा पूर्व यूरोप में अम्बा, शिव, सरस्वती, गणेश, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा

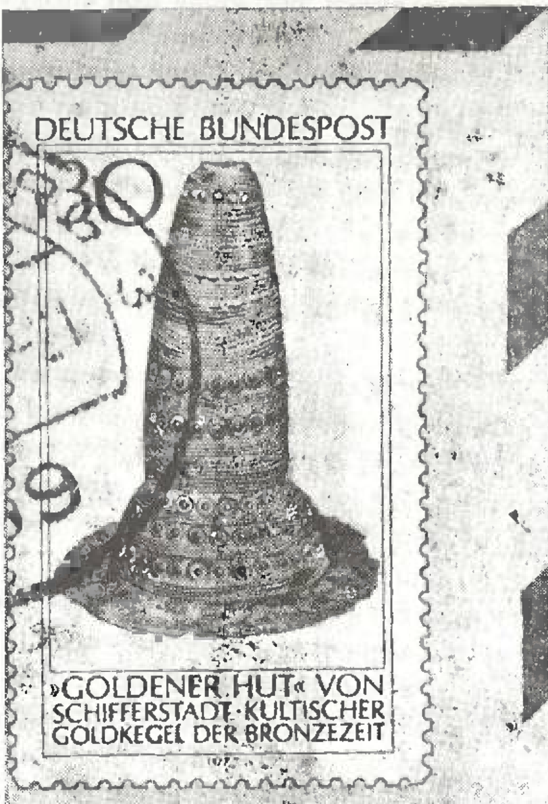
आदि अनेक वैदिक देवी-देवताओं का पूजन होता था। उनकी स्मृति यूरोपीय बोलचाल में Mother Goodess और Father God आदि शब्दों में पाई जाती है। अम्बा, दुर्गा, चण्डी, भवानी को Mother Goddess कहा करते हैं। मरिअम्मा उर्फ मरिमाता वैदिक देवी थी। इसका पूजन यूरोप में कृस्त की माता Mother Mary के नाम से अभी भी प्रचलित है। अन्नपूर्णा को 'अन्ना पेरीना' कहकर पूजते हैं। इस प्रकार कृस्तीयत कोई अलग धर्म नहीं है। पुरानी वैदिक प्रथाओं को ही एक अलग रूप देते हुए कुछ महत्वाकांक्षी सत्तापिपासु लोगों ने अपने आपको कृष्णीयन् के स्थान पर कृश्चियन कहकर एक अलग पन्थ का आभास निर्माण कर सत्ता और सम्पत्ति अपने काबू में कर ली।

उन कृस्ती व्यक्तियों ने यूरोप की वैदिक संस्कृति को दबाकर अपना आसन जमा लिया। ऐसा करते-करते उन्होंने यूरोपीय पुरातत्वविद, इतिहासकार तथा अन्य विद्वानों को भी इतना धर्मान्ध बना दिया कि वे विद्वान् या तो यूरोपखण्ड के प्राचीन वैदिक अवशेषों को पहचान नहीं पाए या जानबूझकर उनका विकृत विवरण प्रस्तुत करते रहे हैं। उदाहरणार्थ जर्मनी में सोने से मढ़ा हुआ एक शिवलिंग पाया गया। उसका चित्र प्रस्तुत करने वाला एक डाक टिकट भी पश्चिम जर्मनी की सरकार ने प्रकाशित किया है। (देखें पृष्ठ ६१ पर) Schifferstadt शहर में वह शिवलिंग पाया गया। वह नाम 'शिवस्थान' का अपभ्रंश है। तथापि डाक टिकट पर छपे वर्णन में कहा गया कि वह किसी पन्थ का hat यानि टोपी के आकार का एक विचित्र चिह्न है।

पादरियों की कूटनीति से प्रभावित यूरोपीय विद्वानों ने सारे यूरोप के ऐतिहासिक एवं पुरातत्वीय अन्वेषण को इस प्रकार कुत्सित मोड़ देकर उस का गला ही घोंट डाला है। 'किसी जंगली पन्थ का एक नगण्य चिह्न' ऐसा कहकर एक प्रकार से इस सम्बन्ध में अधिक कोई संशोधन की आवश्यकता नहीं ऐसा सूचित करने की उनकी प्रथा अशोभनीय और निन्दनीय है। शिवलिंग को एक 'टोपी' कह डालने से वाचकों या श्रोताओं को कितने भ्रम में डाल दिया जाता है?

जर्मन भाषा का संस्कृत उद्गम

अधिकतर जर्मन भाषाशास्त्रियों का भी वही हाल है। डार्विन के सिद्धान्त से प्रभावित यूरोपीय विद्वानों की धारणा यह है कि स्थान-स्थान के बन्दर भी जंगली मानव बने। उन मानवों ने अण्ट-सण्ट पिटपिट करते-करते विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ निर्माण कीं।



हमारी धारणा यह है कि सारे जीवों की उत्पत्ति करने वाले सर्व-शक्तिमान परमात्मा ने प्रत्येक जीवजाति को जिस प्रकार आवश्यकतानुसार

अपनी-अपनी भाषा दी वैसे मानव को भी संस्कृत भाषा उपलब्ध कराई। वैदिक विश्वसाम्राज्य के टुकड़े होने पर संस्कृत शिक्षा बन्द हुई। तत्पश्चात् विकृत प्रादेशिक उच्चारणों से विभिन्न भाषाएँ बनीं। जर्मन भाषा भी इसी प्रकार संस्कृत का एक प्रादेशिक आविष्कार है।

अत: जर्मन भाषा के ज्ञाता तथा अन्वेषकों को जर्मन भाषा को संस्कृत का एक प्राकृत रूप समझकर उसका अध्ययन करना चाहिए। उदाहरणार्थ जर्मन भाषा में नेता को Leiter कहते हैं। आंग्ल में उसे Leader कहा जाता है। वह 'लोकधर' यानि जनसमूहों का नियन्त्रक या मार्गदर्शक, इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

जर्मन भाषा में किसी प्रदेश के शासक को Gauleiter कहते हैं जो 'गौ लोकधर' यानि 'किसी प्रदेश की अनेक गौशालाओं पर नियन्त्रण रखने वाला' इस अर्थ से रूढ़ हुआ। वैदिक समाज में गौशालाओं का महत्त्व था। अत: 'गावालय घर' का जर्मन रूप Gauleiter हुआ।

जर्मन भाषा में विभिन्न नामों की संस्कृत जैसी ही विभक्तियाँ भी होती हैं।

जर्मनी में पाए गए इस शिवलिंग को एक तरह से किसी नगण्य, जंगली पन्थ का चिह्न कहकर जर्मन पुरातत्वविदों ने जनता को दिकमूढ़ बना दिया है। स्वयं जर्मन विद्वानों की भी, इस सम्बन्ध में कोई अधिक संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है, ऐसी धारणा उन्होंने करा दी। वास्तव में चित्र (पृष्ठ ६२) में दिग्दर्शित वस्तु सोने से मढ़ा हुआ शिवलिंग है। वह Schifferstadt गाँव में पाया गया। Stadt यानि स्थान। अत: Schifferstadt यानी शिव-हर-स्थान संस्कृत शब्द है। यह शिवलिंग जिस स्थान पर मिला उस स्थान पर अधिक लम्बा-चौड़ा तथा गहरा उत्खनन करके यह पता लगाना चाहिए कि वहाँ कितना बड़ा और विस्तृत शिवतीर्थ था? इस तरह यदि जर्मन विद्वानों को यह बताया जाए कि ईसाई धर्म से पूर्व उनकी वैदिक सभ्यता थी तो शायद वह निजी पुरातत्वीय अवशेषों का नए जागृत मनोभाव से, नई दृष्टि से पुन: अध्ययन करना और विचार करना प्रारम्भ कर देंगे।

अस्त्रीय प्रदेश की प्राचीन वैदिक सभ्यता

हंगरी (Hungary)

यूरोप खण्ड के मध्य भाग में ऑस्ट्रिया, हंगरी आदि देश हैं। Austria यह अस्त्रीय देश है। ऋषीय प्रदेश में रहने वाले ऋषि लोग जब विविध विद्या शाखाओं में प्रवीणता सम्पादन करते तब उनमें से कुछ शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण होते थे। विभिन्न अस्त्रों का उल्लेख पुराण-ग्रंथ और रामायण, महाभारत आदि में बराबर आता है।

ऑस्ट्रिया देश का नाम इन्हीं वैदिक अस्त्रों से पडा है जिनका निर्माण वैदिक शास्त्रों के आधार पर ऋषि-मुनि किया करते थे। ऑस्ट्रिया देश की राजधानी को आजकल विएना (Vienna) कहा जाता है। किन्तु ऑस्ट्रिया के परिचय साहित्य में इस नगर का नाम मूलत: 'विण्डोबन'(Vindoban) बताया गया है। विण्डोबन शब्द 'वृन्दावन' का अपभ्रंश है। इस प्रकार यूरोप में महाभारतीय या कृष्णचरित्र सम्बन्धी कई उल्लेख गहराई से ढूंढने पर बिखरे दीखते हैं।

इतिहास अपने आपको दोहराता है ऐसी लोकोक्ति है। तदनुसार कम्युनिस्ट रशिया तथा यूरोप के अन्य देश, इनमें जो विरोध है, उसके कारण ऑस्ट्रिया देश के दोनों ओर वे विरोधक अपने-अपने अस्त्र तैयार किये एक-दूसरे को धमका रहे हैं।

ऑस्ट्रिया के निकट हंगेरी देश है। हंगेरी यह शृंगेरी का अपभ्रंश है। उस प्रदेश में वन, पहाड़ (जिन्हें संस्कृत में शृंग कहा जाता है), झरने आदि प्रकृति का शृंगार होने के कारण उस प्रदेश का नाम शृंगेरी था। 'श' का उच्चार 'ह' होने के कारण शृंगेरी का उच्चार हंगेरी हुआ। भारत में शृंगेरी नाम का स्थान है। यूरोप में वही नाम था किन्तु उसका अपभ्रंश हंगेरी हुआ है।

Osnia Decoro नाम के एक हंगोरियन विद्वान थे। उन्होंने तिब्बती शब्दकोष की लिखी प्रस्तावना में कहा है कि—"मेरे अपने देशवासियों को यह जानकारी देने में मुझे गर्व होता है कि अन्य किसी यूरोपीय देश की अपेक्षा संस्कृत के अध्ययन से हंगेरी की जनता को बड़ा लाभ होगा। संस्कृत के अध्ययन से हंगेरियन जनता को निजी स्रोत, रहन-सहन, रिवाज, भाषा आदि के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी क्योंकि संस्कृत का ढाँचा हंगेरियन भाषा के ढाँचे के समान है। साथ ही पश्चिमी यूरोप की भाषाओं से हंगेरियन भाषा की गढ़न अलग प्रकार की है। हंगेरियन भाषा की संस्कृत भाषा से समानता दर्शाते हुए वे लिखते हैं—

"As an example of the close analogy in the hungarian language, instead of prepositions, postpositions are aften used, except with the personal pronouns. Again from a verbal root, without the aid of any auxiliary verb, and by a simple syllabic addition, the several kinds of verbs distinguished as active, passive, casual, desiderative, frequentative, reciproeal etc. are formed in the hungarian in the same manner as in Sanskrit.

ऊपर दिया गया उद्धरण Edward Pocock द्वारा लिखित India in Greece or Truth in Mythology ग्रंथ के Appendix XVIII, पृष्ठ ३९४ से लिया गया है (प्रकाशक John Griffith & Co., Glasgow, सन् १८५२)।

यदि हंगेरियन भाषा और संस्कृत भाषा में एक प्रकार की समानता है तो संस्कृत और अन्य यूरोपीय भाषाओं में अन्य प्रकार की समानता है। इस तरह सारी यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत के ही प्राकृत रूप हैं।

हंगेरी की राजधानी (Budapest) 'बुडापेस्ट' कहलाती है जो बुद्धप्रस्थ का अपभ्रंश है। शाक्यमुनि, सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का काल यूरोपीय विद्वानों ने ईसापूर्व छठवीं शताब्दी मान रखा है, जो १३०७ वर्ष और पीछे जाना चाहिए। इससे इतिहास की जानकारी में बड़ा अंतर पड़ता है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व ही यदि बुद्ध का काल

माना जाए तो आज से बुद्ध तक के २५०० वर्षों के इतिहास की रूपरेखा स्थूलरूप से ज्ञात है ही। किन्तु बुद्ध का काल यदि आज से ३८०० वर्ष प्राचीन हो तो सन १३०० वर्षों की अधिक अवधि का इतिहास विश्व को सर्वथा अज्ञात रहा है, इस बात का ध्यान रखना होगा। उन्हीं सुप्त-गुप्त १३०० वर्षों में यूरोप की प्राचीन वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा का इतिहास खो गया है।

बुद्ध और शंकराचार्य के काल १३०० वर्ष पीछे ले जाने की आवश्यकता क्यों पड़ती है इसकी चर्चा हमारे 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' नाम के ग्रंथ के दो स्वतन्त्र अध्यायों में सर्वांगीण प्रमाणों सहित प्रस्तुत की गई है। मानवीय सभ्यता जीझस कृस्त से अधिक प्राचीन नहीं हो सकती ऐसी ऊटपटांग निजी धारणा के अनुसार यूरोपीय ईसाई विद्वानों ने भारतीय इतिहास की निर्मम छँटनी कर रखी है। उनके इस आगन्तुकी हस्तक्षेप के कारण संवत् चलाने वाला विक्रमादित्य और शक गणना का निर्माता शालिवाहन इन दोनों को कपोलकल्पित सम्राट घोषित कर इतिहास में से हटा दिया गया। उस हस्तक्षेप के कारण आंग्ल शासनकाल में सारे भारतीय इतिहासज्ञों को भारत का १३०० वर्षों का इतिहास भुला दिया गया। अतः भारतीय इतिहासज्ञ भी वही लंगड़ा-लूला, १३०० वर्षों की छंटनी वाला इतिहास ही पढ़ाते रहते हैं।

पोलैंड (Poland)

यूरोप खण्ड में पोलैंड नाम का देश है। इसका एक नगर है Czestochowa। इसमें एक प्राचीन देवी का स्थान है। उस देवी को Black Virgin कहा जाता है। वह काली माता का अनुवाद है। यद्यपि Virgin शब्द का अर्थ आंग्लभाषा में सामान्यतया 'कुमारी' समझा जाता है तथापि जीझस कृस्त की माता Virgin Mary कहलाने के कारण पोलैंड की वह देवी काली उर्फ कालिका माता ही है इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए तथापि यूरोप के विद्वानों को, उनकी लुप्त वैदिक सभ्यता का अज्ञान होने से, उन्होंने पोलैंड की उस वैदिक देवी को ठीक पहचाना नहीं। कृस्ती

प्रचारकों ने कृस्ती धर्म फैलाने की धाँधली में वैदिक देवी-देवताओं को ईसाई रूप देकर यथातया सम्मिलित कर उनके वैदिक व्यक्तित्व को मिटाना चाहा। तथापि अब हम पोलैंड के अभ्यासकों को विदित कराना चाहते हैं कि यदि वे Czestochowa नगर के कालीमाता के इतिहास का पुनः भली प्रकार मूलगामी संशोधन आरम्भ कर दें तो उन्हें उनके दवाकर लुप्त किए गए वैदिक संस्कृति के महत्वपूर्ण सूत्र हाथ आ जाएंगे।

वह देवी की मूर्ति अस्न गोरा (Asna Gora) नाम के मठ में प्रतिष्ठापित है। यह तो और भी महत्वपूर्ण बात है। वह नाम स्पष्टतया ईशान गौरी यानि शंकर और गौरी का द्योतक है। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वह नगर एक बड़ा प्राचीन और प्रसिद्ध वैदिक शिव तीर्थक्षेत्र रहा है। उससे लोगों को परावृत्त करना कठिन होने के कारण पादरियों को उस वैदिक देवस्थान को ईसाईरूप देकर ईसाई परम्परा में सम्मिलित करना पड़ा।

Yugoslavia, Czechoslovakia, Poland (यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड) यह तीनों देश मध्य यूरोप में एक-दूसरे के निकट हैं। 'स्लावीय' और 'स्लावकीय' यह दोनों 'मालवीय' जैसे संस्कृत रूप हैं। 'शक स्लावकीय' यह एक प्राचीन दैत्य वंशीय जमात यूरोप में थी। उन्हीं की दूसरी शाखा शकसेनी कहलाती थी। उसके कुछ लोग आंग्लभूमि (अंगुल देश) में जा बसने से अंगुल शक सेनीय यानि Anglo Saxson कहलाए।

पोलैंड की भाषा संस्कृत की एक प्राकृत शाखा ही है। 'जरा इधर देखो तो' ऐसा पोलैंड की भाषा में कहना हो तो 'पपश्य' कहते हैं। वह पूर्णतया संस्कृत है। पोलैंड के लोग भारत को निजी संस्कृति का मातृ देश मानते हैं। इस संबन्ध में पोलैंड के लोगों की एक कहावत है कि kto poznal india, poznal colyswiat यानि भारत दर्शन से विश्व-दर्शन हो जाता है या यूं कह सकते हैं कि 'जिसने देखा भारत उसने देखा जगत'। पोझनाल शब्द 'पश्यति-अपश्यत' आदि संस्कृत शब्दों का रूप है। उसी प्रकार Colyswiat यह "कुल जगत" का अपभ्रंश है। इस प्रकार संस्कृत ही पोलैण्ड की भाषा का स्रोत है, यह पाठक देख सकते हैं।

बल्गारिया (Bulgaria)

'बलगरीय' यह 'श्रेष्ठ बात' अर्थ का संस्कृत शब्द है अर्थात् बलवान् या शक्तिमान यह इसका अर्थ है।

लगभग छः-सात वर्ष पूर्व जब बलगारीय देश में भारतीय फिल्मों का समारोह हुआ था तब यह देखा गया कि उस चित्रपट के सम्भाषणों में जो अल्पस्वरूप संस्कृत शब्द थे वे बलगरीय प्रेक्षक समझ पाते थे। किन्तु भारतीय फिल्मों में जो उर्दू शब्दों की भरमार होती है वह बलगरीय लोगों को समझ नहीं पड़ती थी। उदाहरणत: एक फिल्म का नाम था 'स्पर्श'। यह शब्द ज्यों-का-त्यों बलगरीय लोगों की बोलचाल में प्रयोग होता रहता है। बलगरीय शब्दकोष में संस्कृत शब्दों की भरमार है। जब वहां के भारतीय दूतावास ने इस तथ्य की जानकारी बलगरीय सरकार को दी, तो बलगरीय शासन ने तुरन्त निजी विद्यालयों में संस्कृत भाषा पढ़ाना आरम्भ कर दिया। बलगरीय देश के Sofia विश्वविद्यालय में संस्कृत शिक्षा का एक विशिष्ट विभाग है।

चेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia)

Czechoslovakia यह झकस्लावकीय शब्द है, यह हम ऊपर कह चुके हैं। उस देश के महाविद्यालयों में Science यानि भौतिकशास्त्र का जो विभाग होता है उसे 'वेद' ही कहा जाता है। इस से दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। एक तो यह कि वेदों में इस विश्व का सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान सांकेतिक रूप में प्रस्तुत है, दूसरा यह कि झकस्लावकीय लोगों को वेद ज्ञात थे।

झकस्लावकीय लोगों में चीनी के लिए संस्कृत शर्करा का ही अपभ्रंश 'सुकर' प्रचलित है।

किसी प्राणी के माँस को झक उर्फ शक भाषा में 'मांस' ही कहा जाता है। इन चन्द उदाहरणों से झकस्लावकीय जनता ईसाई बनाए जाने के पूर्व वैदिक प्रणाली और संस्कृत भाषा की अनुयायी थी, इस तथ्य का पता लगता है।

हालैण्ड (Holland)

हालैण्ड नाम पोलैण्ड से मिलता-जुलता है। इनमें 'लैण्ड' यह संस्कृत

स्थान का अपभ्रंश है। हालण्ड की जनता को Dutch (डच) कहा जाता है। वह दैत्य का अप भ्रंश है।

उस देश की राजधानी का नाम Amsterdam है जो संस्कृत 'अन्तर्धाम' शब्द का थोड़ा विकृत उच्चार है। सागरस्तर से नीचे वह नगर होने से उसे अन्तर्धाम कहा गया है। सारे हालैण्ड देश का ही स्तर सागर की सतह से नीचे होने से उसे Netherland भी कहते हैं। यह भी संस्कृत शब्द ही है। उसके आरम्भ में 'A' अक्षर लगाकर Antherland, अन्तरलैंड यानि अन्तस्थान शब्द बनता है। इस प्रकार देश का नाम अन्तरस्थान और राजधानी का नाम अन्तर्धाम कितने अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि उस देश के तथा नगर के तट पर दीवार या बाँध बनाकर सागर का पानी रोकना पड़ता है।

उसी अन्तर्धाम (Amsterdam) नगर में सबसे बड़े होटल का नाम 'कृष्णपोल्स्की' होटल है। कृष्णपोल्स्की का अर्थ है पोलैण्ड का कृष्ण और उस होटल का स्वामी पोडलैण्ड का कृष्ण नाम का धनिक ही है।

बेल्जियम (Belgium)

हालैण्ड देश के निकट बेल्जियम देश है। उसका नाम 'बल' शब्द पर आधारित हो सकता है। विद्वान लोग बेल्जियम् की वैदिक संस्कृति का अन्वेषण करें।

गौ को माता कहने की प्रथा

भारतीय लोग गौ को माता मानते हैं। बेल्जियम, हालैण्ड आदि परिसर में भी गाय को माता मानने की प्रथा है। इस सम्बन्ध में दिल्ली के आंग्ल साप्ताहिक Organiser में लगभग २० वर्ष पूर्व यूरोप के हालैण्ड आदि प्रदेश के किसी देश में प्रतिष्ठित गौ की प्रतिमा का फोटो छपा था। गौ की मूर्ति के नीचे लिखा था OS MOM (ओस् माम्) यानि 'अस्माकं माता' यानि हमारी माता। यह शब्द भी लगभग संस्कृत है और गौ को माता मानने की भावना भी वैदिक प्रणाली की है।

Luxemberg यानि लक्ष्मीदुर्ग

बेल्जियम के साथ ही Luxemberg नाम का छोटा देश है जो लक्ष्मी दुर्ग शब्द का अपभ्रंश है।

स्कन्दनावीय प्रदेश का वैदिक अतीत

यूरोप खण्ड के उत्तरी भाग में नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क और आइसलैण्ड ऐसे चार अलग-अलग देश होने पर भी उन्हें प्राचीनकाल से सयुक्त रूप से स्कन्दनावीय प्रदेश (Scandinavia) कहते हैं।

उस प्रदेश पर भी दैत्यों का अधिकार था तथापि देव-दानव युद्ध में देव सेनापति स्कन्द के नेतृत्व में एक बड़े नौकादल ने उस प्रदेश पर अपने डेरे जमाने के कारण उसे स्कन्दनावीय उर्फ 'स्कँडिनेव्हिया' (Scandinevia) नाम पड़ा।

वह सागर से घिरा हुआ प्रदेश है। आसपास हजारों छोटे-छोटे द्वीप भी हैं। अतः वहाँ बड़े पैमाने पर नौकाओं से ही सामान्यजनों का आवागमन होता रहा है।

Vikings नाम के उस प्रदेश के लोग बड़े शूरवीर होते थे। इतिहास में उन लोगों की आक्रामक वीरता विख्यात है। 'व्हायकिंग्ज' यह संस्कृत वीरसिंह नाम उर्फ उपाधि है।

इस प्रदेश के निवासी Count Bjornstierno उर्फ Biornstierna एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। इन्होंने The Theogoing of the Hindus यानि 'हिन्दुओं के देवगण' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें वे लिखते हैं कि "ऐसा प्रतीत होता है की महाभारतीय युद्ध से पूर्व ही हिन्दू लोग स्कन्दनावीय प्रदेश में जा बसे थे।"

इस तरह हर विचारवान विद्वान को जहाँ-तहाँ वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा के चिह्न दिखाई देते हैं। इससे वे अनुमान लगाते हैं कि भारत से ही हिन्दू लोग वहाँ जा बसे होंगे।

इस पर हम यह कहना चाहेंगे कि इसके दो पर्याय हो सकते हैं। एक तो यह कि यदि कृतयुग के आरम्भ में ऋषीय प्रदेश—तिब्बत और

गंगातट तथा पंजाब इसी प्रदेश में देवतुल्य, सर्वकार्यक्षम और सर्व विद्याप्रवीण मानवों की निर्मिती हुई। उन मानवों ने यथावकाश पृथ्वी के विविध प्रदेशों में पहुँचकर सर्वत्र वैदिक सभ्यता आरम्भ कर दी। पुराण, रामायण-महाभारत आदि में दिये गए ब्यौरों से इस अनुमान की पुष्टि होती है।

किन्तु ऊपर कहा सिद्धान्त मानने में एक बाधा खड़ी होती है। वह बाधा आधुनिक पाश्चात्य भौतिक वैज्ञानिकों के निष्कर्ष की है। वे कहते हैं कि भू-गर्भीय चट्टानें और हिमालय परिसर की जांच करने पर उनका निर्णय यह है कि पृथ्वी के अन्य भाग भले ही प्राचीन हों, हिमालय का निर्माण हुए केवल पाँच या दस लाख वर्ष ही बीते हैं। उससे पूर्व वहाँ एक सागर था। सागर तल में धरतीकम्प, ज्वालामुखी के विस्फोट आदि उथलपुथल के कारण वहां हिमालय खड़ा हो गया।

क्या ऐसे निष्कर्षों पर विश्वास किया जा सकता है ? कई बार यह देखा गया है कि ऐसे निष्कर्ष किसी व्यक्ति के अनुमान मात्र होते हैं, जिसे दूसरा कोई शास्त्रज्ञ अपने अन्य सिद्धान्त द्वारा काट देता है।

इतिहास के क्षेत्र में शास्त्रज्ञों को कपोलकल्पनाओं का कोई स्थान नहीं होता। पूर्वजों से परंपरागत जो वर्णन, ब्योरा, संस्मरण, दन्तकथाएं आदि वंशजों को प्राप्त होते हैं उसे इतिहास कहा जाता है। आधुनिक युग में यूरोपीय ईसाई लोग हर क्षेत्र में अग्रसर होने के कारण उन्हें इतिहास-क्षेत्र में बारबार इनके शास्त्रज्ञों की अनुमानी पतंगबाजी का सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि यूरोपीय ईसाइयों की परम्परा १९८७ वर्ष तक ही सीमित है। उसके पार उन्हें मोतियाबिन्दग्रस्त व्यक्ति की भाँति कुछ दिखाई नहीं देता। अत: वे भौतिकशास्त्रियों के अनुमानों का आधार ढूंढते रहते हैं।

भारतीयों की यानि वैदिक परम्परा के लोगों की, ऐसी अवस्था नहीं है। उनके पास विश्व उत्पत्ति के प्रथम दिन से सारे मानवीय इतिहास की स्पष्ट और पूरी रूपरेखा है। उसके अनुसार हिमालय, गंगा, तिब्बत आदि का अस्तित्व आरम्भ से बना हुआ है। फिर भी लगभग पांच लाख वर्ष पूर्व ही हिमालय की निर्मिती हुई, यह पाश्चात्यों का

सिद्धान्त सही हो तो हम यह कहेंगे कि प्रलय के पश्चात् जब नई सृष्टि का आरम्भ हुआ तभी से हिमालय है और वहीं से हमारे वर्तमान युग का इतिहास आरम्भ होता है। अत: इतिहास के क्षेत्र में भौतिक शास्त्रज्ञों के अनुमानों से विचलित होना अयोग्यता है। हम तो यह कहेंगे कि भौतिक शास्त्रों के सिद्धान्त यदि इतिहास से असंगत हों तो हो सकता है कि भौतिक शास्त्रों की निष्कर्ष पद्धति या उनका हिसाब-किताब गलत हो। अत: भौतिक निष्कर्षों से इतिहास को सुधारने के बजाय इतिहास द्वारा भौतिक शास्त्रों के निर्णय को सँवारना ठीक रहेगा।

ईश्वर ने केवल ऋषीय प्रदेश और उत्तरी भारत में ही मानव का निर्माण किया और वे मानव वैदिक सभ्यता को विश्व के विविध भागों में फैलाते गए, यह एक पर्याय है। दूसरा पर्याय यह हो सकता है कि ईश्वर ने गोरे, काले, पीले आदि विभिन्न वर्णों के मानव पृथ्वी के विविध प्रदेशों में निर्माण कर उन्हें वेदों का सर्वांगीण, सर्वकष ज्ञान उपलब्ध कराने से सारे विश्व में वैदिक सभ्यता ही प्राचीनतम दिखाई देती है।

इन दोनों पर्यायों की सम्भावना एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी। जैसे एक गँवई घर-घर जाकर गायकी सिखाए या विभिन्न स्थानों से शिष्यगण गँवई के घर आकर गायन सीखने के पश्चात् अपने-अपने प्रदेशों में लौटकर गायन कला का प्रसार करें।

अत: एक केन्द्र से वैदिक सभ्यता का विश्व प्रसार हुआ या आरम्भ से ही अनेक प्रदेशों में एक साथ वैदिक सभ्यता रही, इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं। इतना समझ लेना पर्याप्त होगा कि वैदिक प्रणाली ही सारे मानवों की मूल और प्राचीनतम देवदत्त सभ्यता है। वह बुद्ध, ईसा या मोहम्मद जैसे एक मानव द्वारा, एक प्रदेश के लिए निर्मित प्रणाली नहीं है।

स्वर्ग-नर्क

स्कन्दनावीय प्रदेश के अन्तर्गत स्वीडन आदि जो देश हैं उनके मूल नाम और प्रचलित नाम भिन्न-भिन्न हैं। जैसे हम अपने देश को भारत या हिन्दुस्थान कहते हैं फिर भी अन्य लोग हमारे देश को इण्डिया कहते

हैं। जिस देश को अन्य लोग जर्मनी कहते हैं उसके निवासी निजी देश को हाइट्सलैण्ड कहते हैं। इसी प्रकार स्वीडन को तद्देशीय जन 'स्वर्ग' (Sverge) लिखते हैं और नॉर्वे (Norway) के लोग निजी देश को नॉर्गे (Norge) यानि 'नर्क' लिखते हैं।

सामान्य भारतीय बोलचाल में 'नर्क' भले ही निंदात्मक राष्ट्र बन गया हो किन्तु उसे दूसरी दृष्टि से भी देखने की आवश्यकता है। जैसे पाताललोक, यमपुरी, रावण की लंका आदि कुछ प्रदेशों को ऐतिहासिक घटनाओं के कारण या दन्तकथाओं द्वारा कुछ लांछन लग गया है फिर भी वे शक्तिशाली लोकबस्ती के प्रदेश थे, ऐसा भी प्रतीत होता है। उसी प्रकार स्वीडन और नॉर्वे के मूलनाम मूल वैदिक संस्कृत 'स्वर्ग' और 'नर्क' हैं और तद्देशीय जन उन्हें आरम्भ से वैसे ही लिखता आ रहे हैं, यह बात ध्यान देने योग्य है। अतः पाठक एक बात को क्रम प्राप्त मानें या बड़ा आश्चर्य माने कि Norway यानि Norge उर्फ 'नर्क' देश में एक नगर का नाम भी ठीक Hell यानि 'नर्क' ही है।

Sweden (स्वीडन) नाम भी 'स्वेदन' यानि जिस देश में 'स्वेद नहीं आता' यानि सर्वकाल ठण्डक ही रहती है, इस अर्थ से प्रचलित है।

स्वीडन की राजधानी Stockholm है। उससे कुछ ही दूरी पर 'उपशाला' नाम का नगर है जो नाम पूर्णतया संस्कृत है। प्राचीन समय से मुख्य गुरुकुल उर्फ 'शाला' स्टॉकहोम में प्रस्थापित होने के पश्चात् उसकी एक शाखा समीप के अन्य नगर में स्थापन होने से उस नए संस्थान् का उपशाला नाम पड़ा, जो अभी तक ज्यों-का-त्यों बना हुआ है।

वेद

महाभारतीय युद्ध के फलस्वरूप वैदिक समाज टूट गया। तत्पश्चात् वैदिक सभ्यता कई प्रदेशों से नष्ट होती चली गई। उस अवधि मे संस्कृत और वेद शिक्षा के अभाव के कारण 'वेद' का उच्चार 'एड्डा' होने लगा और वेदों की ऋचाएँ लुप्त होकर प्राचीन लोककथा, दन्तकथा आदि का 'एड्डा' में समावेश हुआ। इस प्रकार यूरोप से वेद नामशेष हो गया और एक नाम मात्र 'एड्डा' रह गया। किन्तु उसमें वेदों का अन्तरंग कतई

नहीं रहा। जैसे कोई शिकारी मारे हुए चीते को लाकर, उसका मांस निकाल उसमें भूसा भरकर केवल एक दिखाऊ चेतनाहीन प्राणी बनाकर अपने कक्ष में रखवा देता है, वही यूरोप में, विशेषकर स्कन्दनावीय प्रदेश में, वेदों की दशा हो गई।

किसी खण्डहर में भूमि में दबा कोई नारियल यदि प्राप्त हो तो उस का ऊपरी भाग कठिन होने के कारण सुरक्षित रहेगा किन्तु अन्दरूनी गरी सूखकर नष्ट हो जाएगी। अरब देशों में, अफ्रीकी देशों में और यूरोप में वेदों का वही हाल हुआ।

वैदिक आकृतियाँ

डोरोथी चैपलीन (Dorothea Chaplin) नाम की एक आंग्ल विदुषि ने Matter, Myth and Spirit Keltic and Hindu Links नाम का ग्रन्थ लिखा। उसमें पृष्ठ १ से १२ तक में उसने लिखा है कि "कोलम्बस पूर्व अमरीकी जीवन पर प्राचीन भारतीय वैदिक चिह्न और लोककथा का कितना गहरा प्रभाव था यह अभी-अभी ज्ञात हुआ है। किन्तु स्कॉटलैण्ड और स्कन्दनावीय प्रदेशों में भी हाथी सम्बन्धी चिह्न और किंवदंतियाँ प्रचलित थीं, यह भी सोचने की बात है।"

वैदिक प्रथा में हाथी बड़ा आदरणीय और पवित्र प्राणी माना गया है। गणेश देवता पर हाथी का ही सिर है। वैदिक प्रथा में बने महल और मन्दिरों में हाथियों की छोटी-बड़ी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। 'गज'—विवेक, बुद्धिमत्ता और पवित्र बल का प्रतीक है। स्कन्दनावीय प्रदेशों में हाथी नहीं पलते तथापि वहाँ की कला में गज का जो अन्तर्भाव होता रहा है उसका एकमात्र कारण यह है कि वहाँ वैदिक सभ्यता विद्यमान थी।

नाम और उपनाम

स्कन्दनावीय प्रदेश के नामों की व्युत्पत्ति वैदिक परम्परा से ही प्राप्त होती है। जैसे उन लोगों के Amundsen, Sorensen आदि उग्रसेन, सूरसेन, भद्रसेन जैसे नाम हैं। उनके कई नामों में वेदराम, वेदप्रकाश की भांति 'वेद' शब्द भी पाया जाता है।

दनु-मर्क

स्कन्दनावीय प्रदेश में अन्तर्भूत एक देश है डेन्मार्क (Denmark), जो दनु और मर्क या दानव मर्क का प्रदेश उस अर्थ से पड़ा है। संस्कृत पुराणों में दनु तथा मर्क नाम उल्लिखित हैं।

बुद्ध की प्रतिमाएं

स्कन्दनावीय प्रदेश के हिमाच्छादित सागर में डूबी प्राचीन नौकाओं में बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। भारत में जब शाक्यमुनि सिद्धार्थ गौतम-बुद्ध विख्यात हुए तो विश्वभर के सारे वैदिक केन्द्रों में बुद्ध की मूर्तियाँ भी रखी जाने लगीं। जिस समय भारत का नाम सारे विश्व में विख्यात था इसी प्रदीर्घ अवधि में बुद्ध के त्याग और वैराग्य के कारण उनका नाम विश्व में चमका और जहाँ-तहाँ बुद्ध की मूर्ति अत्यादर से रखी जाने लगी। अतः वह स्कन्दनावीय प्रदेश में भी पहुँची।

शिव पूजन

यूरोप के अन्य प्रदेशों की तरह स्कन्दनावीय प्रदेश में भी शिवभक्ति और शिवपूजन के कई अवशेष प्राप्त होते हैं। किन्तु वहाँ जैसे-जैसे ईसाई पादरियों का प्रभाव बढ़ता गया वैसे-वैसे उन्होंने शिवपूजा को अश्लील, लैंगिक, कामुक प्रथा आदि दूषण लगाकर उसे नष्ट करने का यत्न किया। भारत में भी इस प्रकार के यत्न होते रहे हैं। शिवपूजा को एक जंगली, असंस्कृत रिवाज कहकर उसकी भर्त्सना करने वाले लोग भी पाये जाते हैं। ऐसे लोग अधिकतर मूर्तिपूजा के विरोधी या इस्लाम तथा ईसाई मतावलम्बी होते हैं।

शिवलिंग को स्त्री तथा पुरुष के सम्भोग का या उनकी जननेन्द्रियों का प्रतीक मानना गलत है। सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व सृष्टि के मूल के रूप में आरम्भ में 'ब्रह्मदण्डमभूदेकं' ऐसा जो वर्णन ब्रह्माण्डपुराण में आता है उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मदण्ड का साक्षात् स्वरूप शिवलिंग के रूप में दर्शाया गया है।

स्कन्दनावीय प्रदेश के विद्वान् ग्रन्थकार Count Bjornstierna अपने ग्रंथ के पृष्ठ १६३ पर लिखते हैं कि "स्कन्दनावीय लोगों की पौराणिक

कथाएँ भी वैसी ही हैं जैसे हिन्दुओं की। यह एक और प्रमाण है कि स्कंदनावीय प्रदेश में हिन्दू (वैदिक) सभ्यता ही थी।

स्कन्दनावीय प्रदेश के साथ ही Finsond और Lithunia नाम के प्रदेश हैं। "उनमें संस्कृत भाषा सीखने की आकांक्षा पाई जाती है। इनकी प्राचीन देवी वैदिक देवियों से मिलती-जुलती है।" यह जानकारी आर्यतरंगिणी नाम के ग्रन्थ के खण्ड १ में पृष्ठ २७ पर पाई जाती है। अकल्याणरामन् द्वारा लिखा वह दो खण्डों का ग्रन्थ Asia Publishing House मुम्बई का सन् १९६९ का प्रकाशन है।

फिनलैण्ड

प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'फणि' लोगों का उल्लेख है। उन्हीं को विद्यमान यूरोप में Fin उर्फ Finnish कहा जाता है। फणिस्थान का अपभ्रंश फिनलैण्ड (Finland) हुआ है। उनमें सार्वजनिक उष्ण जल वाले स्नानगृह होते हैं जिन्हें Sauna (सोना) कहा जाता है। वह 'स्नान' शब्द का ही अपभ्रंश है। गुड़गाँव (गुरुग्राम) शहर से २५ कि. मी. दूर हरियाणा राज्य में भी गर्म जल का एक कुआँ है, उसे भी सोना कहा जाता है।

यूरोप में वेदों का अस्तित्व

Laura Elizabeth Poor नाम के साहित्यकार ने 'Sanskrit and its Kindered Literatures, Studies in Comparative Mythology' नाम का ग्रन्थ लिखा है। वह सन् १७७९ में लन्दन की C. Kegan Pale Co., Peternoster Square, ने प्रकाशित किया है।

इस ग्रन्थ में उल्लेख है कि "ट्यूटॉनिक वंश के स्कन्दनावीय शाखा के लोगों का एद्दा (वेद) यह पवित्र ग्रन्थ है। उनमें गोथ (Goth) यानि जाट की विविध शाखाएं भी अन्तर्भूत हैं। जैसे Moesogoths जो डेन्यूब नदी की घाटी में रहते हैं; स्पेन में निवास करने वाले Vise-goths, इटली देश में बसे हुए Ostrogoths, फ्रांस की जनता और इटली देश में एक अलग राज्य की स्थापना करने वाले Lambards लोग। Teutons लोगों का प्रथम बार उल्लेख Tacitus नाम के रोमन इति-

हासकार ने किया है। वे जर्मनी में बसे हुए थे। ईसाई बनाए जाने के पूर्व उन लोगों के संस्कार और धारणाएँ जानने के लिए हमें Iceland जाना होगा।

सन् ८७४ में एक जनसमूह, Norway देश के धवल बाल वाले Harold Harfager के कारण, Iceland में जा बसा। वे निजी काव्य, रीति-रिवाज और धर्मशास्त्र आदि सब साथ ले गए और उस अलग-से ज्वालामुखी वाले निर्जन द्वीप में उन्होंने सैकड़ों वर्षों तक अपनी प्राचीन प्रथाएं और पोथियां जतन कर रखीं। सन् १६३६ में उस साहित्य का पता लगा। Teutonic कुल के लोगों की जीवन-प्रणाली का परिचय उस स्कन्दनावीय प्रदेश के साहित्य से प्राप्त होता है। उस साहित्य की विचार-धारा संस्कृत साहित्य के जैसी ही है। स्कन्दनावीय प्रदेश के वे जो चार देश हैं उनका प्राचीन साहित्य लगभग समान ही है।"

'गोथ' (Goth) यह जो शब्द ऊपर आया है वह संस्कृत 'गोत्र' शब्द है। एक ही गोत्र के कुल एक गुरुकुल के पढ़े हुए होते थे। सारे हिन्दुओं को निजी गोत्र की बाबत श्रद्धापूर्ण आदरभाव होता है।

ऊपर दिए उद्धरण में Teutons या Teutonic आदि जो शब्द हैं वे सारे दैत्य जाति के अपभ्रंश हैं। रोमन इतिहासकार Tacitus भी 'दैत्यम्' ही है। अत: उनका साहित्य एक जैसा होना स्वाभाविक है। इससे यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि एड्डा यह वेदों का स्कन्दनावीय प्रदेश का इसी प्रकार का स्थानीय प्राकृत संस्करण था जैसे झेंद अवैस्था ईरानियों का अपना वेदों का प्राकृति संस्करण था।

वेदों का प्रादेशिक प्रकृतिकरण

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् सारे विश्व में वेद-पठन की प्रथा एकाएक बन्द हो जाने के कारण स्थान-स्थान पर लोगों ने वेदों की पवित्र स्मृति में उनके स्थानीय प्राकृत संस्करण बनाने आरम्भ कर दिए।

अत: यह एक संशोधन का नया, महत्त्वपूर्ण सूत्र लेकर विश्व के विद्वानों ने हर प्रदेश के वेदों के प्राकृत संस्करणों का पता लगाने का

यत्न करना चाहिए। उनमें से दो का तो हमने उल्लेख किया ही है। एक है स्कन्दनावियों का एड्डा और दूसरा ईरानियों का झेंद अवेस्था।

यूरोपीय लोगों की क्रुस्तपूर्व प्रणाली का लॉरा द्वारा लिखा ब्योरा और भी उद्बोधक है। अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ११३-१४; २७०-७२ और २८३ में लॉरा लिखती है कि "स्कन्दनावीय Norse (नॉर्स) लोगों को यूरोप के अन्य प्रदेशों के सैंकड़ों वर्ष पश्चात् ईसाई बनाया गया। अतः उनकी विश्वोत्पत्ति सम्बन्धी धारणाएँ तथा पौराणिक कथाएँ आदि मूलरूप में सुरक्षित हैं। उनका साहित्य बड़ा ही उदात्त तथा काव्यमय है। दो-एड्डा उनके पवित्र ग्रन्थ हैं। एक पद्य में है तो दूसरा गद्य में। वे उस प्राचीन Norse (नॉर्स) भाषा में लिखे हैं जो स्कन्दनावीय प्रदेश की चारों शाखाओं में बोली जाती थी। एड्डा का अर्थ है 'पड़दादी'। क्योंकि पड़दादी से दादी, दादी से मां इस प्रकार परम्परागत उसका कथन होता था। दोनों एड्डाओं में पद्य एड्डा अधिक प्राचीन है। उसके ३७ मण्डल हैं। उनमें कुछ आध्यात्मिक हैं जो विश्वोत्पत्ति का वर्णन करते हैं। अन्य अध्यायों में देव और मानवों के आपसी व्यवहार तथा प्रादेशिक ख्यात व्यक्तियों का इतिहास है। एक में सुभाषित, नीति-नियम आदि हैं। उसमें के वीर काव्य छठी शताब्दी में लिखे गए थे तथापि उनका संकलन सन् १०७६ में सोएमुन्ड (Soemund) नाम के ईसाई पादरी ने किया। कहते हैं कि वह उसका मूल नाम नहीं था। वह उसका अन्वर्थक नाम था। उस नाम का आशय है "बीज बिखराने (बोने) वाला मुख"। मुण्ड, मुण्डी, मुण्डन् यह संस्कृत शब्द ही तो हैं। आद्य शंकराचार्य के श्लोकों में वर्णन है "अंग गलितं, पलितं मुण्डम्"।

गद्य एड्डा का संकलन सन् १२०० में किया गया। उसमें पद्य एड्डा की पौराणिक कथाएँ तथा उस एड्डा के इतिहास का विवरण है। वह विवरण पद्य एड्डा के सहाय्य से ही समझ में आता है।

"सोएमुण्ड के संकलित किए गये गद्य एड्डा से मूल विचारधारा क्या है? सूत्र क्या है? आदि कुछ समझ नहीं आता। उसका विवरण टूटा-फूटा सा है। कई वाक्यों का अर्थ या सन्दर्भ ध्यान में नहीं आता। विशेषतया पौराणिक कथाओं का आपसी सम्बन्ध पता नहीं चलता। उसमें

की वीर कथा कुछ-कुछ समझ आती है। तथापि एद्दा में एक बड़ा आकर्षण-सा बना हुआ है। उसमें वैचारिक व्यापकता है। उसके कथन में सीधी-सादी रोचकता भी है।

सर्वप्रथम उसमें विश्वोत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है—

आरम्भ में न रेत थी न सागर।
न ही जल न कोई तरंग।
पृथ्वी भी नहीं थी।
न कोई आकाश था।
कहीं घास भी नहीं थी।
केवल एक असीम अंधेरा अवकाश।
ऐसी अवस्था में परमात्मा की इच्छा हुई।
और निराकार सा ब्रह्मदंड निकल पड़ा।

ऊपर उद्धृत काव्य से ऋग्वेद की उन पंक्तियों का स्मरण होता है जिनमें कहा गया है—

"केवल एक ही वह सत्‌चित्‌ है।
जो अचल होते हुए भी वायु से भी गतिमान है।
जो इन्द्रियों से जाना नहीं जाता
यद्यपि देवों की भाँति इन्द्रिय परमात्मा तक
पहुंचने की पराकाष्ठा करते हैं।
जो (परमात्मा) स्वयं अचल होते हुए
अन्य गतिमान शक्तियों से भी गतिमान है।
वायु के समान वह सब चेतना का मूल है।
वह स्थिर है, दूर है, फिर भी निकट भी है।
वह चराचर में भरा हुआ होते हुए भी
इस जड़ सृष्टि से बाहर है
जो सारे जीवात्माओं को परमात्मा के अंश मानता है।
और उसी परमात्मा का अंश सारे जीवों में देखता है।
वह किसी को हीन नहीं समझता।"

जिन दो गद्य और पद्य एद्दाओं का ऊपर उल्लेख आया है वे वस्तुतः

वेद और उपनिषदों के बचे-खुचे, फूटे-टूटे अंश ही हैं। उनकी आध्यात्मिक रोचकता, वैचारिक व्यापकता, सृष्टि निर्माता परमात्मा का तथा विश्वोत्पत्ति का वर्णन आदि सारे वेदों के ही लक्षण हैं।

उसी प्रकार के आंग्ल शकसेनीय (Anglo-Saxon) वेदों के टूटे-फूटे अंश वाले हस्तलिखित पद्य दस्तावेज इंग्लैण्ड के एक्झीटर धर्म मन्दिर (Exeter Cathedral) में सुरक्षित हैं।

ईसापूर्व लगभग ३१३८वें वर्ष में हुए महाभारतीय युद्ध के पश्चात् भारत के अतिरिक्त अन्य सभी प्रदेशों में वेद-पठन की प्रथा खण्डित हो गई। तत्पश्चात् वेदों की जो टूटी-फूटी, अर्द्ध-विस्मृत परम्परा, अन्य प्रदेशों में चलती रही उसे ईसाई और इस्लामी पन्थों के आक्रमण से और भी क्षति पहुँची। फिर भी देश-विदेश में स्थान-स्थान पर वेदों के अंशात्मक बीज किस प्रकार धरे हुए हैं वह हमने ऊपर विदित कराया है।

एड्डा का अर्थ स्कन्दनावीय प्रदेशों में आजकल पड़दादी समझा जाता है, वह गलत है। किन्तु उस कल्पना में भी वेदप्रथा का एक तथ्य गुंथा हुआ है—···की पड़दादी—दादी ऐसे क्रम से जैसे कुलपरम्परा चलाई जाती है। इसी प्रकार वेद परम्परा भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी कण्ठस्थ उतरती रहती है।

The Vikings (Pelican Book) लेखक Johannes Bronsted (Penguin Books Pvt. Ltd., 762 Whitehorse Road, Mitebam, Victoria, First published in 1960) में निम्न प्रकार की जानकारी प्राप्य है—

स्वीडन के लोग निजी देश को Sverige कहते हैं। इसका अर्थ है Svearike यानि Svees लोगों का राज्य। (पृष्ठ २७)

Norge (Norway) का अर्थ उत्तरपथ कहते हैं। हो सकता है कि पाण्डव वहां से निजी अन्तिम यात्रा पर गए हों।

इस प्रदेश के लोग Vikings (उर्फ वीरसिंह) नाम से यूरोप के इतिहास में ज्ञात हैं। इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि प्रदेशों पर इन्होंने आक्रमण किया। वहां वे (Normans) यानि 'उत्तरी लोग' कहलाए। उन्होंने फ्रांस, इग्लैण्ड आदि देशों में प्रस्थापित किए गए ईसाई धर्मस्थानों को

नेष्ट किया।

सन् ८३० के बाद स्कन्दनावीय (नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क आदि) लोग फ्रांस पर आक्रमण करने लगे।

खड्ग के साथ-साथ परशु उर्फ कुल्हाड़ा इन लोगों का शस्त्र था।

पाणिग्रहण संस्कार—नार्वे के प्राचीन लोगों में विवाह को हाथ थामने के भाव से समझा जाता था। ओस्लो नगर में एक प्राचीन श्मशान में दफनाई हुई कब्र पर लगी शिला पर खुदा हुआ है—Arner took Gorun by her hand to olvestad from Vennagar."

उपशाला मन्दिर

स्वीडन के उपशाला नगर में एक बड़ा विख्यात तथा विशाल वैदिक मन्दिर था। उसके समीप Fyres मैदान में स्वीडन के राजा Erik Sejrsal (छत्रसाल) द्वारा अपने भतीजे Styrbjorn को एक भीषण युद्ध में परास्त करने का एक शिलालेख है। (पृष्ठ १९५)

शिल्पमूर्ति

भारतीय मन्दिरों को बाहर जिन विविध मूर्तियों से सजाया होता है उनमें एक ऐसे समिश्र स्वरूप का पशु होता है जिसमें अश्व-सिंह-भेड़िया-श्वान आदि कईयों का मिश्रण दिखाई देता है। स्कन्दनावीय लोगों की शिल्पकला में ९वीं शताब्दी तक यह प्राणी दिखाई देता है। समकालीन भारतीय शिल्पकला में भी वही प्राणी दिखाई देता है। (पृष्ठ २०१)

द्वन्द्वयुद्ध तथा अग्निदिव्य

प्राचीन संस्कृत साहित्य में कई झगड़े द्वन्द्वयुद्ध से निपटाए जाने के और सत्यासत्य का निर्णय अग्निदिव्य से किए जाने के उल्लेख बार-बार आता है। स्कन्दनावीय लोगों में भी वही प्रथा थी। (पृष्ठ २२७)

शतरंज

शतरंज का खेल स्कन्दनावीय लोगों में बड़ा ही लोकप्रिय था। उनकी परम्परा वैदिक होने का यह एक विशेष प्रमाण है।

असुर

स्कन्दनावीय श्मशानों में दफन शिलाओं पर असुर (Assur) नाम कई बार लिखा मिलता है। वह इस कारण कि यूरोप में असुर, दानव उर्फ दैत्य लोगों का ही शासन था।

देवों का नाम बिगड़कर एद्दा हो गया

एद्दा पद्य में है। उसमें प्रलय का बड़ा भावुक तथा गम्भीर वर्णन है। देवासुरों के संघर्ष का भी वर्णन है। ईश्वर के दो वर्ग कहे गये हैं—Aser (ईश्वर) तथा Vaner (वानेर उर्फ वानर)। (पृष्ठ २५२)

Urd के कुएँ में देवों का निवास माना गया है। उनमें भूत, वर्तमान तथा भविष्य की देवियां रहती हैं।

विश्व के अन्त को Ragnarok यानि राज्यनर्क कहा गया है। इस सम्बन्ध में कहा है—'पृथ्वीतल की सारी बातें क्षणभंगुर होती हैं। विधि-लिखित पूरा हो जाने पर सारी सृष्टि का नाश हो जाता है।' इसका बड़ा भावपूर्ण वर्णन Volves Prophecy तथा Snorre's Tale नाम के अध्यायों में प्रस्तुत है। अन्त के चिह्न इस प्रकार होंगे—भयंकर घटनाएँ होने लगेंगी, अनिर्बन्ध तृष्णा या कामनाओं से प्रेरित होकर लोग एक दूसरे को मारने लगेंगे और कामवासना से कुलाचार भ्रष्ट हो जाएँगे। इत्यादि (पृष्ठ २५३ से २५६)

तीन Vaner (यानि त्रिमूर्ति) देवों में शिवलिंग बड़े शक्तिमान माने जाते थे। मृत्यु देवता चण्डी का उल्लेख Freya नाम से आता है।

हाथ में परशु धारण किये हुए आजानुबाहु वरुण की स्कन्दनावीय प्रदेश में पूजा होती थी।

और प्रदेशों की तरह जिस-जिस देवता का मन्दिर जहाँ-जहाँ प्रमुख था वही नाम नगर का पड़ गया। उसके साथ hob शब्द लगा हो तो उसका अर्थ है 'मन्दिर' और यदि land शब्द जुड़ा हो तो उसका अर्थ है 'उद्यान वाटिका'।

सन् १०७० ईसवी तक उपशाला का मन्दिर बड़ा विख्यात था। वह सुवर्ण मन्दिर था। उसमें त्रिमूर्ति होती थी। Thor, odin और

Frey। मन्दिर में पुरोहित होते थे जो श्रद्धालु जनों का होम-हवन करने में मार्ग-दर्शन करते थे। प्रति नौ वर्ष वहाँ एक बड़ा पर्व मनाया जाता। राजा-प्रजा सारे उपशाला मन्दिर में चढ़ावा भेजा करते थे। क्रुस्ती पादरियों इत्यादि ने निजी पन्थ का प्रसार करने हेतु उपशाला मन्दिर के बाबत कपोलकल्पित्, बीभत्स और अश्लील वर्णन लिख दिए हैं।

दाह-संस्कार

प्राचीन वैदिक मन्दिरों को ही कब्जा कर गिरजाघरों में बदल दिया गया। ईसाईयों ने मृतकों का दाह-संस्कार भी बन्द करा दिया।

इतिहासकार रामसखा

स्वीडन के एक इतिहासकार का नाम रामसखा (Ramskou) था।

सती-प्रथा

The Vikings पुस्तक के पृष्ठ २८२-२८३ पर सती प्रथा का वर्णन है, किन्तु वह ईसाईयों द्वारा लिखा होने के कारण निन्दा तथा भर्त्सना से भरा हुआ है।

Ibn Fadlan नाम के एक कट्टर अरब मुसलमान ने सन् ७२२ के आसपास के Sweden के जीवन का जो वर्णन लिखा है वह भी बड़ा निन्दा और उपहासपूर्ण है। Ibn Rustam नाम के एक अन्य अरबी लेखक ने भी वैसा ही विपर्यस्त वर्णन लिखा है। पाठकों को ऐसे धर्मान्ध व्यक्तियों के वर्णन से सावधान रहना चाहिए।

रोम से सन् ३१२ ईसवी में क्रुस्तियों का जोरदार आक्रमण आरम्भ हुआ। सारे यूरोप को ईसाई बनाने में ६००-७०० वर्ष लगे। डेनमार्क ने १५० वर्ष प्रतिकार किया, नॉर्वे तथा आइसलैण्ड ने २०० वर्ष ईसाईयों से संघर्ष किया और स्वीडन ने ३०० वर्ष प्रतिकार किया।

Olav Tryggvason (६६५ से १००० ई०) और St. Olav (१०१४ से १०३० ई०) इन दोनों ने भीषण अत्याचार और आतंक मचाकर नॉर्वे की जनता को ईसाई बनाया। ऐसे अत्याचारी पंथप्रसारकों को सन्त की उपाधि देने की क्रुस्ती तथा इस्लामी प्रथा है।

Iceland में पादरियों की करतूतें सन् ९७१ से तेजी से आरम्भ हुईं और सन् १००० ईसवी तक ईसाइयत Iceland का धर्म घोषित कर दिया गया।

सन् १०५० तक, जब डेनमार्क और नॉर्वे में ईसाई धर्म अधिकांश लोगों पर थोपा गया था, स्वीडन पूर्णतया प्राचीन टूटी-फूटी वैदिक परम्परा चल रहा था। तत्पश्चात् आस-पास के अन्य कृस्ती बने देशों ने स्वीडन की जनता पर दबाव डालना आरम्भ किया। कड़ा विरोध और संघर्ष हुआ। सन् १०६० से दो पादरी Egino of Skaane तथा Adalvard the younger of Sigtuna, ने जोरों से हमले आरम्भ कर दिए और सन् ११०० के कुछ ही वर्ष पश्चात् उपशाला का वैदिक मन्दिर नष्ट कर सारे स्वीडन पर ईसाई ध्वज फहराया गया

उपशाला का मन्दिर

स्वीडन उर्फ स्वर्ग देश के उपशाला नाम के यूरोप के प्रसिद्ध प्राचीन गुरुकुल का वर्णन हम इसके पूर्व दे ही चुके हैं। अब हम यह बताना चाहते हैं कि वहाँ एक प्रसिद्ध और विशाल मन्दिर भी था जो स्कन्दनावीय लोगों का प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र भी था। लॉरापुअर के ग्रन्थ में (पृष्ठ २८३ पर) उल्लेख है कि "नॉर्स लोगों का मन्दिर स्वीडन देश के उपशाला नगर में था। वह जिस उद्यान वाटिका में था वह बड़ी पवित्र मानी जाती थी।"

उस गुरुकुल में मन्दिर होना और वह बड़ा पवित्र माना जाना, स्वाभाविक ही था। क्योंकि ऐसे स्थान वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों द्वारा चलाये गए बड़े पवित्र स्थान थे।

ईसाई बना पहला स्कन्दनावीय नरेश

यूरोप की जनता पर जो ईसाई आक्रमण हुआ वह रोम से आरम्भ होकर बड़वानल जैसे भड़कता ही गया। पूरा यूरोप उसकी लपेट में आते आते ६०० वर्ष बीत गए और उस आग में यूरोप की वैदिक संस्कृति जलकर खाक हो गई।

स्कन्दनावीय नरेशों में ओलैफ (Olaf) पहला राजा था जो ईसाई बना। उसके ईसाई बनते ही सन् १०३० में उसकी सेना ने सारे स्कन्द-

नावियों को छल-बल से ईसाई बनाना आरम्भ कर दिया। इटली की राजधानी रोम में भी सन् ३१२ में ऐसा ही हुआ था। लोग जैसे-जैसे ईसाई बनते गए वैसे-वैसे प्राचीन वैदिक देवताओं को या तो भूत और राक्षस कहकर त्याग दिया गया या वैदिक देवी-देवताओं को ईसाई रूप और पोषाक देकर ईसाई परम्परा में सम्मिलित किया गया। किन्तु जो स्कंदनावीय लोग इंग्लैण्ड में जा बसे थे वे तो छठवीं शताब्दी से ही ईसाई धर्म की लपेट में आ गए थे।

इस्लाम तथा ईसाई पन्थ छल-बल से ही फैलाए गए

विश्व के बहुसंख्य देश ईसाई और इस्लामी बन जाने के कारण उन्होंने उन पन्थों का प्रसार छल-बल से किया, यह तथ्य सारे लोगों से छिपा रखा है। इतना ही नहीं, अपितु यह ढोंग रचा कि वे बड़े सीधे-सादे प्यार भरे पन्थ होने के कारण लोगों ने उन्हें स्वेच्छया अपनाया है।

वे दोनों पन्थ वर्तमान विश्व में बड़े बलशाली बन जाने के कारण आतंक और अत्याचार द्वारा उनके प्रसार की बात बड़ी कुटिलता से छिपाकर उन पन्थों के स्वाभाविक आकर्षण से ही भारी मात्रा में लोग उनके अनुयायी बनते गए, ऐसा उल्टा प्रचार किया जा रहा है। इतना ही नहीं अपितु उसे सत्य इतिहास के रूप में पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से सारी जनता को भी वही झूठा इतिहास रटाया जा रहा है।

जब तक कोई भी मुसलमान या कृस्ती व्यक्ति, ईसाइयत और इस्लाम का प्रसार आतंक और अत्याचार से हुआ, यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कहता, तब तक उसे इतिहासकार मानना अयोग्य है फिर चाहे उसने कितनी भी पुस्तकें रटकर कितनी ही परीक्षाएँ उत्तीर्ण क्यों न की हों।

रामायण

स्कन्दनावीय देशों में अभी भी अन्वेषण करने पर वैदिक ग्रन्थों के साहित्यिक खण्डहर प्राप्त हो सकते हैं। वेदों के अवशेष स्कंदनावीय प्रदेश में किस अवस्था में हैं वह हम देख ही चुके हैं।

उसी प्रकार रामायण के अवशेष भी उस प्रदेश में हैं। Hildebrand-Lied नाम की Norse लोगों की प्राचीनतम पौराणिक कथा है। रामायण

के उत्तरकाण्ड का कथाभाग उस में आया है। उसमें राम, सीता, लव, कुश आदि नाम तो नहीं हैं किन्तु कई वर्ष एक-दूसरे से बिछड़े पिता-पुत्र के शत्रु-भाव से लड़ पड़ने पर बालकों की माता उन्हें आपस के पिता-पुत्र रिश्ते का परिचय कराकर उनका मिलाप करा देती है।

वह Hildebrandlied किसी बड़ी लम्बी कथा का भाग है, यह उस प्रदेश की धारणा है। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस उत्तरकाण्ड के पूर्व की रामकथा भी उस प्रदेश में थी, किन्तु उसका लोप हो गया है। खोज करने पर वह भी खण्डित रूप में ही क्यों न हो, कहीं-न-कहीं प्राप्त हो जानी ही चाहिए।

महाभारत के अवशेष

नॉर्स लोगों की अन्य एक पौराणिक पद्य-कथा महाभारत का खण्डहर है। Sigfried उस कथा का नायक है। जन्म से ही उसके कवच-कुण्डल थे ऐसा उस कथा में वर्णन है। इससे वह कर्ण की कथा जान पड़ती है। तो यदि यूरोप में कर्ण की कथा के अवशेष मिलते हैं तो महाभारत के और टुकड़े-टाकड़े भी ढूँढने पर हाथ आ जाने चाहिएँ।

स्लाव्ह लोगों की वैदिक परंपरा

मध्य यूरोप के चेकोस्लाविया, यूगोस्लाविया आदि प्रदेश में स्लाव्ह जमात बसी हुई है। उनकी भाषा भी संस्कृत की ही प्राकृत है। वे अग्नि को अग्नि ही कहते हैं। माता को मलका कहते हैं जो मल्लिका का अपभ्रंश है। स्वसा यानि बहन को सेस्त्रा कहते हैं। भ्राता के स्थान पर भ्रात कहा जाता है। सिन् यानि पुत्र, जो संस्कृत का सूनु: शब्द है। नोस यानि नासिका। डोम या दोम यानि धाम अर्थात् घर। द्वार को द्वार ही कहते हैं। समय-समय पर भारत से गए गड़रिया लोहार, स्लाव्ह प्रदेश मे जा बसे हैं। वे अभी भी एक तरह से हिन्दू हैं और मिश्रित हिन्दी बोलते हैं। राम, कृष्ण, काली आदि कई देवी-वैदिक देवताओं को वे पूजते हैं। यूगोस्लाविया के Scopte नगर में पचास सहस्र से भी अधिक रामा लोग यानि भारत से दीर्घकाल से बिछड़े हिन्दू रहते हैं। उन्हें 'रामा' इस कारण कहा जाता है कि वे एक स्थान पर रहने की बजाय रमते-

गमते स्थानान्तरण ही करते रहते हैं। उनके नाम भी सुधाकान्त, आशा, रामकली, मीनाक्षी आदि भारतीय ही होते हैं। 'बडो स्थान' यानि बड़ा स्थान नाम से भारत की स्मृति उनके मन में सदैव जागृत रहती है।

पूर्वजों का श्राद्ध

स्लाव्ह लोगों में प्राचीनकाल में (यानि कृस्तपूर्व समय में) पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता था तथा वायु, अग्नि आदि पंचमहाभूतों को देवता माना जाता था।

'ओक' नाम के वटवृक्ष जैसे विशाल वृक्ष के तले स्लाव्ह लोक यज्ञ (होम-हवन) भी किया करते थे। उनके परमेश्वर का नाम है Bog जो भगवान शब्द का पूर्व-अर्द्ध 'भग' शब्द है। उसी परमात्मा को वे Swarog (यानि स्वर्ग) भी कहते हैं।

आंग्लभाषा में bogy यानि भूत शब्द भी 'भगवान' शब्द का ही टूटा हिस्सा है। ईसाई पन्थ का प्रसार करते समय पादरियों ने वैदिक देवी-देवताओं को 'भूत' कहकर जनता के मन में उनकी मूर्तियों के प्रति अनादर निर्माण करना आरम्भ किया। अत: 'बोगी' शब्द आंग्लभाषा में 'भूत' अर्थ से कृस्ती पन्थ प्रसार के पश्चात् सम्मिलित हुआ दीखता है।

पक् (Puck) नाम का दूसरा शब्द भी 'भग' का दूसरा उच्चारण बनकर आंग्लभाषा में रूढ़ है।

स्लाव्ह लोग सूर्य को Dauzh-Bog कहते हैं, जो 'दिवस-भगवान' यनि दिन या उजाला करने वाले भगवान का अर्थ देता है।

वायु देवता को वे Stri-Bog यानि सर-भगवान यानि 'गतिमान भगवान' के अर्थ से जानते हैं।

अग्नि का उच्चारण स्लाव्ह लोग 'अगोन' करते हैं।

धान्य का उल्लेख करते समय उसे स्लाव्ह लोग सर्वदा 'पवित्र धान्य' कहते हैं। अन्न-धान्य को ईश्वर का प्रसाद समझकर ग्रहण करना, उसका अनादर नहीं करना, यह वैदिक प्रथा है।

वरुण को स्लाव्ह लोग 'परुण' कहते हैं। लगभग उसी नाम से वरुण देवता का स्लाव्ह परिपाटी में अस्तित्व बना रहना उनके वैदिक अतीत

का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

वृक्ष पूजन

वैदिक परम्परा में तुलसी, बड़, पीपल, नीम आदि वृक्षों की पूजा होती है। उसी प्रथा में स्लाव्ह लोग ओक के वृक्ष को पवित्र मानते हैं। उसे काटना वे पाप समझते हैं। उसकी छाँव में जो वैदिक मूर्तियां, मन्दिर आदि होते थे वे ईसाई दबाव से नष्ट होने पर भी स्लाव्ह लोगों के मन में ओक वृक्ष के प्रति दैवी आदरभाव कायम है।

सती प्रथा

लगभग सन् १००० तक स्लाव्ह पति के मरने पर पत्नी सती हो जाती थी। इसमें स्लाव्ह लोगों में दाह-संस्कार ही प्रचलित होने का प्रमाण भी मिलता है।

इन्द्रधनुष और आकाशगंगा यह सूर्यभगवान के स्वर्गीय निवासस्थान के प्रति जाने के दो पथ हैं, ऐसी स्लाव्ह लोगों की आध्यात्मिक भावना है।

वेद स्लोव्हेना

सॅलोनिका नगर के पास Serras ग्राम के एक स्लाव्ह निवासी Yerkoviez ने सन् १८७४ में स्लाव्ह पद्यों के संकलन का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया, जिसका नाम उन्होंने "वेद स्लोव्हेना' (Veda Slovena) यानि 'स्लाव्ह लोगों का वेद' रखा। इससे स्लाव्ह लोगों के मन में वेदों के प्रति कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा अभी भी बनी हुई है, इसका प्रमाण मिलता है। मुसलमान बनाए बल्गेरियन (Bulgarian) जन भी वे गीत गाते हैं जो वरकोव्हिरा के ग्रन्थ में सम्मिलित हैं। उस ग्रंथ की प्रस्तावना में ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि उन्हें वे गीत Thrace नगर के होडोप पहाड़ी (Mount Rhodope) पर स्थित एक मठ से प्राप्त हुए। कुछ स्लाव्ह लोग इस संकलन को बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते हैं। किन्तु अन्य कुछ विद्वान कहते हैं कि वह नकली पद्य है।

चाहे कुछ भी हो, उस ग्रन्थ से एक बात स्पष्ट है कि स्लाव्ह लोगों में एक तीव्र भावना जागृत है कि वेद नामक कोई पवित्र पद्य ग्रन्थ उनके पूर्वज रखा करते थे। यद्यपि मूल संस्कृत वेद अब उनके पास नहीं रहे।

शायद उनका स्थान टूटे-फूटे प्राकृत काव्य अनुवाद ने ले लिया है। इसी कारण जैसा भी हो वेदों के बदले में प्राप्त वे प्राकृत पद्य भी पवित्र एवं आदरणीय देन की भांति सुरक्षित रखे जाने चाहिएँ।

स्लाव्ह लोग नौवी शताब्दी में ईसाई बनाए गए

स्लाव्ह और नॉर्स लोगों को नौवीं शताब्दी में ईसाई बनाना आरम्भ हुआ। कुछ वर्ष तक ईसाई बने लोग अल्पसंख्यक थे, किन्तु सन् १९८० में गद्दीनशीन हुए रशिय के सम्राट Vladimir ने ईसाई धर्म को ही राष्ट्रीय धर्म घोषित करते हुए वरुण उर्फ परूण वैदिक देवता की चौराहे में प्रस्थापित मूर्ति को उखाड़ फेंका। तत्पश्चात् उसके राज्य में जितने भी वैदिक मन्दिर और गुरुकुल थे, सब ईसाई गिरजाघर और ईसाई विद्याश्रम बना दिये गए। कृस्ती बनने पर राजा का मूल नाम Vladimir से बदलकर Wassily रखा गया। रशियन तथा ग्रीक ईसाई परम्परा में उस राजा को St. Basil बना दिया गया है। इस प्रकार आतंक और अत्याचार से पन्थ प्रसार करने वाले प्रत्येक हमलावर को इस्लामी और ईसाई परम्परा ने सन्त महात्मा घोषित करने की निंद्य और घातकी प्रथा चलाई तथापि Wassilly और शार्लमेन (Charlamagne) जैसे ईसाई पन्थ प्रसारकों की प्रशंसा में जो काव्य लिखे गए हैं उनकी शैली और शब्द-प्रणाली कृस्तपूर्व ढंग की है।

वैदिक पर्व

ईसाई बनाए स्लाव्हजन अभी भी प्राचीन वैदिक त्योहार उर्फ पर्व ज्यों-के-त्यों मनाते हैं। जैसे शरद ऋतु के अन्त में वे होली जलाते हैं। वासंतिक देवी को वे लोडा कहते हैं। भारत के पंजाब प्रान्त में उसे लोढ़ी (यानि संक्रान्त) कहा जाता है। किसान लोग नाचते-गाते होली की परिक्रमा करते हैं और बच्चे धनुष-बाण की निशानेबाजी खेलते रहते हैं।

ईसाई पादरियों ने उस पर्व का नया नाम Butter Week यानि 'नवनीत सप्ताह' रखा है। इस्लाम और ईसाई पन्थों ने किस प्रकार वैदिक पर्वों की तोड़-मरोड़ की, उसका यह एक उदाहरण है। वैदिक पर्वों

के पारम्परिक गानों पर भी क्रोध प्रकट करते हुए ईसाई पादरियों ने उन गीतों के स्थान पर कुछ ईसाई गीत चालू करा दिए ताकि वैदिक पर्वों को इस्लामी या ईसाई मोड़ दिया जाए।

भारत में शरद् ऋतु के आसपास दो त्योहार आते हैं जिनमें होली जलाई जाती है—एक मकरसंक्रान्ति और दूसरा 'होली'। मकर-संक्रान्ति की होली केवल उत्तरी भारत के पंजाब में ही होती है। मकर संक्रांति जनवरी की १३-१४ तारीख को पड़ती है। उसके लगभग दो मास बाद होली मनाई जाती है।

भारत में मनाया जाने वाला वैदिक पर्व 'लोहड़ी' और सलाव्ह लोगों का पर्व लाडा उर्फ लोडा दोनों समान वैदिक परम्परा के ही हैं।

ग्रीस देश की वैदिक परम्परा

यूरोपीय लोग ग्रीस देश को निजी परम्परा का उद्गम स्थान मानते हैं तथापि सन् ३१२ से यूरोप के लोगों पर ईसाईयत थोपी जाने के पश्चात् वे यह भूल गए कि ग्रीस स्वयं एक वैदिक देश था। अतः यूरोपीय विद्वानों के मस्तिष्क में एक भ्रमपूर्ण खिचड़ी धारणा ऐसी बन गई है कि अनादिकाल से उनकी कला और सभ्यता ग्रीकी-ईसाई ढंग की है। उस खिचड़ी धारणा का भी एक यथार्थ स्वरूप या पहलू है जो यूरोपीय जन नहीं जानते, वे केवल उसका विकृत स्वरूप ही जानते हैं।

सही स्वरूप यह है कि जिसे वे ईसा कहते हैं वह स्वयं संस्कृत 'ईशस्' यानि ईश्वर या परमात्मा-यह संस्कृत शब्द है। भारत में जिस प्रकार रमा-ईश (रमेश), उमा-ईश (उमेश), ईश्वर, जगत्-ईश (जगदीश) आदि नाम रखे जाते हैं वैसे प्राचीन ग्रीस में Iesus Chrisn (ईशस् कृष्ण) नाम रखा जाता था। काल गति में उसी नाम का उच्चारण अथवा अपभ्रंश Jesus Christ हो गया। क्योंकि प्राचीन लैटिन भाषा में 'ई' का उच्चार 'जी' भी हुआ करता था जैसे हिन्दी में वचन को बचन भी लिखा जाता है और योगी को जोगी। अतः जीझस् क्रुस्त नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं। सारी ग्रीक परम्परा ईशस् कृष्ण की ही है। यूरोपीय लोग या यूरोपीय विद्वान यदि यह तथ्य जानते तो वे निजी धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को अच्छी तरह समझ पाते। वास्तव में उनको उनकी उस निजी विरासत की बाबत पूरा अज्ञान ही नहीं अपितु विकृत, धुँधली, असत्य, संभ्रमित खिचड़ी धारणा ही है।

ग्रीस के समान ही रोमन् सभ्यता भी यूरोपीय जीवन-प्रणाली का

स्रोत मानी जाती है। फिर भी रोमन् यह रामन् शब्द है, यह कोई यूरोपीय नहीं जानता। अत: भारत जैसे ही राम और कृष्ण यह दोनों अवतारी व्यक्ति यूरोपीय जीवन के मूलाधार होते हुए भी यूरोपीय विद्वानों को उसकी जरा-सी भी कल्पना नहीं। इतनी उनके सांस्कृतिक ज्ञान (या अज्ञान ?) की दयनीय अवस्था है।

कर्नल Elwood की पत्नी ने दो खण्डों का एक प्रवास वर्णन लिखा है। उस ग्रन्थ का नाम है Narratives of a Journey Overland from England to India (प्रकाशक Henry Colburn, London, 1830 A. D., लेखिका Mrs. Col. Elwood)। उन्होंने भू-मार्ग से अनेक देश पार करते हुए इंग्लैण्ड से भारत में आगमन किया। इस प्रवासवर्णन में निजी ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ६१-६२ पर वे लिखती हैं कि "ग्रीक तथा भारतीय पौराणिक कथाओं की गहरी समानता देखकर ऐसा लगता है कि ग्रीक लोग और हिन्दुओं में किसी समय अतीत में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा और शायद पायथागोरस ने आत्मा के विविध जन्मों का जो उल्लेख किया है वह भारतीय देवी-देवताओं की कथाओं से सीखकर ग्रीक देव-कथाओं में जोड़ दिया है।

"इन्द्र के वज्रप्रहार की बात ग्रीक कथाओं में ज्युपिटर (देवपिटर) से जोड़ दी गई है। कृष्ण और गोपियों के समान ग्रीक कथाओं में अपोलो देव की गोपियाँ हैं। ग्रीक कथाओं के Cupid (क्यूपिड) से सुन्दर कामदेव की कथा कितनी अधिक मिलती है ? सौन्दर्य देवी माया जिस प्रकार सागर से प्रकट हुई वैसी ही बात ग्रीककथाओं में ह्वीनस (Henus) देवी की कही गई है। सूर्य तथा अर्जुन के जैसे ही ग्रीक कथाओं में Phoebus और Aurora सम्बन्धी उल्लेख हैं। जुड़वे अश्विनीकुमारों जैसे ग्रीक Castor और Pollux हैं। लक्ष्मी के मुकुट में धान्य के अंकुर जिस प्रकार दिखाये जाते हैं वैसे ग्रीक Cares के भी लगे होते हैं। काली के समान ग्रीक कथाओं में Hecate उर्फ Prosperine है। देवों के सन्देश पहुँचाने वाले नारद की तरह ग्रीक पुराणों में Mercury की भूमिका बतायी है। Sir William Gones का निष्कर्ष है कि वैदिक गणेश ही ग्रीक कथाओं का Gonus है। हनुमान और उसकी वानर सेना के समान ग्रीक कथाओं

में Pon और उसके वन देवों की बात आती है।"

ऊपर जो समानता बताई गई है, वह तो है ही। किन्तु इसका कारण क्या है? कारण यह नहीं है कि ग्रीस और भारत आज जैसे ही भिन्न देश थे और ग्रीस ने अपने कोई छात्र या प्रतिनिधि भारत में भेजकर उनके द्वारा भारत के पुराणों की ग्रीक नकल तैयार की।

आज तक के विद्वान इसी तरह के कुछ उल्टे-सीधे तर्क लड़ाकर काम चलाते रहे हैं या बाजी मारते रहे हैं। फिर भी वे अपने आपको या दूसरों को इस बात का कोई तर्कसंगत कारण नहीं दे पाए हैं कि विश्व में इतने भिन्न-भिन्न देश भारत से सुदूर, विश्व के कोनों-कोनों में स्थित होने पर भी सभी की भाषा, विचारधारा, रहन-सहन, विद्या, कला आदि पर भारतीय वैदिक परम्परा और संस्कृत भाषा की ही छाप क्यों दिखाई देती है? यदि उस अतीत में सब अन्य प्रदेशों पर भारत का सर्वांगीण प्रभाव पड़ा तो आज क्यों नहीं पड़ता? उल्टा आजकल तो भारत पर पाश्चात्य विचारधारा और रहन-सहन का प्रभाव जीवन के अनेक अंगों पर दिखाई देता है। इस प्रश्न को विद्वानों ने आज तक उठाया नहीं तो वे उसका उत्तर क्या दे पायेंगे?

इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जिसे हम भारतीय या वैदिक संस्कृति कहते हैं वही संस्कृति सारे विश्व में आरम्भ से महाभारतीय युद्ध तक थी। उस युद्ध के पश्चात् वह संस्कृति अन्य प्रदेशों से धीरे-धीरे लुप्त होती रही किन्तु भारत में चलती रही। अत: भारत में जो संस्कृति अभी है वह प्राचीनकाल में सर्वत्र थी। उससे आभास यह होता है कि भारत से वैदिक संस्कृति विश्व में फैली।

सारे विश्व में जब एक ही तरह की वैदिक संस्कृति थी तब बहिष्कृत अपराधी व्यक्तियों को ग्रीस में भेजा जाता था। जैसे अपराधी अंग्रेजों को ऑस्ट्रेलिया में और भारतीयों को अण्डमान-निकोबार द्वीपों में आधुनिक काल में भेजा जाता था।

अत: संस्कृत में उसे 'या-वन' यानि 'वन में जाने का' या 'भेजा जाने का' प्रदेश कहा गया। उसी का अपभ्रंश अरब, ईरानी आदि लोगों ने 'यूनान' ऐसा किया है। यूरोपीय लोग उसी संस्कृत 'यावनीय' शब्द को

Ionia लिखने लगे। यूरोपीय साहित्य में इस नाम का बार-बार उल्लेख आता है।

बहिष्कृत अपराधियों के अतिरिक्त चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम् जीवन-पद्धति के अनुसार वाणप्रस्थी लोग भी ग्रीस प्रदेश में स्वेच्छा से जाकर रहा करते थे। उस देश की ऑलिम्पस् पहाड़ी पर वैदिक देवताओं का संस्थान् भी बनाया गया। उसी 'गिरी-ईश' यानि ग्रीस शब्द का Greece अपभ्रंश हुआ है।

जब अपराधियों को वहाँ भेजा जाता था, कुछ वाणप्रस्थी भी वहाँ चले जाते थे तो उनके खान-पान का प्रबन्ध करने वाले लोग वहाँ जाते रहे। उसी प्रकार सरकारी अधिकारियों को वहाँ बन्दोबस्त के लिए जाना पड़ता था। कोई सैर करने, अध्ययन या निरीक्षण करने तथा समाज सेवा करने ही जाते रहे। ऐसा करते-करते वहां स्थायी बस्ती हुई। वह बस्ती वैदिक प्रणाली के लोगों की ही होने से श्रीमती एल्वुड को ग्रीक और भारतीय लोगों की परम्परा एक समान दिखाई दी।

बहिष्कृतों की बस्ती

वैदिक जीवन के सामाजिक आचार-व्यवहारों में कड़ी शिस्त बरती जाती थी। प्रातः ४ बजे से रात ९ या १० बजे तक प्रत्येक व्यक्ति की दिनचर्या नियमबद्ध की गई थी। सबको वैचारिक स्वतन्त्रता थी किन्तु मनमाने आचार की स्वतन्त्रता नहीं थी। आस्तिक से नास्तिक तक सब प्रकार के जन वैदिक समाज में थे, किन्तु सामाजिक जीवन नीति-नियमों से बद्ध किया गया था। व्यक्तिगत स्वार्थ या धनार्जन हेतु समाज की परिपाटी तोड़ने की किसी को भी स्वतन्त्रता नहीं थी।

ऐसे कड़े शिस्त के कारण समय-समय पर जो लोग किसी कारण-वश पिछड़ जाते या वैदिक प्रणाली का उल्लंघन करते या उस प्रणाली के विरुद्ध बलवा करते, उन्हें आर्य सभ्यता की सीमाओं के बाहर जिस प्रदेश में बहिष्कृत किया जाता था वह यावन प्रदेश कहलाया।

आगे जब महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक समाज टूट गया तो ग्रीस उसी टूटे समाज का एक टूटा भाग बनकर रह गया।

इसी प्रकार का एक आधुनिक उदाहरण देखें। सन् १९४७ को अगस्त १५ तारीख से पूर्व पाकिस्तान भारत का ही अंग था। वह अब टूटकर इस्लाम स्थान बन गया है। पर उन लोगों के पूर्वज सारे हिन्दू थे। अतः उनकी बोली पंजाबी है। उनमें कंवर, राजा, राव, रामा आदि पुराने हिन्दू नाम या उपाधियाँ भी शेष हैं। फिर भी वे लोग मुसलमान बनकर अपने आपको सामाजिक परिपाटी में भिन्न समझने लगे और देश का बंटवारा होने के पश्चात् राजनीतिक दृष्टि से भी भारत से अलग पड़ गए।

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् विश्व वैदिक साम्राज्य के विभिन्न हिस्से भी उसी प्रकार टूट-टूटकर अलग होते गए। ऐसे टूटे हिस्सों का रहन-सहन, कालगति से तथा अन्य पंथ अपनाने से दिन-प्रतिदिन भिन्न-भिन्न होता जाता है। वैसी ही परिस्थिति वैदिक विश्व के टूटे खण्डों की हुई। आरम्भ में केवल राजनयिक विभाजन के कारण उनके सीरिया, असीरिया आदि खण्ड-राज्य निर्माण हुए। तत्पश्चात् उनमें ईसाई, इस्लाम आदि नये वंश पनपने के कारण वे लोक-वैदिक संस्कृति से अपने आपको पूरी तरह से भिन्न मानने लगे।

इतिहासकार तथा पुरातत्वविदों को यदि ऊपर कही परिस्थिति की स्पष्ट कल्पना आई तो उन्हें विश्व के इतिहास के अलग-अलग मोड़ समझने में सुविधा होगी और इतिहास की कोई भी समस्या सुलझाने में देर नहीं लगेगी।

ग्रीस की कृष्णभक्ति

कौरव-पाण्डवों के समय ग्रीस वैदिक सभ्यता का प्रदेश होने के कारण महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वहाँ कृष्णभक्ति का बड़ा प्रभाव रहा।

Barbara Wingfield Stratford नाम की आंग्ल महिला ने India and the English नाम की पुस्तक लिखी है। (प्रकाशक Jonathan Cape, London, सन् १९२२)। उस ग्रन्थ के पृष्ठ १११-११२ पर उस महिला ने लिखा है कि "कई बातों में कृष्णभक्ति और क्रुस्त परम्परा एक जैसी हैं। उसी प्रकार क्रुस्त की जन्मकथा तथा बालजीवन और कृष्ण की

जन्मकथा भी समान है। बाल क्रुस्त को जैसे उसके जन्मस्थान से अत्याचारी अधिकारियों के भय से नझरेथ में आश्रय लेना पड़ा वैसे ही कृष्ण को निजी जन्मस्थान से निकलकर गोकुल में बचपन बिताना पड़ा।"

केवल क्रुस्त की ही जन्मकथा नहीं यहूदियों के नेता Moses (मोशेस्) की जन्मकथा भी कृष्ण जन्मकथा की नकल ही है। अतः हमारा यह स्पष्ट मत है कि जो भी जन अपने आपको यहूदी या क्रुस्ती समझ रहे हैं, वे वैदिक समाज के ही अंग थे। वे जब वैदिक समाज से बिछुड़ गए तब उन्होंने अनजाने कृष्ण की जन्मकथा की नकल मारकर अपने-अपने अलग पन्थ नेता दर्शाने आरम्भ कर दिए। किन्तु ऐसा करते समय उन्हें निजी काल्पनिक पंथ नेता की जीवनी भी कृष्णकथा के नमूने पर ही ढालनी पड़ी।

ग्रीक भाषा भी संस्कृत का एक प्राकृत रूप है

प्राचीन ग्रीस प्रदेश की भाषा भी विश्व के अन्य देशों जैसी संस्कृत ही थी। किन्तु महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक विश्व शासन टूटने से संस्कृत शिक्षा बन्द हो गई। इस कारण से विविध प्रदेशों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानिक उच्चारण भेदों के अनुसार टूटी-फूटी, टेढ़ी-मेढ़ी संस्कृत बोली जाने लगी। ग्रीक वैसी ही एक संस्कृत की प्राकृत शाखा है। अन्य भाषाएँ भी इसी प्रकार बनीं। केवल ग्रीक भाषा ही नहीं अपितु उसकी देव कथाएँ आदि सारी वैदिक परम्परा की ही हैं। इसके कुछ उदाहरण हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

व्यक्तिगत नाम तथा देवता

Demetrius यह देवमित्रस् नाम है, Socrates यह सुकृतस् शब्द है, अलेक्जेण्डर अलक्ष्येन्द्र है। Menander यानि मीनेन्द्र, Aristotle अरिष्टटाल है, पार्थिया प्रदेश पार्थीय यानि अर्जुन भूमि है, Theodorus देवद्वारस् है, Herodotus हरिदूतस् है। Jesus Christ यह (ईशस्) iesus कृष्ण नाम है। Tacitus दैत्यस् या दैत्येश नाम है।

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् भगवान कृष्ण ग्रीस प्रदेश में प्रमुख देव

माने जाने के कारण वहाँ कृष्णभक्ति प्रबल थी। अतः ग्रीक जन एक दूसरे को 'हरितुते' कहकर अभिवादन करते हैं। वह मूलतः 'हरि रक्षतुते' यानि 'हरि आपका रक्षण करे' इस अर्थ का शब्द है, जैसे भारत में 'राम-राम' या 'जय श्रीकृष्ण' या 'राम आपका भला करे' ऐसा कहते हैं।

ग्रीक लोगों का मर्यादापुरुषोत्तम Hercules (हरक्यूलिस) या Heracles (हेराक्लिस) कहा जाता है, जो वास्तव में 'हरि-कुल-ईश' ऐसा श्रीकृष्ण का ही नाम है।

ग्रीक कथाओं में हरि-कुल-ईश के १२ चमत्कार अर्थात् महान्, दैवी कर्तृत्व विख्यात हैं। वह कृष्ण की अनेक लीलाओं की नकल ही हैं। जैसे बचपन में जब यशोदा ने कृष्ण को ऊखली से बाँध रखा था तब कृष्ण ने ऊखली समेत रेंगते-रेंगते दो वृक्षों के सुकड़े मार्ग में से ऊखली को खींचते हुए वे दो वृक्ष उखाड़ दिए, कंस का महायुद्ध में अन्त किया, कालिया नाग का दमन किया, गोवर्धन पहाड़ उठाया, इत्यादि इत्यादि। अतः सारे शब्द, बोलचाल, रीतिरिवाज, रहन-सहन, लोक-कथाएँ, देवी-देवता आदि सबमें ग्रीक लोग वैदिक परम्परा के ही सिद्ध होते हैं।

स्ट्रबो (Strabo)

ग्रीक लागों में स्ट्रबो एक भूगोलज्ञाता विख्यात है। उसके लिखे हुए तीन खण्डों के भूगोल ग्रन्थ में प्राचीन विश्व की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त है। उसका जन्म ईसापूर्व ६६वें वर्ष में माना जाता है। उसकी मृत्यु सन् २४ में हुई।

वह Stoic वंशीय था। Stoic याने स्तविक। भारत में जैसे देव-भक्त, भागवत, महाजन आदि नाम होते हैं इसी प्रकार ग्रीक Stoic जमात 'स्तविक' यानि 'स्तवन करने वाले' इस अर्थ से पड़ा। मूल में यह एक आध्यात्मिक पंथ था जो आगे चलकर एक जमात कहलाई।

स्ट्रॅबो से पूर्व भूगोल सम्बन्धी ग्रन्थ लिखने वाला अन्य ग्रीक लेखक था Eratosthenis (इरटोस्थेनिस)। Sthenis यह ग्रीक नामों का अन्त्यपद (जैसे Megasthnis मेगस्थेनिस या मॅगस्थनीज) 'स्थानेश' शब्द संस्कृत

का है। इरॅटोस्थेनिस लगभग ८० वर्ष का होकर ईसापूर्व १९६ में दिवंगत हुआ। रतिस्थानेश या अरतिस्थानईश ऐसा उसका नाम था। आग्ल-भाषा में रतिक को Erotic ('अरतिक' उर्फ इरॉटिक) लिखा जाता है।

नौकायन में प्राचीन भारतीयों की निपुणता

वैदिक विश्व साम्राज्य के समय भारतीय नौकाएं सातों सागर पार किया करती थीं। अतः विश्व नौकायन में भारतीय लोग अग्रसर होते थे। नौकायन शास्त्र से निगड़ित खगोल ज्योतिष में तो भारतीय निपुण थे ही। यह उनके अनादि परम्परा के वार्षिक पंचांग गणित से सिद्ध होता है। स्ट्रॅबो लिखित भूगोल ग्रन्थ के तीसरे खण्ड के पृष्ठ १४९ पर उल्लेख है कि कोई नौका डूबने से ईजिप्त देश के किनारे लगा एक भारतीय खलासी स्थानीय राजा के दरबार में ले जाया गया। तब उसने राजा से कहा कि यदि उसे भारत पहुँचने के लिए नौका उपलब्ध कराई जाए तो वह इजिप्त के खलासियों को भारत पहुँचने के सागरीय मार्ग का ज्ञान कराएगा।

उसी पुस्तक के तीसरे खण्ड के पृष्ठ २५७ पर स्ट्रॅबो ने लिखा है कि हरक्युलिस (हरिकुलईश) तथा बॅकस (Bacchus) यानि त्र्यम्बकेश का अनुसरण करते हुए अलेक्जेंण्डर ने भी भारत में (जीते प्रदेश के) निजी सीमाओं पर देवमन्दिर उर्फ वेदियाँ स्थापित कीं।"

उसी पृष्ठ पर की टिप्पणी में उल्लेख है कि "१२ देवों के बारह मन्दिर थे। प्रत्येक मन्दिर ५० हाथ लम्बा-चौड़ा था।"

वर्तमान शासक वैदिक परम्परा से कई बातें सीख सकते हैं कि प्रत्येक देश की सीमा पर थोड़े-थोड़े अन्तर पर देव-मन्दिर बनाकर वहाँ विशिष्ट पर्वों पर यात्रा के दिन निश्चित करना, प्रतिदिन आस-पास के लोग वहाँ विवाह, त्योहार, व्रत आदि के निमित्त प्रत्येक मन्दिर में दर्शन के लिए जाएँ, मन्दिर में भजन-पूजन, आरती, अन्नदान आदि करते रहें। इससे अपने आप सीमा के दुर्गम एवं निर्जन भागों पर भी प्रतिदिन गश्त लगती रहती है।

सामान्यतया देश की सीमा पर पहाड़ियाँ, ऊबड़-खाबड़ भूमि,

घना जंगल, वीरान प्रदेश या रण होता है। ऐसी सारी सीमा पर सतत सेना रखना शक्य नहीं होता। अतः सीमा पर थोड़े-थोड़े अन्तर पर देवमन्दिर स्थापित कर आस-पास के लोगों के श्रद्धास्थान निर्माण करने से भावुक श्रद्धालु लोगों का सैकड़ों की संख्या में ऐसे स्थानों पर तांता लगा रहेगा। ऐसी चहल-पहल रहने से शत्रु कभी चुपके से उस भूमि पर कब्जा नहीं कर सकेगा। मन्दिर में धन और धान्य का चढ़ावा चढ़ता रहेगा। उससे वहाँ पुजारी, चौकीदार आदि रखे जा सकेंगे और सीमा की निःशुल्क रक्षा व्यवस्था हो जाएगी।

सन् १९४७ के अगस्त १५ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री बने। समाजवाद, इस्लाम और यूरोपीय ईसाईयत, इनका सम्मिश्र भूत सवार होने के कारण वे वैदिक इतिहास की ऐसी खूबियों से अनभिज्ञ थे। यदि वे इस ग्रन्थ में जिस प्रकार वैदिक इतिहास का विश्लेषण किया गया है वैसा करना जानते तो वे कश्मीर में हिन्दू निर्वासित लोगों को बड़ी संख्या में बसाकर वहाँ मुसलमानों को बहुसंख्य नहीं रहने देते। भारत के ईशान्य भागों में से सारे ईसाई पादरियों को निकाल देते और निर्जन सीमा प्रदेशों में केवल सीमा स्तम्भों के बजाय समीप की जनता को मन्दिर बनाने देते तो जिस प्रकार पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला कर लगभग आधा कश्मीर छीन लिया और चीन ने अक्साई चीन का प्रदेश कब और कैसे हथिया लिया इसका कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को पता ही नहीं चला, ऐसी परिस्थिति नहीं आती। इन सब बातों का विचार करके निष्पक्ष भाव से कहना पड़ेगा कि गत चालीस वर्षों का कांग्रेसी शासन महामूर्ख सिद्ध हुआ है। उसने देश को खोखला, दुर्बल, दरिद्र और विभिन्न विरोधी, देशद्रोही गुटों का अखाड़ा बना दिया है।

देश की परिसीमा को स्थान-स्थान पर मन्दिरों से मण्डित करने की प्रथा का अनुसरण देशान्तर्गत जिला, तहसील और गाँवों की सीमा पर किया जाता था। उनकी सीमाओं पर भी मन्दिर बनाए जाते थे। इस प्रकार विश्व में सर्वत्र यदि फिर से वैदिक देवी-देवताओं के मन्दिर बनाए जाएं तो प्राचीन एकता के पुनरुद्धार का वह एक उपाय होगा।

अलक्जेण्डर उर्फ सिकन्दर हिन्दू था

गत लगभग सहस्र वर्षों से लोगों की यह धारणा बन गई है कि यूरोप के गोरे लोग सर्वकाल ईसाई ही रहे हैं। अतः प्राचीन ग्रीक कथाओं में विविध देवी-देवताओं के उल्लेख मिलने पर भी उस समय लोग और अन्य यूरोपीय लोग हिन्दू थे यानि वैदिक धर्मी थे, यह विचार किसी के मन में आता ही नहीं। उस समय ग्रीक लोग टूटे-फूटे हिन्दू वैदिक, आर्य, सनातन धर्म के ही अनुयायी थे। यह उनके अरिस्टॉटल आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों के नामों का विश्लेषण करके हमने ऊपर बता दिया है। उसी प्रकार स्ट्रॅबो यह प्रसिद्ध प्राचीन ग्रीक भूगोल लेखक भी हिन्दू था। उस हमय हिन्दू धर्म उर्फ वैदिक संस्कृति के अतिरिक्त अन्य कोई समाजनियन्त्रक धर्म था ही नहीं। अतः सिकन्दर भी हिन्दू था। उसका संस्कृत नाम 'अलक्ष्येन्द्र' था जिसका अर्थ है "न दिख पाने वाला ईश्वर"। निजी राज्य की सीमाओं पर उसने शिव, विष्णु, गणेश, भवानी, अन्नपूर्णा आदि विविध १२ देवी-देवताओं के मन्दिर बनवाए थे, यह स्ट्रॅबो ने लिखा ही है।

विष्णु और शिव में कोई विरोध नहीं

विशेषतया दक्षिण भारत में कहीं-कहीं कभी-कभी शैव और वैष्णवों में कुछ अनबन, खटपट या वैमनस्य-सा सुनने में आता है। किन्तु वह व्यक्तिगत संकुचित भावना के कारण है। वैदिक परम्परा में परमात्मा एक है। उसी के उत्पत्तिकर्ता और पालनकर्ता और संहारकर्ता ऐसे कार्यानुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऐसे तीन रूप माने गए हैं। अतः वैदिक सभ्यता के अन्तर्गत राजा लोग विष्णु के प्रतिनिधि माने जाते थे। तथापि रणदेवता शंकर भगवान माने जाते और शंकर के नाम से ही शत्रु पर धावा बोला जाता था। घमासान युद्ध में शंकर भगवान का, उनके रौद्र रूप का, तथा उनकी पत्नी दुर्गा, पार्वती, चण्डी, भवानी का स्मरण किया जाता था।

शिवजी के नाम नशाबाजी

विरोध, संघर्ष या युद्ध किया जाता है उसमें शत्रु पर हमला करने वाले योद्धा को भाँग, गाँजा, मद्य आदि का नशा नहीं करना पड़ता। कर्त्तव्य-पूर्ति की एकाग्र, तल्लीन अवस्था ही उसके लिए पर्याप्त होती है। किन्तु उस योद्धा की नकल करने वाले चोर, डाकू, लुटेरों आदि के मन में कर्त्तव्यपूर्ति की शुद्ध तल्लीनता न होने के कारण उन्हें उनके पापी और क्रूर कर्म करने के लिए भाँग, गाँजा, चरस, मद्य आदि की कृत्रिम धुन्ध से अपनी दैवी आत्मा और कर्त्तव्यबुद्धि को सुलाकर राक्षसी वृत्ति को उत्तेजना देनी पड़ती है। अतएव शिवजी के नाम हुक्का-चिलम, भंग, गांजा आदि के नशा-पानी का प्रचार करने वालों को समाजकंटक और समाजशत्रु माना जाना चाहिए। निजी कुरीतियों से वे शिवजी की पवित्रता दूषित कर समाज को गलत मार्ग पर ले जाते हैं।

ग्रीक लोगों में भी 'बॅकस्' (Bacchus) के नाम पर मद्य आदि पीकर नशा करने वाले वाममार्गी लोगों का एक वर्ग था। बॅकस् यह 'त्र्यम्बकेश' शब्द का टूटा खण्ड ग्रीक साहित्य में बार-बार उल्लिखित होता रहता है। त्र्यम्बकेश यानि तीन आँखों वाले परमात्मा शिवजी। ग्रीक लोग हिन्दू होने के कारण Trinity यानि 'त्रीणि-इति' ब्रह्मा-विष्णु-महेश को पूजते थे। उनके गिरि पर इन सारे वैदिक देवी-देवताओं का प्रमुख आलयम्-'ईश' था। भारत के कैलाश पर्वत के प्रतीक के रूप में ग्रीक प्रदेश के प्राचीन हिन्दू लोगों ने जो 'आलयम-ईश' बनाया था, उसी को ग्रीक साहित्य में Olympus कहा जाता है।

निजी शिष्यों ने पहले पांच वर्षों में चुपचाप (कोई प्रश्न पूछे बिना) केवल दी हुई शिक्षा का ही अध्ययन करना चाहिए, यह Pythogoras यानि पीठगुरु का नियम भारत से ही लिया गया था ऐसा Pococke (पोकॉक) ने निजी ग्रन्थ में लिखा हुआ है। उस कथन से यह ध्वनित होता है कि भारत में और ग्रीस में राजनयिक और सामाजिक भिन्नता होते हुए भी ग्रीस में भारतीय विद्याप्रणाली का वह नियम पायथागोरस ने लागू किया था।

हमारे नए शोध-सिद्धान्त के अनुसार उस पारम्परिक कल्पना में हम थोड़ा सुधार सुझाना चाहते हैं। वह यह है कि ग्रीस में और भारत में

एक ही प्रकार का वैदिक समाज होने के कारण दोनों में समान शिक्षा पद्धति थी। अतः उनके नियम भी समान थे। विश्व के अन्य प्रदेशों में भी वैसी ही टूटी-फूटी वैदिक संस्कृति ही थी।

ग्रीक सिक्कों पर भगवान कृष्ण की छवि

ग्रीस और रोम साम्राज्यों में भगवान कृष्ण और राम की ही भक्ति हुआ करती थी। इसी कारण Agathaclose नाम के ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के ग्रीक राजा के सिक्कों पर भगवान कृष्ण तथा भाई बलराम की छवि छपी पायी जाती है। Agathaclose यह नाम 'अगतक्लेशः' यानि 'जिसको कोई क्लेश न हुआ हो, जो सर्वदा सुखी रहा हो' इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

कॉरिंथ नगर में कृष्ण मूर्ति

ग्रीस प्रदेश का 'कॉरिंथ' (Corinth) नगर एक प्राचीन कृष्ण तीर्थ रहा है। वहाँ के किसी देवालय में पाया धेनु चराते हुए मुरली वाले गोपाल कृष्ण का एक लम्बा चौड़ा भित्तिचित्र स्थानीय सरकारी वास्तु संग्रहालय (Museum) में प्रदर्शित है। ग्रीस की राजधानी अथेन्स् से कॉरिंथ साठ किलोमीटर दूरी पर है। किन्तु उस चित्र के नीचे केवल 'एक देहाती दृश्य' इतना ही लिखा हुआ है। वह भगवान गोपाल कृष्ण हैं, इस की तनिक भी जानकारी यूरोपीय इतिहासकारों को तथा पुरातत्वविदों को दिखाई नहीं देती। वह चित्र योगायोग से हमें प्राप्त हुआ। इस प्रकार भगवान राम, भगवान कृष्ण आदि के कितने ही वैदिक देवी-देवताओं के चित्र तथा मूर्तियाँ उनके प्रदेशों में यूरोपीय ईसाई विद्वानों के हाथ आई होंगी, जो उन्होंने दुष्टता से या अज्ञानवश छिपा रखी होंगी, फेक दी होंगी या उपेक्षित, अनुल्लिखित अवस्था में रखी होंगी। उनका पता लगाना होगा। यूरोप में आज तक जो भी पुरातत्वीय अवशेष प्राप्त हुए हैं उनका पुनरावलोकन करना होगा। क्योंकि यूरोपीय लोग बड़े विद्वान, सूक्ष्म निरीक्षक तथा गहरे संशोधक होते हैं, ऐसा ढोल विश्व में पीटा गया है। मेरा निष्कर्ष तो एकदम इसके विरुद्ध है। कट्टर क्रुस्ती होने के कारण यूरोपीय विद्वानों ने यूरोप की ईसापूर्व वैदिक संस्कृति के ढेरों

प्रमाण पाए जाने पर भी जानबूझकर छिपा दिये हैं या नष्ट कर दिये हैं। ऐसा ही कॉरिंथ नगर में पाया भगवान कृष्ण का एक चित्र इस ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

पोकॉक के ग्रन्थ में दर्शाई समानता

एडवर्ड पोकॉक अन्य यूरोपीय विद्वानों से भिन्न ऐसा एक समझदार और ईमानदार विद्वान था कि उसने India in greece or Truth in Mythology ग्रन्थ में ग्रीक और भारतीय वैदिक सभ्यता की एकरूपता स्वयं समझी और दूसरों के लिए लिखी।

पोकॉक के ग्रन्थ के पृष्ठ ६ से १२ में लिखा है कि "ग्रीक इतिहास में जो वीरकाल माना गया है उसमें कला निपुणता, सुवर्ण की विपुलता, सोने के बरतनों की भरमार, कारीगरी, कसीदे से भरी शालें, बख्शीस दी जाने वाली मालाएँ जो कभी देवताओं से भी प्राप्त की जाती थीं, विभिन्न प्रकार के विपुल आकर्षक वस्त्र, गहने, हस्तिदन्त, धातु के पात्र, पीतल की तिपाइयाँ, डेकची और कढ़ाइयाँ, सामाजिक सुविधाएँ, Alcinous और Menelaus के वैभवशाही महल, ट्रॉय नगर की महान् स्पर्द्धाएँ, युद्ध में लगने वाले रथ—आदि सारी नागरिकी और सैनिकी रहन-सहन की प्राच्य पद्धति की, यानि-भारतीय सी ही जान पड़ती है। इन प्रमाणों से लगता है कि वहाँ भारतीयों की बस्ती ही रही होगी और उन्हीं का धर्म और भाषा भी। Poseidon or Zeus नाम के देवताओं के थानों के अवतरणों के समय से ट्रोजन युद्ध के अन्त तक ग्रीक लोगों की सारी कथाएँ, समाज, भाषा, रहन-सहन, विचारधारा, धर्म, युद्ध नीति और जीवन-प्रणाली पूरी भारतीय ढाँचे की ही थी।"

ग्रीक लोगों की भाषा संस्कृत ही थी

Pococke के ग्रंथ में पृष्ठ १६ पर उल्लेख है कि "Pelsagie Hellenic (समय) के ग्रीस की भाषा संस्कृत ही थी। ग्रीस के Homer तथा Hesiod आदि जो कवि और अन्य लेखक हुए हैं, वे या तो अनभिज्ञ थे या उन्होंने जो लिखा है वह यदि सही हो तो तत्कालीन ग्रीस की पिछड़ी हालत पर उन्हें बड़ी ग्लानि थी। अतः उन्होंने प्राचीन Pelsagic,

पौराणिक या वीर युग के ग्रीस की जो जो बातें लिखी हैं वे तब तक सही नहीं समझी जानी चाहिए जब तक संस्कृत ग्रन्थों से उनकी पुष्टि नहीं होती। पोकॉक का यह निष्कर्ष कितना अर्थपूर्ण है।

ग्रीक लेखकों की अविश्वसनीयता

स्वयं ग्रीक स्ट्रैबो से लेकर पोकॉक तक के कई विद्वान् लेखकों ने ग्रीक ग्रन्थकारों के दिए ब्यौरे को अविश्वसनीय माना है। इसी कारण ठग को प्रतिठग इस अर्थ से Greek meets a Greek यानि 'ग्रीक को प्रति ग्रीक मिला' यह कहावत यूरोपीय बोलचाल में रूढ़ है। इस्लामी लेखक भी इसी प्रकार क्वचित् ही विश्वसनीय होते हैं। फिर भी विश्व के अधिकतर लोगों ने उस अविश्वसनीयता का ध्यान नहीं रखा है।

पोकॉक ने आरोप किया है कि ग्रीक ग्रन्थकारों ने पाठकों को धोखा देने हेतु व्यक्ति, नगर तथा धर्मविधि आदि के नाम और अन्य ब्यौरा पूरी तरह विकृत कर दिया है। उस ठगीबाजी से सही बात का पता लगाने का एक स्वतन्त्र अध्ययनक्रम तैयार करना होगा। अरब और ईरानी लोगों ने वैसा ही धोखा किया है। उन्होंने इस्लामपूर्व के इतिहास को या तो नष्ट किया है या उसे घृणापूर्ण और तिरस्करणीय दर्शाया है।

विश्व का आरम्भ वैदिक सभ्यता से

फ्रेंच प्राध्यापक Boumouf ने College of Franca में 'संस्कृत भाषा तथा तदन्तर्गत साहित्य' इस विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि "हम जब भारत तथा उसका दर्शनशास्त्र, पुराण साहित्य और धर्मशास्त्र का अध्ययन करते हैं तो वह केवल भारत का ही नहीं अपितु एक प्रकार से मानवीय सभ्यता के श्रीगणेश का ही परिचय प्राप्त कर लेते हैं।" फ्रेंच प्राध्यायक के उस उद्‌गार का उल्लेख पोकॉक के ग्रन्थ में उद्धृत है। इस प्रकार Boumouf से लेकर पोकॉक तक के चन्द पाश्चात्य प्रतिभाशाली तथा विचारवान् विद्वानों को इस तथ्य का अनुमान हुआ था कि आरम्भ से सारे विश्व की सभ्यता वैदिक और भाषा संस्कृत थी।

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ १८ पर पोकॉक लिखते हैं कि ग्रीक भाषा संस्कृत से ही व्युत्पन्न है, अतः संस्कृत भाषी भारतीय लोग कभी ग्रीस देश में रहे होंगे।

Macedonia नाम का ग्रीस का जो प्रदेश है वह महासदनीय ऐसा संस्कृत शब्द है। संस्कृत का 'ह' अक्षर उच्चारण में कुछ कठिन होने से यूरोपीय भाषाओं में कई बार 'ह' का लोप होता है। इसी कारण महासदनीय शब्द का यूरोपीय अपभ्रंश मॅसेडोनिया हुआ। पाप-ह (पापहर्ता-पापहंता) का 'पापा' उच्चार रूढ़ हुआ; 'सहमर्ष' का 'स-मर्ष' उर्फ कॉमर्स (Commerce) ऐसा उच्चार होने लगा; महर्षिपाठ का उच्चार Marco Polo (मार्कोपोलो) होता रहा।

ग्रीस की सूर्य पूजा

वैदिक परम्परा के अधिकतर क्षत्रिय कुलों को सूर्यवंशी होने का बड़ा गर्व था। अतः ग्रीस में भी सूर्य के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उस श्रद्धा के कारण ही रविवार को साप्ताहिक छुट्टी हुआ करती। ग्रीस में कई स्थानों पर सूर्य मन्दिर और सूर्यपुर होते थे। सूर्य के लिए संस्कृत में 'हेली, तेजोनिधि, भास्कर, दिवाकर' आदि सैकड़ों नाम हैं। उसी हेली नाम से हेलीपुर उर्फ Heliopolis नाम के नगर ग्रीस में होते थे।

अतः पोलीस (Police) यह शब्द भी 'पुरस्' ऐसा संस्कृत शब्द ही है। 'पुरः' उर्फ 'पुरस्' की रक्षा करने वाला दल—इस अर्थ से पुरस् उर्फ पुलिस (Police) यह उच्चार रूढ़ हुआ।

आंग्लभाषा में बड़े शहर को मेट्रोपोलीस (Metropolis) कहते हैं, जो 'महत्तर पुरस्' ऐसा संस्कृत शब्द है। महत्तरपुरस् का अपभ्रंश मेट्रोपोलीस है।

इटली की वैदिक परम्परा

ग्रीस के साथ रोमन परम्परा भी यूरोप खण्ड की सभ्यता का स्रोत मानी जाती है। यह ठीक भी है। इस धारणा का सही स्वरूप तो जनता जानती नहीं अपितु विकृत स्वरूप अवश्य जानती है।

लोग यह समझते आ रहे हैं कि यूरोप की मूल सभ्यता ईसाई है और उसका उद्भव ग्रीस और रोम में हुआ। वह धारणा सही नहीं है।

यूरोप की मूल अनादि परम्परा वैदिक है और ग्रीस तथा रोम उस परम्परा के गढ़ थे। इस सम्बन्ध में ग्रीस का विवरण तो हम दे ही चुके हैं, अब रोम का विवरण देखें।

वस्तुत: रोम केवल एक राजधानी का नाम है। वहाँ से जो साम्राज्य चलाया जाता था वह रोमन साम्राज्य कहलाता है। उसके शासन-कर्ताओं की जीवन-प्रणाली रोमन कही जाती है। वह मूलत: पूरी तरह वैदिक थी किन्तु कालान्तर से बिछुड़ते-बिछुड़ते भारत की वैदिक संस्कृति से भिन्न प्रतीत होने लगी।

लगभग ५१२५ वर्ष पूर्व महाभारतीय युद्ध के काल तक सारे यूरोप में वैदिक समाज व्यवस्था और संस्कृत भाषा थी। इटली देश (जिसकी रोम राजधानी है) भी यूरोप का एक भाग होने से इटली में भी वही चातुर्वर्ण्यधर्माश्रमी समाज-व्यवस्था थी।

और तो और उस देश की राजधानी का नाम रोम होना अपने आपमें उस देश की मूल वैदिक सभ्यता का एक बड़ा प्रमाण है, क्योंकि विष्णु-अवतार प्रभु रामचन्द्र के नाम से ही रोम नगर बसा हुआ है। वास्तव में उसका नाम केवल राम या रामचन्द्र होना चाहिए था। वैसे वह नाम 'राम' है भी। केवल उसका उच्चारण थोड़ा अपभ्रंश हो गया है।

वैसे संस्कृत में भी तो मूल नाम रामः ऐसा है। उसे मराठी, हिन्दी आदि भाषाओं में विसर्ग बिना केवल 'राम' कहा जाता है। कोई 'रामा' भी कहता है। इटली में उसे थोड़ा और मोड़ के 'रोमा' कहते हैं। यह केवल उसी शब्द को नहीं अपितु और भी अकारान्त संस्कृत शब्द यूरोप में 'ओकारान्त' हो जाते हैं। जैसे संस्कृत 'नासः' शब्द उच्चारण में nose (नोज) कहलाता है। गम (गच्छ, गति) का 'go' (गो) उच्चारण होता है। 'रायल' शब्द का उच्चारण 'रॉयल' होता है। यह बंगाली जैसी ही उच्चारण पद्धति है। जैसे बंग्ला भाषा में मनमोहन के बजाय मोनोमोहन कहा जाता है। इससे पाठक देख सकते हैं कि जिस नगर को भारतीय लोग राम कहेंगे उसे इटली के लोग 'रोमा' कहते हैं और अन्य देशों के लोग 'रोम' कहते हैं।

'राम' उर्फ 'रोमा' जिस इटली देश की राजधानी है उस इटली देश का नाम भी संस्कृत ही है। 'धरातली', 'रसातली' जैसे ही 'इटली' यानि 'ई' रूप (यूरोप) खण्ड के तल का देश 'इटली' कहलाता है। यूरोपीय वर्णमाला में 'ट' या 'त' उच्चार के लिए एक ही 'T' अक्षर होने से उस देश का नाम इतली या इटली भी कहा जा सकता है।

'रोम' या 'राम' का संस्कृत में जो अर्थ है ठेठ वही उन शब्दों का अर्थ अभी तक यूरोपीय भाषाओं में भी है। जैसे हम 'भटक जाना या वृथा समय गँवाने' को 'रमना—रामना' कहते हैं, उसी प्रकार आंग्ल भाषा में roam (भटकना), romeo (विलास में रममाण होने वाला व्यक्ति) शब्द हैं।

हिन्दी में 'मनोरमा' का जो अर्थ है वैसा ही अर्थ यूरोपीय भाषाओं में 'सिनेरामा' (Cinerame), 'पैनोरामा' (Panorama) आदि शब्दों का है।

अतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से किसी को कोई शंका नहीं रहनी चाहिए कि 'राम' नाम से ही रोम नगर बसा हुआ है। अतः इतिहास में जो साम्राज्य 'रोमन्' कहलाता था वह वास्तव में 'रामन्' साम्राज्य था। तो क्या रामचन्द्रजी यूरोप के इटली देश में रहते थे? नहीं, ऐसी बात नहीं। रोम उर्फ राम नगर की स्थापना तो बहुत कालान्तर की बात है।

रोम उर्फ रामनगर की स्थापना

इटली देश के सरकारी सूचना-पत्रों के अनुसार रोमा नगर की स्थापना ईसापूर्व वर्ष ७५३ में अप्रैल २१ के दिन की गई और कृतयुग के रामावतार को हुए, वदिक हिसाब से लगभग १० लाख वर्ष हुए। अत: रोम नगर में भगवान राम का जन्म हुआ ऐसी बात नहीं है। जब कोई व्यक्ति विख्यात हो जाता है तो श्रद्धाभाव के कारण उसी का नाम अन्य व्यक्तियों को या विविध स्थलों को दिया जाता है। जैसे स्वयं भारत में रामनगर नाम की कितनी ही बस्तियां होंगी, किन्तु उन सब स्थलों पर भगवान राम कभी चले होंगे यह सम्भव नहीं हैं। अत: इटली के रोम नगर से प्रभु राम का कोई सम्बन्ध था या भगवान राम कभी स्वयं वहां गए होंगे, ऐसी बात नहीं।

वैसे तो भगवान राम उनके समय के विश्वसम्राट्, रावण विजेता, त्रैलोक्यापति होने के नाते तत्कालीन इटली प्रदेश में गए होंगे, रहे भी होंगे। किन्तु वे वहाँ न भी गए हों तो भी विश्वविख्यात विभूति होने से इटली की राजधानी को प्रभु रामचन्द्र का नाम दिया गया है।

यह तो हुई तार्किक बात। अब अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण भी हैं। इटली देश में ईसापूर्व समय में जो मकान पुरातत्वीय उत्खनन में पाये गए हैं उनमें रामायण प्रसंगों के चित्र पाए गए हैं। उनमें से सात हमने इस ग्रन्थ में नमूने के तौर पर उद्धृत किए हैं जो पाठक देख सकते हैं।

वे चित्र इटली की एट्रुस्कन् सभ्यता के कहे जाते हैं। वैसे तो यूरोपीय विद्वानों ने आज तक जो पुरातत्वीय या ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले हैं वे कतई विश्वसनीय नहीं हैं। क्योंकि यूरोप में ईसाई सभ्यता से पूर्व विशेष अध्ययन के योग्य कुछ हो ही नहीं सकता यह उनका एक दृष्टि-कोण रहा है। अन्य एक मान्यता यह रही है कि ईसा पूर्व समय के लोग विशेष उन्नत नहीं हो सकते। तीसरी एक धारणा यह है कि यूरोप में कभी वैदिक संस्कृति का कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता।

यूरोप का आज तक का सारा संशोधन ऐसे कुछ ऊटपटांग पूर्व कल्पनाओं पर आधारित होने से, बहुमूल्य प्रमाण मिलने पर भी, निकम्मा

और दुर्लक्षित होकर रह गया है जबकि उनके आधार पर सारे विश्व का इतिहास नए प्रकार से दुबारा लिखा जा सकता है या लिखा जाना चाहिए। उन प्रमाणों का इतना अधिक महत्त्व है।

फिर भी ऐसे अनभिज्ञ यूरोपीय विद्वानों ने आज तक जो कुछ पुरातत्वीय सामग्री ढूंढ निकाली है उसी से हम कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

प्राचीन इटली की एट्रुस्कन् सभ्यता

इतालवी विद्वानों की मान्यता है कि ईसापूर्व सातवीं शताब्दी से लगभग ईसापूर्व पहली शताब्दी तक उस देश में एट्रुस्कन् सभ्यता थी।

एट्रुस्कन् शब्द का अर्थ वे नहीं जानते। अतः हम सुझाते हैं कि वह अत्रि ऋषि के गुरुकुल का प्रदेश होने से अत्रि स्थान कहलाया। उसी से अत्रिस्कन् उर्फ एट्रुस्कन् बना। इस धारणा का आधार यह है कि यह पुलस्तिन् Palestine ऋषि के गुरुकुल का प्रदेश था।

वैदिक संस्कृति में सप्तर्षि जो प्रसिद्ध हैं वे इसी कारण कि उन्होंने प्राचीनतमकाल से सप्तखण्ड पृथ्वी पर वैदिक संस्कृति की निगरानी की। उसी एट्रुस्कन् संस्कृति के कालखण्ड में ईसापूर्व वर्ष ७५३ में रोमा उर्फ रामनगर की स्थापना हुई। अतः उस नगर को भगवान राम का नाम दिया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यदि राम के नाम से वह नगरी बसाई गई तो उस नगर में प्राचीनतम मन्दिर भगवान विष्णु, राम और कृष्ण आदि के होने ही चहिएं। किन्तु क्रुस्ति-पंथ प्रसार के पश्चात् वे सारे मन्दिर गिरिजाघर घोषित कर दिए गए।

रावण नगर

'रोमा' यह रामनगर होने का अन्य एक प्रमाण यह है कि रोमा के पूर्णतया विरोधी दिशा में रावण के नाम का Ravenna नगर भी इटली के पूर्ववर्ती अद्रिअॅटिक सागर तट पर विद्यमान है। रोम तो इटली के पश्चिमी तट के निकट टायबर नदी के किनारे स्थित है।

इस सम्बन्ध में पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ १७२ पर लिखा है—'Behold the memory of...Ravan still preserved in the city

of Ravenna, and see on the western coast, its great rival Rama or Roma' यानि "रावण की स्मृति कराने वाला (Ravenna) रावण नगर देखें और (उसके विरुद्ध दिशा में) पश्चिम के सागर तट पर रावण के महान् विरोधक राम के नाम से बसा नगर रोम उर्फ रोमा देखें।"

वह टायबर नाम त्रिपुरा का अपभ्रंश है, क्योंकि रोमन् सम्राटों में एक का नाम Tiberius था जो त्रिपुरेश शब्द से बना है।

इटली का अन्य एक शहर Verona (व्हेरोना) है जो वरुण शब्द का अपभ्रंश है।

दूसरा एक नगर Milano (मिलैनो) कहलाता है जो राम भरत मिलन वाले रामलीला के प्रसंग के कारण उस नाम से प्रसिद्ध है। इससे अनुमान यह निकलता है कि उस स्थान की रामलीला में राम भरत मिलन का कोई पर्व मनाया जाता था।

इस प्रकार इटली देश के सारे नगरों की सांस्कृतिक व्युत्पत्ति लगाई जा सकती है।

'यूरोप' की व्युत्पत्ति

एक समय ऐसा था कि लगभग सारे यूरोप को 'ईबरीय' (Iberia) कहा जाता था। हो सकता है कि Siberia यानि 'शिबिरीय' से 'श' निकलकर 'ईबरीय' ही अपभ्रंश रहा हो। उसी प्रकार 'सुरूपखण्ड' शब्द से 'स' निकल जाने से 'ईरूपखण्ड' नाम रूढ़ हो गया है। यूरोप के लोग सुरूप होने से सुरूप और उससे 'युरूप' या 'यूरोप' शब्द बना हो ऐसी शक्यता है। वर्तमान काल में यूरोप खण्ड का नैऋत्य का फ्रांस, स्पेन तथा पोर्चुगाल वाला भू-खण्ड ही Iberian Peninsula यानि ईबरीय द्वीप कहलाता है।

अनन्त नगर

राम उर्फ रोमा नगर को The Eternal City यानि 'अनन्त-अच्युत अक्षर' नगर कहा जाता है, यह भी बड़ी लक्षणीय बात है। क्योंकि वह नगर प्रभु राम के नाम से बसा है और प्रभु राम 'अनन्त-अच्युत-अक्षर'

कहलाते हैं। अतः उस नगर को अक्षय नगर यानि The Eternal City कहा जाता है।

'रोमस्—रोम्युलस्' की धौंस

इटली और रोम की वैदिक सभ्यता का ज्ञान या ध्यान जनता को न रहे इस हेतु ईसाई पादरियों ने या उनसे पूर्व अन्य विघ्नसन्तोषी लोगों ने अनेक अफवाहें उड़ाईं। उनमें से एक में यह कहा जाता है कि रोमस् और रोम्युलस नाम के दो बच्चे थे जो जंगल में एक भेड़िये के दूध से पाले-पोसे गए। उन्होंने रोम नगर बसाया। इस ऊटपटांग बात का कोई आधार नहीं। जिन बच्चों के माँ-बाप नहीं थे, वे एक क्रूर पशु के दूध पर पले, यही बात विश्वसनीय नहीं है। ऐसे बालक का समझदार बनना और उनके द्वारा एक बड़े नगर का निर्माण होना सारी असम्भव-सी बातें हैं। ऐसे बालकों को रामस् और रामुलु ऐसे दोनों नाम राम-मूलक ही दिए जाना भी बड़ी विचित्र-सी बात है। भारत के आन्ध्र प्रदेश में राम को रामुलु ही कहा जाता है। इटली में ठेठ उसी तेलुगु पद्धति का मोड़ राम नाम को कैसे दिया गया? ऐसी विविध अफवाहों को छोड़ ऊपर कहे विविध प्रमाणों के आधार पर यह मानना ही तर्कसंगत होगा कि विश्व में सर्वत्र वैदिक संस्कृति होने के कारण इटली में भी रोमा आदि विविध नगरों के नाम उसी स्रोत के हैं।

रोमन लोगों की वैदिक क्षात्र परम्परा

वैदिक क्षत्रियों के धर्मयुद्ध के नियम तथा उनकी क्षत्रीय वीरता के आदर्श रोमन परम्परा में बराबर देखे जाते हैं। जैसे केशरी वस्त्र पहन कर रण में उतरना। रोमन परम्परा में उन वस्त्रों को 'जामुनी' रंग के (purple) कहा गया है। किन्तु वह मूलतः केशरी थे। युद्ध करने निकले व्यक्ति ने जीवन के सारे प्रलोभन त्याग कर, आवश्यकता पड़ने पर शत्रु का प्रतिकार करते हुए प्राण भी देना होगा—ऐसी भावना से युद्ध हेतु निकले सैनिक वैदिक परम्परा में केशरी वस्त्र पहना करते थे। रोमन सैनिक भी वही किया करते थे।

सेना द्वारा शासन

वैदिक नियमों के अनुसार शासन चलाना क्षत्रियों का काम था। वे क्षत्रिय राजा तथा उसके दरबारी सेनानायक तथा सामान्य सैनिक होते थे। राजा और सेनानायकों की सभा ही शासन चलाती थी। अत: उन सेनानायकों की सभा को ही Senate यानि 'सेनानायकों का जमघट' इस अर्थ का नाम पड़ा। अमेरिका जैसे देश में भी 'सेना' का द्योतक वह सीनेट शब्द अभी भी प्रयोग में है।

वैदिक दाह-संस्कार

आधुनिक ईसाई यूरोप में मृतकों को दफनाया जाता है। किन्तु ईसापूर्व समय में मृत व्यक्ति का शव चिता पर जलाया जाता था। इतना ही नहीं अपितु मृतक का श्राद्ध भी किया जाता था।

Fanny Parks नाम की आंग्ल महिला ने 'Wanderings of a Pilgrim in Search of the Picturesque' नाम की पुस्तक लिखी है। वह सन् १९७५ में Oxford University Press, London द्वारा प्रकाशित हुई। उस पुस्तक के पृष्ठ ४२७ से ४३२ पर एक रोमन मृतक के दाह-संस्कार का वर्णन है। "मृतक के एक आप्त ने मृतक की (खुली) आँखें और (खुला) मुंह बन्द किया। फिर शव भूमि पर लिटाकर नहलाया गया। तत्पश्चात् उस पर सुगन्धित द्रव्य लगाए गए। उस व्यक्ति के जीवनकाल के उत्तमोत्तम वस्त्र उसे पहनाये गए। तत्पश्चात् घर के बाहर के भाग में फूलों से सजाए मंच पर शव लिटाया गया।" ग्रीक लोगों से ही रोमन जनता ने शवदहन की पद्धति (Cremandi vel Comburendi) अपनाई। ईसाई पंथ प्रसार के पश्चात् ही दाह-संस्कार रोमन लोगों ने धीरे-धीरे त्याग दिया। इस प्रकार लगभग चौथी शताब्दी के अन्त तक दाह-संस्कार पद्धति रोमन लोगों में बन्द हो गई।

श्मशान की दिशा में पैर किया हुआ ताटी पर बंधा शव आप्तेष्टों के कन्धों पर दहन के लिए (अन्धेरे में) ले जाया जाता था। प्रेत यात्रा या बारात के साथ बत्तियाँ होती थीं। आगे बाजे बजाने वाले बाजा बजाते हुए चलते थे। शव के पीछे स्त्रियां भजन आदि गाते हुए चलतीं थीं।

धनवान मृतकों की शवयात्रा में पैसे देकर (आश्रित या निर्धन लोगों की) स्त्रियां मृतक के नाम से शोक करने के लिए बुलाई जाती थीं। आप्तेष्ट भी शव के पीछे-पीछे श्मशान यात्रा में चलते जाते थे। मृतक के पुत्रों के सिर वस्त्र से ढके होते थे, किन्तु कन्याओं के सिर पर कोई पल्लू नहीं होता था। उनके बाल (शोकाकुल अवस्था में) बिखरे होते थे। निकट आप्तेष्ट कई बार व्यथित हृदय से निजी वस्त्र फाड़ देते और सर के बाल उखाड़ते या उन पर धूल डालते। विशेषकर स्त्रियां छाती पीट कर विलाप करतीं या निजी गाल पकड़-पकड़ कर खींचतीं। यदि विख्यात व्यक्ति का शव हो तो वह नगर के प्रमुख चौराहे पर से होकर श्मशान के प्रति ले जाया जाता। चौराहे पर शव धर कर मृतक के सम्बन्धी विविध व्यक्ति मृतक का पुत्र या निकट का आप्त मृतक से सम्बन्धित कुछ भाषण देता। तत्पश्चात् धर्मशास्त्रों के १२ नियमानुसार शव नगरसीमा पर स्थित श्मशान की ओर ले जाया जाता। जब सारा ईंधन जल जाया करता तो निकट के आप्त अस्थि जमा करते। उस समय उनके पैरों में जूते नहीं होते थे। शरीर पर ढीले वस्त्र (धोती, कफनी आदि) पहने होते थे। श्मशान यात्रा से वापस आने वाले आप्तेष्ट स्नान किया करते और अग्नि पर से चलने की शुद्धि विधि भी करते। विशिष्ट प्रकार की झाड़ू से गृहशुद्धि भी की जाती। सारे कुटुम्बीजनों की भी शुद्धि की विधि हुआ करती। तत्पश्चात् मृतक की स्मृति में समय-समय पर होम-हवन द्वारा श्राद्धविधि भी अपनाई जाती थी। इस प्रकार ऊपर कही रोमन अंत्यविधि पूर्णतया वैदिक पद्धति की थी।

रोमन्स भगवान राम और कृष्ण के भक्त थे

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ ४३२ पर Fanny Parks ने लिखा है कि "रोमन्स लोग निजी राज्य के संस्थापक रोम्युलस् को परमात्मा मानकर उसकी पूजा किया करते थे। उसे वे Quirinus भी कहते—उन दोनों की वे प्रार्थना किया करते।"

इसका सही अर्थ यही है कि रोम साम्राज्य में Romulus यानि रामुलु उर्फ राम और Quirinus यानि कृष्ण यह दोनों जनता के मुख्य देवता थे।

उन नामों की जो थोड़ी-बहुत तोड़-मरोड़ हुई है वह तो स्वाभाविक ही है, क्योंकि भारत में भी तो कृष्ण को कई लोग कान्हा, कन्हैया, बन्सीलाल, मुरलीवाला, किशन आदि कहते ही हैं। अतः रोम साम्राज्य में कृष्ण को किरिनस कहा जाना असम्भव नहीं है।

किरिनस कृष्ण का ही नाम था, इस सम्बन्ध में दूसरा भी एक अप्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रोमन लोगों में या सारे कृस्तियों में भी अभी तक Constantine नाम रखा जाता है। उस नाम का विग्रह करके देखें। उसके दो भाग Cons और Tantine ऐसे पड़ते हैं। वह कंस-दैत्यन ऐसा नाम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत, प्राचीन इटालियन लोगों में भी उतना ही आदरणीय, ललामभूत और लोकप्रिय ग्रन्थ था जितना भारतीय ग्रन्थ है। इसीलिए तो वे महाभारत में उल्लिखित प्रसिद्ध राजाधिराज कंस दैत्य का नाम बड़े गर्व से रखते थे। भगवान कृष्ण का जन्म होते ही मार डालने का दैत्यराज कंस का निश्चय था।

इस प्रकार जब हम यूरोप में ईशस कृष्ण, कंस दैत्य, राम, रावण आदि सारे नाम आज भी पाते हैं तो यह कितना ठोस प्रमाण है कि भारत में जैसे महाभारत, रामायण और पुराणों में आने वाले श्रेष्ठ व्यक्तियों के नाम जनता में रखे जाते हैं, वैसे ही नाम यूरोप में भी रखे जाते थे। यह तभी हो सकता है जब वे पूरी तरह से वैदिक धर्मी हिन्दू हों।

इतिहास संशोधन का एक नया सबक

कई विद्वान आत्मविश्वास इतना खो बैठे हैं कि वे ऐसे प्रमाणों को केवल योगायोगी नामसादृश्य कहकर नगण्य ही नहीं अपितु हास्यास्पद और तिरस्करणीय मानते हैं। वे यह नहीं समझते कि जब हम इस प्रकार आरम्भ से अन्त तक नामों की एक लड़ी प्रस्तुत करते हैं और वह वैसी यूरोप में क्यों पायी जाती है, इसका ऐतिहासिक विवरण भी देते हैं तो क्या अब उनका यह कर्त्तव्य नहीं बनता कि वे कम-से-कम उन नामों के आधार का विवरण ईसाई लोगों से भी तो माँगें। ऐसा विद्वान इतिहास संशोधन का हमारा प्रस्तुत किया एक नया सबक सीखें तो अच्छा

होगा। वह सबक यह है कि ऐसे नाम सादृश्य तथा वाक्प्रचारों की एकरूपकता को वे सामान्य या तिरस्करणीय प्रमाण समझने के बजाय, ऐसे प्रमाणों को बड़े वजनदार और मौलिक समझने की आदत डाल लें।

कामदेव का दहन

भगवान शंकर द्वारा कामदेव के दहन की कथा भारतीय लोग जानते हैं। होली के उत्सव से जो पौराणिक कथाएँ जुड़ी हैं उनमें कामदहन का भी अन्तर्भाव है। उस कथा की स्मृति केवल भारत में ही नहीं अपितु सारे विश्व में इसी प्रकार दोहरायी जाती है।

दुनिया भर के देशों में होली जलाई जाती है। उसे Ballentine उर्फ Ballentyne Fires कहते हैं, जो बलिदान शब्द का अपभ्रंश है।

प्राचीन रोम में मनाए जाने वाले ऐसे त्योहार के बारे में Franz Cumont ने The Oriental Religions in Roman Paganism नाम के निजी ग्रन्थ में पृष्ठ २७-२८ पर लिखा है कि "Isis से सम्बन्धित जितने भी पर्व हैं इनमें osiris की पुनर्प्राप्ति का वार्षिकोत्सव बड़ा प्रेरणादायी था। वह अनादिकाल से चला आया पर्व है। Abydos में और अन्य स्थानों पर अपने मध्ययुगीन चमत्कारदर्शी नाटकों की भाँति एक पवित्र उत्सव मनाया जाता था जिसमें ऑसिरिस की जिद्द और उसका पुनर्जीवित होना बताया जाता था? मन्दिर से बाहर आते हुए उस देव के ऊपर Set का अचानक प्रहार पड़ने से उस देव की मृत्यु हो जाती है। तब सारे लोग शोकमग्न होकर विधिवत् उस देवता का अन्त्यसंस्कार करते हैं।

"लगभग इसी प्रकार वह पर्व नवम्बर मास के आरम्भ में प्रतिवर्ष रोम नगर में भी मनाया जाता था। पुरोहित और अन्य कर्मठ लोग विलाप करने लगते जब बड़ी दुखी Isis मृतपति Osiris के प्राणों की उस टायफॉन नाम के ईश्वर से भिक्षा माँगती जिसके क्रोध से Osiris की मृत्यु हुई थी। इस कथा में एक बड़ा गूढ़-सा धार्मिक रहस्य छिपा था जो भावुक लोग ही जान पाते हैं। ईजिप्त में भी इस तरह का पर्व मनाया जाता था, जिसमें पुरोहित लोग सारी धार्मिक विधि का आध्यात्मिक रहस्य इस शर्त पर समझा देते थे कि वह गुप्त रखा जाए और श्रोता उसे

अन्य किसी को ना बताएं।"

ऊपर जो विभिन्न शब्द आए हैं उनमें Abydos अयोध्या का अपभ्रंश है। Isis यह मदनदेव की अर्धांगिनी 'रति' है। Osiris यह ईश्वरस का अपभ्रंश है। Osiris कामदेव मदन को कहा गया है। Set और Typhon यह 'शिव' तथा 'त्र्यम्बक' के अपभ्रंश है। त्र्यंबक भी शिव का ही नाम है। तपस्या भंग करने के क्रोध पर भगवान शिव ने तृतीय नेत्र खोलकर उससे निकली ज्वालाओं से कामदेव को भस्म कर दिया था, किन्तु मदन की पत्नी रति ने बड़ा विलाप करने पर उन्हें प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने मदन को पुनः जीवित तो किया किन्तु कामदेव की देह वापस न दिये जाने के कारण तत्पश्चात् कामदेव अनंग कहलाए। इस प्रसंग का वर्णन कालिदास के कुमारसम्भव काव्य में आया है। इस प्रकार काम-दहन का त्योहार सारे विश्व में मनाया जाना वैदिक सभ्यता के प्राचीन विश्व प्रसार का कितना सशक्त प्रमाण है।

रोम का निर्माण

इटालियन जनता में प्रचलित धारणानुसार भेड़िये के दूध पर पले दो मानवीय शिशु रोमस और रोम्युलस ने रोम नगर का निर्माण किया। इस ऊट-पटांग धाँसबाजी की जितनी भर्त्सना की जाए उतनी कम है।

एडवर्ड पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ १६६ पर रोम के बारे में Niebuhr का कथन उद्धृत किया है। Niebuhr कहते हैं कि "रोम यह नाम लैटिन भाषा में नहीं आता। उसी प्रकार Tiber, यह वहाँ की नदी का नाम कैसे पड़ा, इसका भी लैटिन भाषा द्वारा पता नहीं लगता। नव अग्नि (प्रज्वलन) का जो त्योहार मैक्सिको के लोग मनाते हैं उससे उनका एक नया समय (वर्ष) आरम्भ होता है। उससे रोमन लोगों के अर्थात् प्राचीन एट्रुस्कन सभ्यता के लोगों के एक त्योहार का स्मरण होता है। उस त्योहार में विशेषतः रोम नगर में मार्च मास के प्रथम दिन Vista के मन्दिर में एक नयी अग्नि प्रज्वलित करने की विधि होती थी।" Niebuhr के Rome नाम के ग्रन्थ में खण्ड १, पृष्ठ २८१ पर इस पर्व का उल्लेख है।

'राम' नाम इटली की लैटिन भाषा का नहीं है, यह विशेष ध्यान देने लायक बात है। होगा भी कहाँ से जब वह संस्कृत, वैदिक परम्परा द्वारा आया हुआ नाम है। टायबर नाम भी 'त्रिपुरा' शब्द है यह हम पहले कह चुके हैं।

नवाग्नि प्रज्वलन का उल्लेख भी रोम नगर में प्राचीनकाल से मनाए जाने वाले होलिकोत्सव का ही साक्षी है।

देवदासी प्रथा

Vista जो नाम पीछे आया है वह विष्णु का अपभ्रंश है। विष्णु को अर्पण की हुई कुमारियों को रोमन परम्परा में vestal virgins यानि "विष्णु उर्फ विष्टु की कुमारियाँ" कहा जाता था। भारत में भी विष्णु का अपभ्रंश विष्टु होता है। इस प्रकार भारत जैसी ही देवदासी-प्रथा रोम में होना यह वहाँ की प्राचीन वैदिक संस्कृति का और एक प्रमाण है।

रोम तथा ईजिप्ट के वैदिक सम्राट्

पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ १८०-१८१ पर लिखा है कि "ईजिप्त की तरह रोम में भी सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्रिय आ बसे थे। अतः दोनों में पुरोहितों के द्वारा बड़े समारम्भपूर्वक विविध धार्मिक विधि-विधान किए जाते थे। वहाँ सूर्य कुमारियों की भी प्रथा होती थी। वे सूर्य को अर्पण की हुई कन्याएँ थीं। उन्हें बाल्यावस्था में ही उनके कुटुम्ब से अलग कर शन्वंत (Convent) आश्रमों में रखा जाया करता। वहाँ उनका पालन-पोषण एक प्रौढ़ महिला की देख-रेख में होता रहता। उस पालनकर्त्री को Mama Conas (यानि माता कन्या) अर्थात् 'कन्याओं की आश्रमी माता' कहा जाता था। वे प्रौढ़ स्त्रियाँ भी वैसे ही आश्रम में पली होती थीं। कितने आश्चर्य की बात है कि अमेरिका के प्राचीन निवासी, रोम की ईसापूर्व परम्परा और (विद्यमान) कैथलिक ईसाई परम्परा में कितनी गहरी समानता है।"

अमेरिका खण्डों के मूल निवासियों में भी देवदासी प्रथा होती थी

इसका उल्लेख Prescott द्वारा लिखे Peru नामक ग्रन्थ के खण्ड के पृष्ठ १०५ पर आया है।

कहाँ भारत, कहाँ रोम और कहाँ पेरू और कहाँ रोम की आधुनिक ईसाई पम्परा ? किन्तु इन सब में देवदासियों की प्रथा होना क्या विश्व भर की वैदिक परम्परा का सशक्त प्रमाण नहीं है ? उन अर्पित कन्याओं की देखभाल करने वाली प्रौढ़ महिला को महाकन्या (मामा कन्या) कहा जाना भी सिद्ध करता है कि प्राचीनकाल की जागतिक व्यवहार की भाषा संस्कृत ही थी।

कॉन्व्हेंट विद्यालय

Convent शब्द आजकल बड़ा प्रचलित है। कॉन्व्हेंट यानि (ईसाई) घर्माश्रम। उनके चलाए हुए विद्यालयों को कॉन्व्हेंट विद्यालय (Convent Schools) कहते हैं। वस्तुत: Convent School यह शन्वंत शाला ऐसा संस्कृत शब्द है। Convent शब्द में 'C' का मूल उच्चार 'श' कायम कर देखें तो वह 'शन्वंत' शब्द है। 'शं' यानि मंगल। जैसे 'शंकर' यानि 'मंगल करने वाला'। शन्नो देवी यानि "हमारा मंगल करने वाली देवी"। अत: गुणवन्त जैसे 'शन्वंत' यह शुभ स्थान, मंगल स्थान यानि संन्यासियों के आश्रम का द्योतक संस्कृत शब्द है। किन्तु विकृत यूरोपीय परिपाटी में उसका उच्चार शन्वन्त की बजाय कॉन्व्हेंट किया जा रहा है। इसी प्रकार 'शाला' इस संस्कृत शब्द को विकृत कर School (स्कूल) लिखा जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों की उलझन

Prescott, Pococke, Franz Cumont जैसे पाश्चात्य लेखक बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं कि प्राचीन विश्व में दूर-दूर के प्रदेशों में एक जैसी ही देवदासी-प्रथा कैसे और क्यों देखने में आती है। सैकड़ों वर्षों की वह उलझन हमारे सिद्धान्त से एकदम सुलझ जाती है। वह सिद्धान्त यह है कि सारे प्राचीन विश्व में वैदिक संस्कृति ही प्रचलित थी।

रोम की देवती—माँ अम्बा

Franz Cumont के ग्रन्थ के पृष्ठ ४३-४४ पर उल्लेख है कि "'रोमन सैनिकों में माँ अम्बा की भक्ति करने की प्रथा थी। उस देवता की पूजा विधि रक्तरंजित होती थी। काले वस्त्र पहने उसके भक्त-गण ढोल तथा तुतारियों की नाद की मस्ती में गोल-गोल नर्तन करते रहते। उनके केश खुले बिखरे होते थे। नाचते-नाचते उनकी सुध-बुध खो जाती और वे अपनी बाँह तथा छाती पर तलवार, परशु आदि से अन्धाधुन्ध वार करने लग जाते। बहता रुधिर देखकर वे और भी उत्तेजित होकर देवी की तथा अन्य देवताओं की मूर्त्तियों पर निजी रक्त सींचते। अन्त में उनके शरीर में देवी का संचार हो जाता और वे अनजाने पूछे प्रश्नों के उत्तर देते रहते।"

ऊपर दिए वर्णन से, रोमन लोग वैदिक धर्मी यानि हिन्दू थे, यह सिद्ध होता है क्योंकि काली, दुर्गा, चण्डी, भवानी आदि के सम्मुख भारत में भी ठेठ ऐसी ही गतिविधि होती है।

रोमन लोग देवी को 'माँ' कहते थे जो संस्कृत शब्द है। प्रत्येक हिन्दू बालक निज माता को 'माँ' कहकर पुकारता है। जीझस कृस्त की Mother यानि 'मातर' मेरी थी। ऐसी ईसाई धारणा है, किन्तु कृस्त के जन्म के पूर्व ही अनादिकाल से मरिअम्मा (यानि मेरी माता) हिन्दुओं की देवी रही है। दक्षिण में तो मरिअम्मा मन्दिर विपुल होते हैं। कृस्त को मरिअम्मा का पुत्र इसलिए नहीं कहा गया कि मरिअम्मा नाम की वास्तव में ही कोई महिला थी। कृस्त को देवावतार सिद्ध करने के लिए वह देवी मरिअम्मा का पुत्र था ऐसी अफवाह ईसाई पादरियों ने उड़ा दी। वस्तुतः न ही कोई कृस्त नाम का पुत्र था और न ही कोई 'मेरी' नाम की उसकी माता। कृस्त का दैवी पिता कौन बतलाया जाए? इस प्रश्न का कोई समाधानकारी उपाय न सूझने पर जीझस कृस्त कुँवारी माँ का ही पुत्र था, ऐसी अफवाह ईसाई पादरियों ने उड़ाई।

शिया मुसलमान भी मोहर्रम के दिन ऐसे ही रो-पीटकर वार करते-करते अपने आपको घायल करते रहते हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता

है कि 'शिया' यह मुसलमान बनाए जाने से पूर्व शैवपन्थी यानि शिव और दुर्गा के उपासक होते थे।

देवी पूजा

फ्रेंझ क्यूमांट के ग्रन्थ में पृष्ठ ४६ पर रोमन लोगों के एक देवीपूजन प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—"Berccyntus उर्फ Ida के वन में तेज हवा चल रही थी। उस समय सिबेलादेवी सिंह जोते हुए अपने रथ में बैठकर पति की मृत्यु का विलाप करती बताई जाती है। उसके पीछे भक्त-गणों की भीड़ नारे लगाती घनी झाड़ी से मार्ग ढूंढ़ती-ढूंढ़ती रथ के पीछे चलती है। साथ ही पखावज, ढोल, घण्टा आदि विविध वाद्यों का कोलाहल भी चलता रहता है। भाग-दौड़, ढोल आदि वाद्यों की ध्वनि और नारे-बाजी से थकेमांदे भक्तजनों का दम घुट जाता था। फिर भी उत्कट भक्तिभाव से वे सारे जन देवी पूजन में मग्न हो जाते।"

पृष्ठ ५० पर क्यूमांट लिखते हैं कि "देवीपूजन के उत्सव में अन्धाधुन्ध नाचते-नाचते मग्न होने वाले भक्तगण अपने शरीर पर किये घावों से बहता निजी रुधिर छिड़ककर देवता से एकरूप हो जाने की भावना करते। कभी-कभी तो भक्तगण उत्कट भक्तिभाव से बेसुध अवस्था में निजी जननेन्द्रिय भी काटकर देवी को अर्पण करते थे, जैसे कि ईसाई पन्थ के विरोधक कुछ रशियन लोग अभी भी करते दिखाई देते हैं। ऐसी उत्कट भक्ति को घृणा करना या उसका हँसी-मजाक उड़ाना योग्य नहीं, क्योंकि वे भक्तगण इस ऐहिक जीवन के झंझटों से मुक्ति पाने की भावना से परमात्मा में विलीन होना चाहते थे।

हिन्दू देवता कामदेव

ईसापूर्व रोम में मार्च मास की २४ तारीख को ॲटिस् (Attis) देवता की पुण्यतिथि मनायी जाती थी। उसे dies Sanguinis यानि 'संजीवन दिवस' कहा करते। रति के पति का नाम रोमन् प्रथा में अतिस कहा जाना सम्भव है। उसने भगवान शंकर की कामवासना जागृत कर उनकी समाधि भंग करने का प्रयास किया था, ऐसी पौराणिक कथा है। उससे क्रोधित हो उठे शिवजी ने निजी तृतीय नेत्र से निकली क्रोधाग्नि

से कामदेव को भस्म किया। उसकी स्मृति में रोम में प्रतिवर्ष मार्च २४ को पुण्यतिथि मनाई जाती है।

पश्चिमी देशों में वैदिक (हिन्दू) देवताओं का उल्लेख

क्यूमांट अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ११० पर लिखते हैं कि "फिनीशिया में जिन (वैदिक) देवताओं की पूजा होती थी उनका सागर पार कर 'रोम' में प्रवेश होना स्वाभाविक ही था। उन देवताओं में Adonis एक देव थे जिनसे विरह होने का दुःख Byblos की महिलाएँ प्रकट करती थीं। Balmarcodas नाम के रासक्रीड़ा करने वाले भगवान बेरुट (Beirut) नगर के देव थे। पर्जन्य के देव Marna Gaza में पूजे जाते थे। Maiuma (माई-उमा) के नाम से सागर तटवर्ती लोग Ostia नगर में और पूर्ववर्ती देशों में छुट्टी मनाया करते थे।

ऊपर कहे सारे देवता हिन्दू लोगों के ही तो हैं। वही देवता विश्व के विविध भागों में पूजे जाते थे। Adonis भी कामदेव का ही नाम लगता है। रासक्रीड़ा करने वाले बालमर कोडस तो स्पष्टतया बालमुकुंद भगवान कृष्ण ही हैं। मर्ना कहे जाने वाले देव वरुण हैं। इसी से marine, mariner आदि सागर सम्बन्धी शब्द यूरोपीय भाषाओं में बने। 'मां उमा' तो पूर्णतया ज्यों-का-त्यों संस्कृत वैदिक देवता का नाम है ही। अतः वर्तमान युग में विश्व के जो अनेक देश ईसाई या इस्लामिक बने हुए हैं वे पूर्णतया वैदिक धर्मी थे। मर्ना यह वरुण का अपभ्रंश हो सकता है अथवा वरुण का कोई दूसरा नाम। मर्ना से मिलता-जुलता अमरकोश आदि संस्कृत ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

इक्के-दुक्के ही देवता क्यों?

वैसे तो वैदिक परम्परा में ३३ करोड़ देव हैं ऐसी धारणा है, फिर भी विशिष्ट मन्दिरों में या नगरों में भारत में भी एकाध देवता ही प्रधान होता है। उसी प्रकार बैरूट, बिब्लोस, ऑस्ट्रिया आदि स्थानों से वैदिक सभ्यता मिटे हुए १०००-१५०० वर्ष बीत जाने पर भी वहाँ की प्राचीन वैदिक (हिन्दू) देवताओं की स्मृति हम तक आ पहुंची है यह कोई सामान्य

बात नहीं है । वह स्मृति इसीलिए कायम है कि इस्लाम और ईसाई पन्थों का प्रसार हुए केवल एक-डेढ़ सहस्र वर्ष ही बीते हैं जबकि उससे पूर्व लाखों वर्ष तक उन प्रदेशों में वैदिक धर्म ही था।

ईसापूर्व समय में उन प्रदेशों में एकाध वैदिक देवता ही रह गया हो तो यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं । क्योंकि जैसा हम पहले बता चुके हैं महाभारतीय युद्ध के पश्चात वैदिक कीर्तन, प्रवचन, गुरुकुल शिक्षा आदि की परम्परा टूट गई थी । विभिन्न प्रदेशों में टूटी-फूटी वैदिक परम्परा लड़खड़ाती रह गई। अतः कहीं एक वैदिक देवता तो कहीं दूसरा, इस प्रकार देवताओं का, व्रतों का, पर्वों का भी विभाजन हो जाना स्वाभाविक ही था।

ग्रीस तथा रोम की वैदिक परम्पराएँ

क्यूमांट के ग्रन्थ में पृष्ठ १३७ पर लिखा है कि "रोमन् सम्राटों की धारणाएँ तथा उनके राजकुलों में होने वाली विधि, भारतीय राजकुलों के जैसी ही थी। अतः दोनों की परम्परा का स्रोत एक ही था (L'Eternite des Emperaurs Romans, 1896, ग्रन्थ के पृष्ठ ४४२ पढ़ें।) सगे-सम्बन्धियों का स्वागत करते हुए आगन्तुक के सिर का जिघ्राण करना यह पूर्ववर्ती देशों की प्रथा रोम में भी प्रचलित थी।"

सूर्य (मित्र) पूजन

यूरोपीय विद्वान मित्र उर्फ मित्रस् देवता को ईरानी समझकर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि ग्रीस और रोम में भी सूर्य देवता की पूजा की प्रथा कैसे चल पड़ी ? ऐसी ऐतिहासिक उलझनों का उत्तर हमारे सिद्धान्त से सरलता से मिलता है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक प्रथाएँ खण्डित रूप में सारे विश्व में चलती रहीं। किन्तु वे एक हीं अखण्ड विश्वव्यापी संस्कृति के टुकड़े हैं, इसकी स्मृति दिन-प्रतिदिन नष्ट होती रही । पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा कि सूर्य पूजन किसी पिछड़ी वनवासी जाति की प्रथा थी, पूर्णतया गलत है। इससे पाश्चात्य विद्वानों का विश्व इतिहास सम्बन्धी ज्ञान ही अपरिपक्व-सा दिखाई देता है । सूर्य ही पृथ्वी पर स्थित पूरी जीवसृष्टि का कर्त्ता-धर्ता है, यह धारणा

पिछड़ेपन की नहीं, बल्कि प्रगत शास्त्रीय तथ्यों की द्योतक है।

रोम में फलज्योतिष की परम्परा

भारत की तरह ही रोम में भी फलज्योतिष को उच्चतम विद्या माना जाता था। राजधानी रोम में तथा विभिन्न प्रान्तों के नगरों में सप्त मंजिले भवन Septizonia (सप्तभुवन उर्फ सप्तखण्ड) सप्त ग्रहों के प्रतीकों के रूप बनाए जाते थे। अन्तिम संस्कार पर मृतक की मृत्यु का निश्चित समय अंकित करने की प्रथा थी। नगर निर्माण, राज्याभिषेक, विवाह, प्रवास, गृहप्रवेश, केशकर्तन, वस्त्रपरिधान, नाखून काटना और कभी-कभी स्नान के लिए भी शुभ घड़ी ज्योतिषियों से पूछी जाती थी। ज्योतिषियों से ऐसे भी प्रश्न पूछे जाते थे कि होने वाले पुत्र की नाक लम्बी होगी या नहीं ? होने वाली पुत्री का जीवन साहसी होगा या नहीं ?

उनकी कुछ रूढ़ धारणाएँ भी होती थीं। जैसे शुक्ल पक्ष में बाल कटवा लेने से आदमी गंजा होता है। सम्राट रिबेरियस् जैसे लोग होते थे जो भाग्य तथा फलज्योतिष पर दृढ़ विश्वास के कारण कर्मठ धार्मिक विधि अनावश्यक समझते थे। ऊपर कही सारी बातें वैदिक संस्कृति के ही लक्षण हैं।

रोमन देवता

St. Augustine नाम के ईसाई पादरी ने ईसापूर्व देवी देवताओं की खिल्ली उड़ाने वाली एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक का शीर्षक है The City of God's। इस पुस्तक से रोम नगर में पूजे जाने वाले देवताओं की कुछ जानकारी प्राप्त होती है। ईसाई धर्म प्रसार के पश्चात सारे मन्दिर गिरिजाघर बना दिए गए। उदाहरणार्थ Studio Pontica नाम की पुस्तक में पृष्ठ ३६८ पर लिखा है कि किस तरह Trapezus के समीप के एक भूगर्भस्थ सूर्य (मित्र) मन्दिर को गिरिजाघर बना दिया गया।

ईसाई लेखकों का विकृत दृष्टिकोण

बयूमांट के ग्रन्थ में पृष्ठ १४ से १६ पर उल्लेख है कि "यद्यपि ईसाई

लेखकों ने ईसापूर्व समाज का तिरस्कारपूर्वक विवरण दिया है तथापि उनसे उस समय की जानकारी तो मिलती ही है। यह कैसा विचित्र योगा-योग है कि जिन्होंने उस सभ्यता का तिरस्कारपूर्वक न ष किया उन्हीं के द्वारा लिखी सामग्री पर हमें तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन की जान-कारी के लिए निर्भर रहना पड़ता है। उन प्राच्य देवी-देवताओं के रोमन भक्तों पर ईसाई धर्म प्रचारक कड़ी टीका-टिप्पणी करते हैं। उस (वैदिक) धर्म को बुरा-भला कहने वाले लेखक या तो स्वयं पहले उस धर्म के अनुयायी होने के नाते उसकी प्रथाओं से परिचित थे या नए ईसाई बने लोगों से वे ईसापूर्व प्रथाओं की जानकारी प्राप्त कर लिया करते थे। Firmicus Maternus एक ऐसा ही व्यक्ति था जिसने फलज्योतिष के बारे में एक टेढ़ा-मेढ़ा ग्रन्थ लिखकर उस पर विश्वास रखने वालों पर कड़ी टीका की है। उस ग्रन्थ का नाम है Errors of the Profane Religions (यानि 'काकर परम्पराओं के विकृत व्यवहार')। तो भी प्रश्न यह उठता है कि उस जैसे टीकाकारों को उन धार्मिक सिद्धान्तों का या उनसे सम्बन्धित कर्मकाण्ड का कहाँ तक सही या गहरा ज्ञान था। उस पाखण्ड का भांडाफोड़ करने का घमण्ड वे चिल्ला-चिल्लाकर प्रकट करते रहते हैं तथापि उन ईसापूर्व पन्थों की भर्त्सना में किए जाने वाले निराधार और निरर्थक वचनों पर वे एकदम विश्वास कर लेते हैं। सार यह है कि उन टीका-टिप्पणियों में कोई गहराई न होने के कारण उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऋषि तथा महर्षि

वैदिक परम्परा में ऋषि और महर्षि शब्द बराबर आते हैं। प्राचीन इटली में भी वे शब्द बार-बार पाये जाते थे क्योंकि वहाँ की परम्परा वैदिक थी तथापि इटालियन लोग तथा अन्य यूरोपीय जन उन शब्दों के मूल वैदिक अर्थों को भूल गए हैं। उदाहरणार्थ—चीन में सन् १५९३ में प्रथम बार कृस्ती कैथलिक पन्थ केन्द्र जिसने स्थापित किया वह एक इटा-लियन व्यक्ति था जिसका नाम था Matteo Ricci। वह वैदिक नाम महादेव ऋषि है। ऐसे सूत्रों से यदि अध्ययन करा जाए तो प्राचीन इटली

की सभ्यता पूर्णतया वैदिक थी इस तथ्य का पता चलेगा।

सेनाशाला इयम्

क्यूमांट के ग्रन्थ के पृष्ठ ८४ पर उल्लेख है कि "रोम नगर में प्राचीन काल में जहाँ Senate (यानि वरिष्ठ सेनाधिकारियों) की सभा होती थी उस भवन को Senaculum कहा करते थे।" वह बड़ा यथार्थ संस्कृत नाम है। यदि C अक्षर का मूल उच्चार 'श' किया जाए तो वह 'सेना शाला इयम्' ऐसा संस्कृत नाम होगा। और C का उच्चार 'क' किया जाए तब भी 'सेना-कुलम्' (गुरुकुलम् जैसा) शब्द स्पष्टतया संस्कृत ही दिखाई देता है। 'सेना ईशालयम्' भी हो सकता है। उसका अर्थ होगा 'वरिष्ठ सेनाधिकारियों का (सभा) स्थान'। इस प्रकार Latin भाषा भी स्पष्टतया संस्कृत का ही एक प्राकृत संस्करण दिखाई देती है।

इटली का शिव मन्दिर

क्यूमांट के ग्रन्थ में पृष्ठ ८५-८६ पर उल्लेख है कि "रोम नगर के जिस विभाग में Concord का मन्दिर था उसे Area Concordae (परिसर शंकरदेव) कहा करते थे। कहते हैं कि Romulus ने वहाँ चार घोड़ों के रथ में आरूढ़ कुछ पीतल की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की थीं और वहाँ एक कमल का पौधा लगाया था। रोम में तो कई मन्दिर थे किन्तु उनमें Jauns (यानि गणेश) का मन्दिर बड़ा ही प्रख्यात था जो Curia के सामने स्थित था।"

ऊपर Concordae शब्द में 'C' अक्षर का उच्चार 'श' करने से झट पता लगेगा कि वह 'शंकरदेव्' शब्द है। 'जेनस्' उर्फ गणेश का मन्दिर प्रख्यात होना भी बड़ा अर्थपूर्ण है क्योंकि गणेश जी की अग्रपूजा का मान सर्वविदित है ही।

आधुनिक आंग्लभाषा में उसी Latin प्रयोग से Concord तथा Concordium शब्द रूढ़ हैं। उनका अर्थ है 'समझौता'। वे 'शंकरदेव' उर्फ 'शंकर देवम्' ही शब्द हैं। क्योंकि वैदिक परम्परा में शंकर जी ही रण देवता थे। 'जय एकलिंग जी' कहकर ही शत्रु पर हमला होता था।

अत: युद्धविराम का समझौता या विरोधियों में आपस में मिलजुलकर रहने की जो सन्धि होती थी वह शंकर जी की मूर्ति के सम्मुख शंकर जी की शपथ लेकर की जाती थी। अत: ऐसे समझौतों का 'शंकरदे' अर्थात् 'शंकरदेव' उर्फ 'शंकर देवम्' ऐसा नाम पड़ा। शंकर भगवान को साक्षी रखकर शांति सन्धि की जाती थी।

प्राचीन रोम का विष्णु मन्दिर

Rome and the Compagna नाम का Robert Burn का लिखा ग्रन्थ है। Compagna (कंपग्ना) का अर्थ 'परिसर' है। हो सकता है वह मूल संस्कृत 'सम्पन्न' शब्द हो। उन शब्दों का अर्थ संस्कृत शब्द कोष में पाठक अवश्य देखें। उस ग्रन्थ के पृष्ठ ६०३ पर उल्लेख है कि Vesta (वेष्टा) का मन्दिर एक वर्तुलाकार इमारत होती थी। वह पृथ्वी के आकार की इस कारण बनाई गई थी कि उसमें स्थित वेष्टा भगवान समस्त संसार के द्योतक थे।"

ऊपर दिए उद्धरण में ऐसे कई चिह्न हैं जिनसे वह मन्दिर विष्णु का ही जान पड़ता है। एक प्रमाण यह है कि संस्कृत 'ष्ण' का प्राकृत 'ष्ट' अपभ्रंश होता है। इसी कारण कृष्ण का उच्चार 'कृष्ट' और विष्णु का अपभ्रंश विष्टु होता है। मराठी भाषा में विष्णु का ही विठू और विष्टल: का विठ्ठल: बना। वही विष्टु उच्चार Robert ने वेष्टा (vesta) लिखा हो। ईसाई लोगों की एक सहस्र वर्षों की परम्परा में विष्णु का नाम वेष्टा लिखा जाना स्वाभाविक ही था।

दूसरा प्रमाण यह है कि क्षीरसागर में विष्णु अनंतनाग के लपेटों पर विराजमान (लेटे हुए) बताए जाते हैं। शेष पर सागर में लेटे भगवान का मन्दिर गोल या अण्डाकृति होना स्वाभाविक ही है। अण्डाकृति भी गोल ही कही जाएगी।

तीसरा प्रमाण है कि वे भगवान सारे विश्व के प्रतीक थे। भगवान विष्णु बराबर सारे विश्व के कर्ताधर्ता, सूत्रधार, मूलाधार आदि माने जाते ही हैं। चौथा प्रमाण है कमल के पौधे का। वैदिक देवों का कमलासन ही होता है तथा हाथ में भी कमल होता है।

पाँचवाँ प्रमाण यह है कि भगवान राम विष्णु के ही अवतार माने जाते हैं। अतः रोम उर्फ रामनगर के ठीक मध्य में वर्तुलाकर मन्दिर भगवान विष्णु का होना अपरिहार्य था। इसी कारण इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हम उल्लेख कर चुके हैं कि सारे विश्व का आधार तथा निर्माता और पालक जो भगवान विष्णु हैं, उनकी प्रतिमाएँ विश्व में कई स्थानों पर थीं। उनमें से एक था प्राचीन रोमनगर का मध्य।

वर-वधुओं का होम हवन

वैदिक विवाहों में कई प्रकार के होम तीन-चार दिनों के विवाह समारंभ में अन्तर्भूत होते हैं। रोमन समाज में भी वैसे ही होते थे। Robert अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १७० पर लिखते हैं कि "विवाह की वेदी पर नवविवाहित दम्पति हवन किया करते थे"।

उनके ग्रन्थ के पृष्ठ २०५ और २०६ पर ईसापूर्व रोम नगर में देवी Guno Regina की पूजा का उल्लेख है। Regina यह 'राज्ञि' यानी 'रानी' अर्थ का संस्कृत शब्द है। Guno यह 'जन' का अपभ्रंश हो सकता है। अतः Guno Regina **यानि राज्यलक्ष्मी** हो सकती है। "उस देवी की प्रार्थनागीत २७ कुमारियाँ गातीं थीं। मन्दिर के उस प्रसंग जुलूस में दो गोवत्स सबसे आगे होते थे।"

सत्ताइस मातृकाएँ वैदिक परम्परा में प्रसिद्ध हैं ही तथा गोवत्सों का भी महत्त्व होता है। गोवत्स तथा कन्याएँ जो भावी माताएँ होती हैं, इन्हीं से जीवन फलता-फूलता है। इसी भाव से प्राचीन रोम में वे पूज्य तथा आदरणीय मानी जाती थीं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इसी मनुमहाराज के वचन का वह समारम्भ प्रतीक था।

Burn के ग्रन्थ में पृष्ठ २५१ पर लिखा है कि "The Temple of Serapis is named in the Curiosum Urbis···but nothing further is known about its site", यानि "नगर की आश्चर्यकारी बातों में सर्प मन्दिर का उल्लेख तो मिलता है किन्तु यह कहाँ था ? इसका पता नहीं चलता है।"

हमारा अनुमान यह है कि Vesta यानि शेषशायी विष्णु का जो

मन्दिर था उसी का उल्लेख कुछ लोग सर्पमन्दिर के नाम से करते रहे होंगे। धीरे-धीरे वैदिक सभ्यता की बातें नष्ट होते-होते जैसे-जैसे ईसाई मत का प्रसार होने लगा वैसे-वैसे एक ही देवस्थान को कोई विष्णु का मन्दिर कहते रहे तो कोई शेष का। मूर्तिभंजन का आन्दोलन जब ईसाई पादरियों ने चलाया तब हो सकता है कि उन्होंने विष्णु की मूर्ति तोड़-फोड़कर शेष उर्फ सर्प की कुछ समय तक वैसी ही रहने दी हो। अत: विष्णु के मन्दिर की स्मृति नष्ट होने के पश्चात् कुछ भावुक लोग उसी विष्णु मन्दिर में सर्प का ही दर्शन करते रहे होंगे। इस प्रकार एक ही मन्दिर का उल्लेख भिन्न-भिन्न समय में दो प्रकार से किया जाना असम्भव नहीं था। ऐसी बारीक बातें यूरोपीय पुरातत्वविदों के वश की न होने के कारण यूरोपीय ईसाई पंथी लोगों ने आज तक जितना भी पुरातत्वीय संशोधन किया है, उसका पुनर्अध्ययन होना बड़ा आवश्यक है।

बृहत् महादेव

रोम नगर में The Church of Bortholomeo नाम का विशाल गिरिजाघर था, वह अब नष्ट हो गया है, क्योंकि वह 'बृहत् महादेवीय मन्दिर था जिसमें शंकर भगवान की त्रिशूलदण्ड धारण किये हुए एक विशालकाय खड़ी मूर्ति होती थी। इसी कारण उसे बृहमहादेवीय मन्दिर कहा जाता था। उसी का विकृत उच्चार 'बार्थोलोमिओ' हो गया है। वैसी विशाल शिव प्रतिमाएँ आधुनिक काल में भी इटली देश के विभिन्न नगरों में चौराहों के फव्वारों पर खड़ी की जाती हैं। इटली की ईसाई जनता अभी तक अपने उस प्राचीन शंकर भगवान की स्मृति बड़े आदर से संवारती और दोहराती रहती है।

Burn के ग्रन्थ में पृष्ठ २८८ पर लिखा है कि "रोम नगर में एक बड़ा नाला (गटर) है। उसके समीप डोलिओला (Doliola) नाम का स्थान है। सन् ३८७ के गॉट लोगों के द्वारा किये गए आक्रमण के समय उस डोलिओला स्थान में Vesta के मन्दिर के पवित्र अवशेष काष्ठ पात्रों में भर-भर कर संरक्षणार्थ दबा दिये गए थे। लैटिन 'डोलिओला' संस्कृत देवालय का ही अपभ्रंश लगता है। हो सकता है कि वह कोई प्राचीन

देवालय का खण्डहर होने से 'डोलिओला' कहा जाता रहा। ईसाई बने रोमन लोगों ने सुरक्षा का बहाना बनाकर वे अवशेष गाड़ दिए हों। जैसा भी हो उस स्थान का पुरातत्वीय उत्खनन वैदिक संस्कृति के जानकारों की निगरानी में होना आवश्यक है।

पृष्ठ २६१ पर लेखक Burn ने Vesta के वर्तुलाकार मन्दिर का चित्र दिया है। उसे हरक्युलिस (Hercules) का मन्दिर भी कहा जाता था। Vetsa का भी कहा जाता था। ऐसा Burn लिखते हैं। वह भी बात जँचती है क्योंकि 'हरि-कुल-ईश' और विष्णु दोनों एक ही भगवान के नाम हैं।

पृष्ठ २६८ पर Burn ने ग्रहदेवताओं के मन्दिरों का उल्लेख किया है। रोम नगर के मध्य में अन्य देवी-देवताओं के साथ नवग्रहों का मन्दिर होना भी बड़ा स्वाभाविक था। वैदिक परम्परा के अनुसार ग्रहगति के घटिक्रम के द्वारा ही जीवन की विविध घटनाएँ होती रहती हैं। इसी कारण उस विश्वयन्त्र के पुर्जों के रूप में नवग्रहों की पूजा वैदिक परम्परा में की जाती है।

रोम के प्रमुख देव विष्णु ही थे, यह स्पष्ट करते हुए Burn ने पृष्ठ ३६७ पर लिखा है, तिबर (Tibur) नदी के प्रमुख देव हरक्युलिस (हरि-कुल-ईश) ही थे। इसी कारण लैटिन कवियों ने कई बार रोम नगर का ही हरक्युलिस कहकर उल्लेख किया है। Strabo ने लिखा है कि उसके समय में टायबर (त्रिपुरा) नदी दो बातों के लिये प्रसिद्ध थी—"एक उसका हरि ईशालयम् (Herculeum) और दूसरी बात उस नदी का प्रपात। उस हरि ईशालयम् मन्दिर का एक ग्रन्थालय भी होता था। जिस स्थान पर हरिईशालयम् सम्बन्धी अनेक शिलालेख पाये गए हैं वहीं पर वह मन्दिर रहा होगा।" ग्रन्थालय में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत ग्रन्थ और उनके स्थानिक भाष्य ही रहे होंगे।

इस प्रकार इटली में प्राचीन वैदिक मन्दिर हैं, शिलालेख हैं, रामायण प्रसंग के चित्र हैं, शिवलिंग, शिव प्रतिमाएँ तथा गणेश आदि देवमूर्तियाँ हैं, व्हॅटिकन् (vatican) यानि (वेद) वाटिका है, देवदासी प्रथा थी, सती प्रथा थी। इतने भरसक प्रमाण होते हुए भी यूरोप के लोगों को आज तक यह पता नहीं चला कि रोम की सभ्यता वैदिक



जर्मनी के एक प्राचीन वैदिक शासक का शव

थी। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि किस प्रकार विद्वान कहलाने वाले यूरोपीय पुरातत्वज्ञ तथा इतिहासकार या तो अज्ञानी हैं अथवा ढोंगी और धूर्त हैं। उन्होंने प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रमाण कहीं नष्ट किए, कहीं छिपा रखे या उनका विकृत अर्थ लगाया ? विश्व के कई प्रदेशों में जैसे ब्रिटेन. अर्बस्थान, रशिया आदि में विशालकाय शेषशायी विष्णु भगवान की मूर्तियाँ थीं। यह विश्वव्यापी वैदिक सभ्यता का कितना बड़ा प्रमाण है।

पश्चिम जर्मनी में Stuttgart नगर के समीप Hoehdorz नाम के गाँव के एक टीले के अन्दर दफनाया हुआ यह ईसापूर्व लगभग वर्ष ६०० के एक क्षत्रिय शासक का शव। (पृष्ठ १२६)

उस समय संस्कृत भाषी वैदिक दत्य कुल का शासन यूरोप में था। उसी संस्कृत 'शर्मन' शब्द का अपभ्रंश 'जर्मन' है। वहाँ के ब्राह्मण या विद्वदवर्ग को लोग 'शर्मन् उर्फ जर्मन्' कहा करते थे जैसे भारत में ब्राह्मण को 'पण्डित' कहा जाता है चाहे उसे कुछ भी विद्या नहीं आती हो।

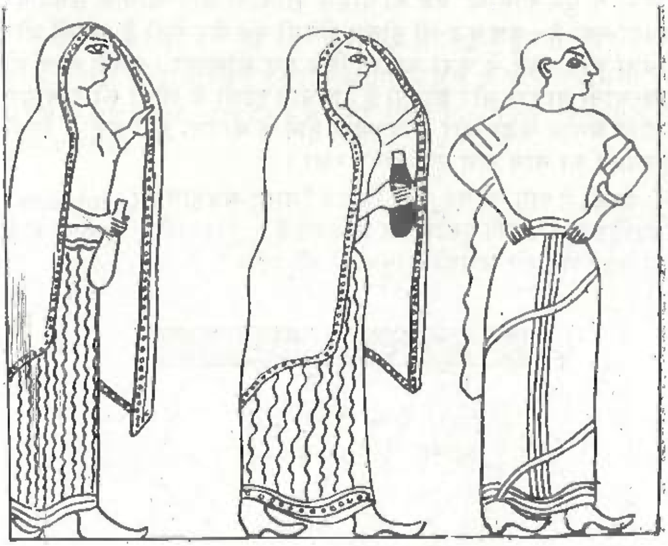
शव पर आभूषण तथा वस्त्र वैसे ही हैं जैसे भारत में महाभारत-कालीन व्यक्तियों के बताए जाते हैं। शव के पैरों की दिशा में एक ब्रांझ धातु की डेकची है। उस पर सिंह की मूर्तियाँ जडी हुई हैं। वैदिक क्षत्रियों के नामों में अधिकतर 'सिंह' की उपाधि लगती थी। उससे शक्ति के अधिकार तथा पराक्रम व्यक्त होते थे। वही राजचिह्न भी होता था।

डेकची में मधुपर्क के अवशेष पाए गए हैं। वैदिक परम्परानुसार सम्माननीय व्यक्तियों का स्वागत करते समय या विदा करते समय मधुपर्क का प्रयोग होता था। इसी कारण शव के समीप डेकची में मधुपर्क पाया गया।

मृत शासक के सुनहरी पलंग की दूसरी ओर पहिएवाली जो लम्बी सी गाड़ी है वह उस शासक का रथ है।

शव कक्ष की चारों दीवारें पत्थर और लगुडदण्डों से सँवारी देखी जा सकती हैं।

ऐसे कई रामायण प्रसंगों के चित्र इटली में प्राप्त ईसापूर्व घरों में पाए गए हैं। वे Etruscan Paintings यानि एट्रुस्कन् सभ्यता के चित्र



दशरथ की तीन पत्नियाँ—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा पुत्रकामेष्ठि यज्ञ का पवित्र पायस लिए हुए

कहे जाते हैं। ईसापूर्व ७वीं शताब्दी से ईसापूर्व पहली शताब्दी तक इटली देश के उत्तरी तीन-चौथाई भाग में एट्रुस्कन् सभ्यता थी ऐसा स्थानीय विद्वानों का अनुमान है।

वह संस्कृति एकाएक कैसे और कहाँ लुप्त हो गई ऐसे सम्भ्रम में इटली के ईसाई विद्वान पड़े हुए हैं। वे यह नहीं जानते की एट्रुस्कन् कहलाने वाले लोगों के बाल-बच्चे ही ईसाई बन जाने पर उन्हें निजी पूर्वजों की एट्रुस्कन् संस्कृति का पूरी तरह विस्मरण हो गया है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, कश्मीर, अफगानिस्तान आदि देशों में एक समय हिन्दू धर्म था। किन्तु अब मुसलमान बनने पर वहाँ के विद्वान ऐसा दिखावा करते रहते हैं जैसे उनके प्रदेश में आरम्भ से ही हिन्दू धर्म का कोई नामो-निशान तक नहीं था। इस प्रकार से धार्मिक द्वेषभाव और तिरस्कार से अतीत के अध्ययन में बड़ी बाधा आती है।

ऊपर का चित्र, दशरथ की तीन पत्नियाँ—कौशल्या, कैकेयी और

सुमित्रा में पुत्र कामेष्टि यज्ञ का पायस तीनों में बाँटे जाने के समय का बताया गया है। कुछ क्रुद्ध-सी होकर कैकेयी मुँह फेर लेती है। बायीं ओर सुमित्रा और मध्य में पूरा पायस लिये हुए कौशल्या। उनके वस्त्र भी राजस्थानी घाघरा और ओढ़नी हैं। प्राचीन इटली के लोगों की रामायण के प्रति अगाध श्रद्धा और आदरभाव होने के कारण ही उन्होंने निजी राजधानी का नाम राम उर्फ रोमा रखा।

इटली में पाए गए एट्रुस्कन् चित्र कई वास्तु-संग्रहालयों(Museums) में प्रदर्शित हैं। उनकी पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। पुरातत्वीय पुस्तकों में वे कहाँ-कहाँ पाए गए, इसकी जानकारी भी प्राप्त है।



राम, लक्ष्मण और सीता बनवास में
सीता के हाथ में तुलसी का पौधा है

उसी एट्रुस्कन् सभ्यता के समय ही रोम के Vatican (यह वेद वाटिका होती थी और उस वाटिका में पाप-ह (पापा उर्फ पोप) यानि पापहर्ता (पापहन्ता) वैदिक शंकराचार्य रहा करता था) अर्थात् उस

वेद वटिका में वेदोपनिषद, रामायण, महाभारत आदि का पठन होता था। वे संस्कृत ग्रन्थभण्डार और उन ग्रन्थों के स्थानीय अनुवाद कभी के नष्ट करा दिए गए हैं या खो गए हैं।

प्राचीन इटली में पाया गया रामायण प्रसंग का दूसरा चित्र (पृष्ठ १३२) राम-सीता-लक्ष्मण वनवास जाते हुए एक के पीछे एक उसी क्रम में बताये गए हैं जैसे रामकथा में कहा जाता है। सीता जी के हाथ में तुलसी मंजरी है।



सेना के साथ राम को मनाने वन जाते हुए भरत

प्राचीन इटली का रामायण-प्रसंग का उपरोक्त एक और चित्र। इसमें भरत राम को मिलने वन की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। दाहिनी ओर पांच भाले निर्देशित कर रहे हैं कि पीछे सेना आ रही है।



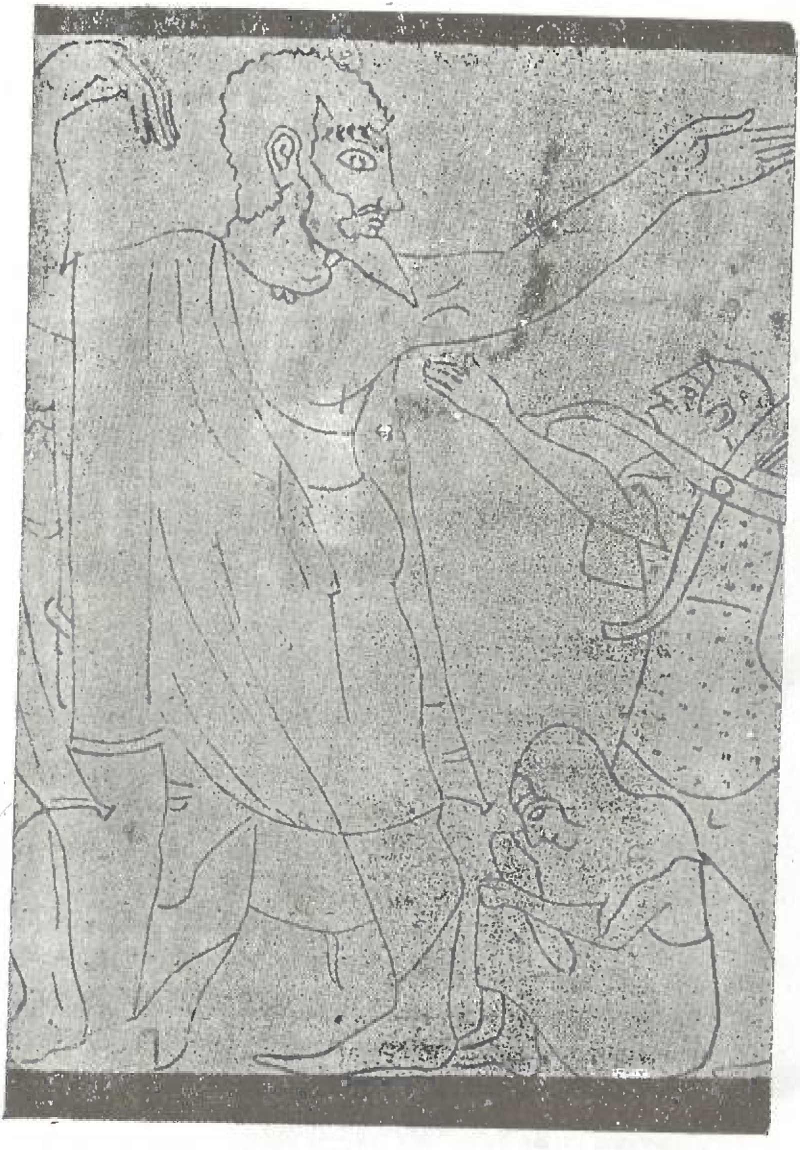
सुग्रीव की पत्नी रुमा का बालि द्वारा अपहरण

प्राचीन इटली के घरों में पाए गए चीनी माटीकी ऊँची कुण्डी पर बना चित्र (पृष्ठ १३४) बाली-सुग्रीव के विवाद का द्योतक है। सुग्रीव की पत्नी रूमा का बालि ने अपहरण किया था। यहाँ उन दोनों का विवाद दिग्दर्शित है।

इटली की उस एट्रुस्कन् सभ्यता को विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति का अंग मानकर ही उसका अध्ययन भविष्य में किया जाना चाहिए।



सुग्रीव को धमकाते हुए लक्ष्मण



रावण, विभीषण और सीता अशोक वाटिका में

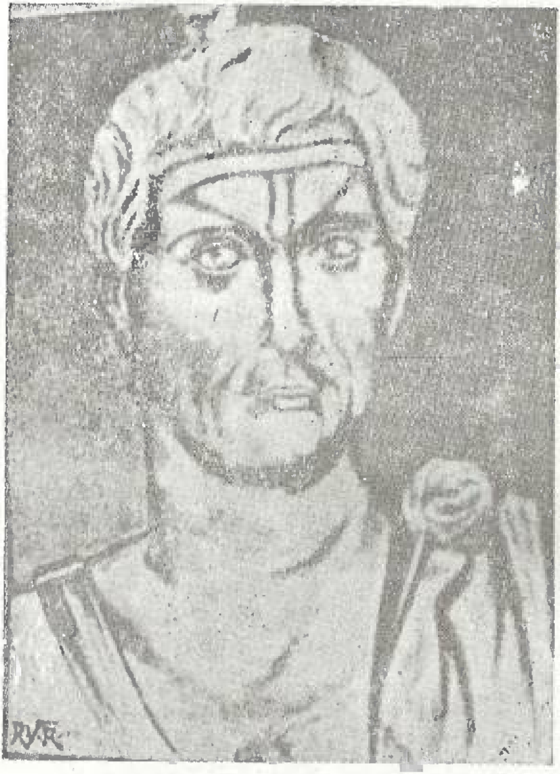
प्राचीन इटली का एक और रामायण की घटना का चित्र (पृष्ठ १३५) है। लक्ष्मण सुग्रीव को धमका रहे हैं। राम और सुग्रीव में हुई सन्धि के अनुसार सुग्रीव को निजी राज्य और अपहृत पत्नी वापस मिल जाने पर राम को रावण पर चढ़ाई करने के लिए सैनिक सहायता देने के लिए सुग्रीव वचनबद्ध था। फिर भी सुग्रीव टालमटोल करता रहा। अतः राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव को धमकाने के लिए भेजा।

प्राचीन इटली में बना रामायण प्रसंग का एक और चित्र। वैदिक पहरावे में रावण। नीचे दाहिनी ओर सर पर पल्लू ओढ़े सीता अशोक वाटिका में दुखी बैठी हैं। विभीषण राम को मिलने जाने की तैयारी में सीता को बन्धनमुक्त करने की रावण से अन्तिम विनती करते हुए। (पृष्ठ १३६)।



राम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को लव-कुश ने पकड़ लिया

रामायण की घटनाओं में जो चित्र इटली के ईसापूर्व घरों में पाये गए उनमें यह एक है। इसमें लव और कुश राम द्वारा भेजा अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पकड़े हुए दिखाए गए हैं। (पृष्ठ १३७)



रोम का एक शासक माथे पर तिलक धारण किए

ईसापूर्व रोम में राम के नाम का साम्राज्य था इसका प्रमाण वहाँ की तिलक धारण प्रथा में पाया जाता है। चित्र में ईसा पूर्व रोम साम्राज्य के Consul (यानि राष्ट्रप्रमुख) Pompei ललाट पर तिलक लगाए बताए गए हैं। यह चित्र Smith द्वारा लिखित History of Rome के पृष्ठ

२३७ से उद्धृत किया है। अय्यंगर द्वारा लिखित Long Missing Links ग्रन्थ में भी यह चित्र प्रकाशित है।

ईसापूर्व इटली में संस्कृत भाषी लोगों का साम्राज्य था। वे लोग वैदिक धर्मी थे। वर्तमान विद्वान उस सभ्यता को Etruscan कहते हैं। उस समय के रोमन शासन के सम्राट का यह चित्र देखें। धोती भी पहनी



है तथा ग्रीवा पर तथा ललाट पर चन्दन तिलक लगाए हुए हैं। यह चित्र Smith द्वारा लिखित History of Rome पुस्तक के पृष्ठ ३०० से उद्धृत किया गया है। अय्यंगर के लिखे Long Missing Links पुस्तक के पृष्ठ १८५ पर भी वह चित्र देखा जा सकता है।

बाईं ओर प्राचीन भारत की एक गणेश मूर्ति तो दाईं ओर प्राचीन रोम की एक गणेश मूर्ति चित्र में दिखाई गई हैं। दोनों में समानता है।



प्राचीन ग्रीस में जिसे Ganus (जेनस) कहा जाता था, वे गणेश ही थे। उसे 'दो-मुख वाले भगवान' इस कारण कहा जाता था क्योंकि नगर या गृह के प्रवेश द्वार के माथे के ताक में पीठ से पीठ लगाए दो गणेश मूर्तियाँ बैठा दी जाती थीं। उनमें से एक की मंगल दृष्टि बाहर के व्यवहारों पर होती थी तो दूसरे की अन्दरूनी व्यवहारों पर होती थी।

गणेश के पिता शिवजी की प्रतिमाएँ तथा शिवलिंग भी इटली मे विपुल मात्रा में स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं।

इटली के भगवान गणेश ने किसी राक्षस को शासन करने हेतु दाहिना दाँत उखाड़कर उसे बायें हाथ में शस्त्र जैसे लिया था, ऐसी एक पौराणिक कथा है।

इटली के Bologna नगर में एक चौराहे के फव्वारे पर खड़ी यह विशाल शिव मूर्ति देखें (पृष्ठ १४१)। गले से दो सर्प लिपटे हैं। दाएँ-बाएँ कन्धों पर दो फन फैले दीखते हैं, दाहिने हाथ में लम्बा त्रिशूल दण्ड भी है। इटली को ईसाई बने १६७५ वर्ष पूरे हो जाने पर भी वे



लोग बड़ी श्रद्धा से शंकर भगवान की मूर्तियाँ स्थान-स्थान पर खड़ी करते रहते हैं। दीर्घकाल तक रही वैदिक परम्परा का प्रभाव इटली के लोगों पर अभी भी गहरा है। इतालवी लोगों के नामों तथा गिरिजाघरों के नामों में शिवजी की स्मृति अभी तक किस प्रकार गुँथी रहती है ? उसके उदाहरण हमने इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर दिए हैं।

फ्रांस, स्पेन तथा पुर्तगाल की वैदिक परम्परा

यद्यपि वर्तमान समय में फ्रांस, स्पेन और पुर्तगाल तीन अलग-अलग देश हैं तथापि ईसापूर्व काल में, विशेषतया महाभारतीय युद्ध से पूर्व, वे एक ही विश्वव्यापी वैदिक सभ्यता के भाग थे।

फ्री, फ्रांस, फ्रंक, फ्रेंच, फ्रंचाइस् आदि (Free, France, Franc, French, Franchise) जो आधुनिक यूरोपीय शब्द हैं, वे संस्कृत 'प्र' धातु के विभिन्न रूप हैं। आधुनिक उच्चारण में 'प्र' का 'फ्र' हो गया है जैसे 'पितर्' का 'फादर' उच्चारण होने लगा। यूरोपीय भाषाओं में Proceed, Protest आदि शब्दों में संस्कृत का 'प्र' उपसर्ग अन्तर्भूत है।

'प्र' का अर्थ 'झुकाव' ऐसा भी होता है। जैसे विद्या, अध्यात्म, परमात्मा, परब्रह्म आदि के प्रति जिनका 'झुकाव' होता था उन्हें 'प्रवर' यानि 'श्रेष्ठ ऋषि' कहा जाता था। इसी कारण ईसाई साधु उर्फ ऋषियों को भी Friar (फ्रायर) कहा जाता है। वास्तव में वह प्रवर शब्द का ही अपभ्रंश है।

श्याम आदि देशों में बौद्ध भिक्षु, साधु, संन्यासी आदि को भी 'फ्रा शुद्धचित्त' या 'फ्रा बुद्धशिष्य' इस प्रकार निजी नाम के आरम्भ में 'फ्रा' लगाया जाता है। इसका अर्थ वे इस संसार के आशा, आकांक्षा, बंधन, इच्छा, कामना आदि से पूर्णतया मुक्त केवल परमात्मा, परब्रह्म में ध्यान लगाए हुए व्यक्ति से लगाते हैं। इसी अर्थ से आंग्लभाषा में Free, Freedom आदि शब्द बने हैं। उनमें जो अन्त में 'अस' अक्षर लगते हैं वे अनेक वचन के रूप में, जैसे 'विद्वांस:' या सम्मानरूपक लगाए जाते हैं। अत: France का संस्कृत अर्थ है स्वतन्त्र प्रवृत्ति या स्वतन्त्र धारणा के लोगों का देश। और फ्रेंच लोग भी ठेठ वही अर्थ मानते हैं। अत: ऊपर उद्धृत सारे यूरोपीय शब्द संस्कृत-मूलक हैं।

फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल आदि प्रदेशों में सारे समाज पर द्रविड़ वर्ग का नियंत्रण था। समाज के मार्गदर्शक, अधीक्षक, नियन्त्रक सारे Druid उर्फ द्रविड़ कहलाते थे। उनके अगवाहे उस प्रदेश में 'गालव' मुनि होने के कारण उस शब्द से 'व' के उच्चारण का लोप होकर यूरोपीय लोगों की बोलचाल में वह प्रदेश केवल 'गाल' कहलाने लगा। उस प्रदेश के सारे गुरुकुल गालब मुनि के अधीन होते थे। पोर्तुगाल शब्द में वही गाल शब्द है।

पोर्ट का अर्थ है सागर द्वार उर्फ प्रवेश स्थान। इसी से Portal (यानि द्वार), पोर्च (Porch=पोर्च=प्राचि) आदि शब्द बने हैं। गाल प्रदेश के सागर तट का प्रदेश होने से उसे पुर्तगाल नाम पड़ा।

स्पेन शब्द 'स्पंदन' अर्थ से जुड़ा लगता है। इस देश में एशियाई, अरब, हब्शी और यूरोपीय गोरे लोगों का आना-जाना रहता था। अतः उस अन्तर्राष्ट्रीय गमनागमन के कारण उस प्रदेश का Spain नाम पड़ना सम्भव है। यूरोपीय भाषाओं में Spin, Span, Spindle आदि सब उसी प्रकार के शब्द हैं।

स्पेन के सागरतट पर Cadiz (कैडीज) नगर है। इसके समीप एक लम्बा, सुकड़ा भू-खण्ड सागर में दूर तक फैला दीखता है। इसी को आंग्ल भाषा में Promontory कहते हैं। स्पेन की परम्परा में वह लम्बा सुकड़ा भू-खण्ड 'पवित्र भूमि' (Sacred Promontary) कहलाता है। इसका कारण ग्रीक इतिहासकार Herodotus (हरिदूत्तस्) ने लिखा है कि उस भू-खण्ड में विशाल आकार के कृष्ण मन्दिर होते थे। वैसा ही एक विशाल कृष्ण मन्दिर सदियों तक दूर से खलासी लोगों को स्पेन के किनारे का पहचान स्तम्भ हुआ करता था। वृन्दावन में बने आधुनिक काल के कृष्ण मन्दिरों के अग्रभाग में वैसे ही सशक्त और ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ बने हुए हैं। अतः वैसे स्तम्भ बनाना वैदिक स्थापत्य प्रथा ही थी। यह जानने के पश्चात् ग्रीस और रोम की प्राचीन इमारतों का अध्ययन करें। उनके अग्रभाग में वैसे ही स्तम्भ होते हैं। अतः वैदिक स्थापत्य ही विश्व के स्थापत्य का स्रोत है।

यूरोपीय विद्वानों का पक्षपात तथा हेराफेरी

सामान्य धारणा यह है कि यूरोपीय कृस्ती विद्वान बड़े निष्पक्ष तथा प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होने वाले प्रत्येक निष्कर्ष को मानने वाले होते हैं। किन्तु इतिहास क्षेत्र का मेरा अनुभव इससे पूर्णतया विपरीत है। मैंने यह देखा है कि मुसलमान तथा कृषि विद्वान निर्जी पंथ (यानि इस्लाम तथा ईसाई प्रणाली) से अपने आपको इतना जकड़ लेते हैं कि उस पन्थ का बड़प्पन सिद्ध करने के लिए वे ऐतिहासिक सत्य की बलि चढ़ा देते हैं। उस हेतु वे यह बताने का प्रयास करते हैं कि मोहम्मद या कृस्त के पूर्व का इतिहास उथल-पुथल, अशान्ति, दंगा-फसाद का होने के कारण नगण्य है। वे यह भी दर्शाने के प्रयास में लगे रहते हैं कि विश्व की सारी विद्या, कला, सुव्यवस्था आदि का स्रोत इस्लाम या ईसाई पंथ हैं। ऐसे नीच उद्देशों से प्रेरित होकर सत्य बातों को छिपाना और मनगढ़न्त बातों को प्रस्तुत करना यह अनेक यूरोपीय और इस्लामिक इतिहासकारों का प्रयास रहा है। फ्रांस देश के इतिहास की बाबत भी मुझे वही अनुभव हुआ। जिन चन्द फ्रेंच व्यक्तियों से मेरा सम्पर्क हुआ वे इस बात का विचार या स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि ईसाई पन्थ की स्थापना से पूर्व उनका कोई और रहन-सहन या अन्य आध्यात्मिक विचारधारा रही होगी। ईसाई धर्म ही उनका सर्वस्व है। अतः ईसापूर्व फ्रांस का वे विचार ही नहीं करना चाहते। वही हाल अरब आदि अन्य मुसलमान बने लोगों का है। वे निजी संकुचित पंथिक निष्ठा से इतने जकड़े हुए हैं कि उस बन्दी अवस्था में वे निजी पंथ की स्थापना के पीछे का इतिहास मिटाना या दूषित करना चाहते हैं और आगे का इतिहास निजी पंथ को श्रेष्ठ सिद्ध करने हेतु विकृत करना चाहते हैं।

फ्रांस के इतिहास की बाबत मुझे उनकी उस पक्षपाती तथा हेरा-फेरी पूर्ण कार्यशैली का कुछ अनुभव हुआ। मुझे जब मेरे संशोधन से ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईसापूर्व काल में फ्रांस में वैदिक जीवन-प्रणाली रही होगी तो मैंने अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय से सम्पर्क किया। उस

विद्यालय में फ्रांस की सभ्यता का अध्ययन विभाग है। उसके एक अध्यापक Stanley Hoffman थे। मैंने उनसे पत्र द्वारा पूछा कि "ईसापूर्व फ्रांस देश की सभ्यता वैदिक थी ऐसा मेरा अनुमान है। तो क्या उनके विभाग का निष्कर्ष भी वही है या कुछ और?" इस पर उनका १७ फरवरी, १९८२ का छोटा परन्तु निर्णायक उत्तर यह आया "आपके पत्र के लिए धन्यवाद! दुर्भाग्यवश आप द्वारा निर्देशित विषय में मेरा कुछ सहाय्य नहीं हो सकता, क्योंकि ईसापूर्व फ्रांस की जीवन-प्रणाली के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता।" तो यह है पाश्चात्य शिक्षण-प्रणाली की अवस्था। उनके लिए क्रुस्त का जीवनकाल एक दीवार-सी बनकर खड़ा है। उसके पीछे का इतिहास वे देखना ही नहीं चाहते। वे उसे नगण्य, निरर्थक और बेकार समझे बैठे हैं।

वैसे तो क्रुस्त उर्फ ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी था ही नहीं तथापि उसका जो जन्म वर्ष माना गया है उससे अब १९८९वाँ वर्ष चल रहा है। तो क्या १९८९ वर्ष के पूर्व फ्रांस प्रदेश के लोगों का जीवन नगण्य था? उस काल में फ्रांस देश में क्या कोई इतिहासयोग्य घटनाएँ होती ही नहीं थीं? विश्व की सारी अध्ययनयोग्य प्रगति मोहम्मद या क्रुस्त से ही आरम्भ हुई ऐसा समझना वर्तमान इतिहासज्ञों का एक बहुत बड़ा दोष है।

ईसापूर्व सप्तर्षियों द्वारा चलाई गई सभ्यता

महाभारतीय युद्ध के पश्चात भी जो भाग-दौड़, उथल-पुथल आदि मची उसमें भी सप्तर्षियों द्वारा चलाई वैदिक परम्परा टूटी-फूटी चलती रही। इसके प्रमाण काश्यपीय सागर, अत्रि का परिसर ऐत्रुस्कन, गालब प्रदेश 'गाल', पुलस्तिन् का विभाग (पैलस्टाईन) आदि नामों में बराबर पाए जाते हैं।

फ्रंझ क्यूमांट के ग्रन्थ के पृष्ठ २१-२२ पर लिखा है कि "गाल प्रदेश में द्रविड़ों की लम्बे-लम्बे मुखोद्गत (मन्त्र) काव्य (यानि वेदपाठ की) परम्परा लुप्त हो गई।" इसका अर्थ यह है कि ईसाई बने फ्रेंच लोगों ने न केवल प्राचीन वैदिक जीवन-प्रणाली समाप्त कर दी अपितु उसका

इतिहास भी मिटा दिया। मुसलमानों ने भी ठीक वैसा ही किया।

फ्रांस के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि फ्रेंच लोगों ने कई बार निजी बान्धवों पर ही बड़े पैमाने पर अत्याचार करने के दौर चलाए। जैसे लगभग १५०० वर्ष पूर्व जब लोगों को ईसाई बनाने की लहर चली तो अत्याचारों का खूब आतंक मचा। सबको छल-बल से ईसाई बनाकर पीछे उनका सारा इतिहास मिटा दिया गया। आगे चलकर जब ईसाई पन्थ में ही फूट पड़ी और कैथोलिक पंथियों के अनाचार, व्यभिचार, अत्याचार से तंग आकर कुछ लोग प्रोटेस्टेण्ट पन्थी बनने लगे, तब उन पर उन्हीं के मूल कैथोलिक पन्थी लोग इतनी क्रूरता से टूट पड़े कि प्रोटेस्टेण्ट बनने वालों को अपने प्राण बचाने के लिए घर-बार छोड़कर पड़ौसी जर्मन देश में शरण लेनी पड़ी।

मन्त्र आदि मुखोद्गत करने की जिस प्रणाली का फ्रंझ क्यूमांट ने उल्लेख किया है वह निःसंदेह वैदिक प्रणाली ही थी। क्योंकि वैदिक प्रणाली में ही सारे मन्त्र मुखोद्गत करने की परम्परा है। सारे गाल प्रदेश में वही प्रथा थी। फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा स्विट्ज़रलैंड यह चारों देश मिलाकर गाल प्रदेश कहलाता था।

नमः शिवाय

क्यूमांट के ग्रन्थ में फ्रांस में पाए गए एक संस्कृत शिलालेख का उल्लेख है तथापि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि फ्रांस के कुस्ती विद्वान ऐसे प्रमाणों के प्रति आँखें बन्द किए हुए हैं। फ्रांस में प्राचीन काल में शिव-पूजन की प्रथा थी। इसका उस शिलालेख द्वारा प्रमाण मिलता है। वह ठीक भी है। क्योंकि जब पड़ोस के इटली देश में इतने सारे शिवलिंग और शिव की प्रतिमाएँ मिलती हैं और इटली का वैटिकन पीठ एक बड़ा शिव प्रतिष्ठान था तो ईसापूर्व फ्रांस में भी वैसी ही जीवन-प्रणाली होनी चाहिए।

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ १६-१७ पर क्यूमांट ने लिखा है कि पेरिस नगर के "Lovre वस्तु संग्रहालय (museum) में Nama Sebasio जैसे कुछ प्राचीन पूजा-पद्धति के उल्लेख प्रदर्शित हैं। उन पर कई विद्वानों ने

लेख लिखे हैं तथापि किसी ने उनके अर्थ नहीं बतलाये । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि शिलालेखों सम्बन्धी लम्बे-चौड़े लेख लिखे जाते हैं किन्तु उनका अर्थ कोई भी दे नहीं पाता । वह कोई हड़प्पा-मोहनजोदड़ो वाली बात तो है नहीं कि उन शिलालेखों की लिपि या अर्थ दुर्बोध हो गया हो।

अब उसी Nama Sebasio का उदाहरण लें । कोई भी कह सकेगा कि वह 'नमः सदाशिव' यह संस्कृत वचन है जो बताता है कि ईसापूर्व समय में शिव की पूजा होती थी । 'नमः शिव ईश' भी उसका मूल रूप हो सकता है।

जिस मूर्ति के अधोभाग में वह शिलालेख है उसे स्थानीय विद्वान 'मित्र' (Mithras) की मूर्ति मानते हैं । हो सकता है कि अज्ञानवश वे विद्वान शिव प्रतिमा को ही सूर्य समझ बैठे हों ? या यह भी हो सकता है की महाभारतीय युद्ध के पश्चात् की टूटी-फूटी अवस्था में फ्रांस में सूर्य, शिव आदि वैदिक देवताओं के नाम, रूप, मन्त्र, स्तोत्र आदि का भेद मिटकर मूर्ति किसी और की और मन्त्र किसी और देवता के नाम, ऐसी खिचड़ी हो गई हो। ऐसी खिचड़ी से तो सूर्य तथा शिव दोनों ईसापूर्व फ्रांस के देव थे, इसका पता चलता है। वे दोनों वैदिक देवता ही हैं। और वैसे देखा जाए तो सूर्य क्या और शिव क्या ? "एको सत् विप्राः बहुधा वदन्ति" यह वचन प्रसिद्ध हैं ही। भगवान तो एक ही हैं चाहे उसे शिव कहो या सूर्य। इसी कारण शिव, विष्णु, सूर्य आदि के सहस्र नाम भिन्न-भिन्न देवताओं के लगते हैं।

फ्रांस के संस्कृत नामों के नगर

यूरोप के लगभग सारे ही नगर, सागर, नदियों आदि के नाम संस्कृत में हैं अर्थात् फ्रांस देश के नगरों के नाम भी संस्कृत में हैं तथापि वह ज्ञान पूर्णतया लुप्त-सा हो गया है। यदि इस नए सूत्र से दुबारा फ्रांस के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो अतीत के लुप्त इतिहास के कई नये तथ्य सामने आएँगे।

केन्स नगर (Canes)

कॅंस या (कॅंस) नाम का एक नगर फ्रांस में है। जुएबाजी के लिए

वह संसार प्रसिद्ध है। वहाँ एक बहुत बड़ा जुए का सरकारी केन्द्र है। जहाँ देश-विदेश के धनिक प्रतिदिन दिन भर या दीर्घकाल तक एक घूमते चक्र के लाल काले आँकड़ों पर पैसा लगाते रहते हैं।

यूरोपीय भाषाओं में 'C' अक्षर के लिए (स-श-ष या 'क') ऐसे चार उच्चारण रूढ़ हैं। अत: Cannes शब्द में यदि 'C' का उच्चार 'श' किया जाए तो वह 'शनिस्' होगा। वैदिक प्रणाली में 'शनि' ही जुए आदि दुर्व्यवहारों का द्योतक है। अत: जुए का अड्डा ही जिस नगर का मुख्य आकर्षण है उसे शनि नाम दिया जाना फ्रांस की प्राचीन वैदिक-प्रणाली का कितना बड़ा प्रमाण है ?

प्राचीनकाल से शनिमन्दिर के इर्द-गिर्द ही वह नगर बसा था इसी कारण उस नगर का नाम शनि पड़ा। उस प्राचीन केन्द्रीय नगरी में शनिमन्दिर कहाँ था ? इसका पता लगाना कोई कठिन बात नहीं है। इस संशोधन का सामान्य नियम यह है कि जिस नगर में प्राचीनतम और महानतम चर्च हो, वही वहाँ का प्राचीनतम वैदिक देवस्थान था। अत: केन्स् नगर में भी जो प्राचीनतम तथा बड़े-से-बड़ा गिरिजाघर हो वही प्राचीन नगरदेव शनि का मन्दिर था। हो सकता है कि धर्मराज के साथ शकुनि ने वहीं द्यूत खेला हो।

मार्शलीज (Marseillies)

Streabo नाम के प्राचीन ग्रीक लेखक ने अपने भूगोल के ग्रन्थ के खण्ड १ के पृष्ठ २६८ पर लिखा है, "फ्रांस का Marseilles नगर एक कोट से घिरा हुआ था। नगर के मध्य मे Delphian Apollo (ग्रीस के डेल्फी नगर का सूर्य) का मन्दिर था। वैदिक परिभाषा में सूर्य मन्दिर को 'मरिची+आलयस्' यानि 'मरिचालयस्' कहते हैं। अत: वर्तमान Marseilles स्पष्टतया मरीचालयस् ऐसा संस्कृत, वैदिक नाम ही है। फिर भी उसके उस वैदिक संस्कृत स्रोत को पहचानने वाला मुझे आज तक एक भी विद्वान नहीं मिला।

वर्सेलीज (Verseilles)

वरसेलस् नाम का एक अन्य प्रसिद्ध नगर फ्रांस में है। वह 'वर-ईशालयस्' ऐसा संस्कृत नाम है। वर-ईश यह विष्णु का नाम लगता है। अतः लगता है की वहाँ शेषशायी भगवान विष्णु का मन्दिर रहा हो। उस नगर का प्राचीनतम और महत्तम गिरिजाघर ही विष्णु मन्दिर होगा। यह सारे नाम उस समय के हैं जब फ्रांस के राजा और रानी को राया (Roi) और राज्ञी (Rene) कहा जाता था।

लेमन्स (Le Mans)

'ले मान्स्' नाम के नगर का नाम 'मनुस्' (यानि मनु महाराज से) पड़ा है। मानव जाति के प्रजनेता और धर्मप्रणेता की स्मृति में वह नगर बसाया गया। 'ल' अक्षर तो केवल एक अव्यय के रूप में उस नाम से जुड़ा है।

सेबिल (Sable)

राजधानी पेरिस के पश्चिम में रेलमार्ग पर Le Mans नगर पहले आता है और तत्पश्चात् Sable नगर पड़ता है। उसका वर्तमान उच्चार 'साब् ले' है जो शिवालय का अपभ्रंश है। शिवालय शब्द बदलते-बदलते अब साब्ले कहा जाने लगा है।

मेरे एक मित्र डॉ० वि० वि० पेंडसे जब साब्ले गए तो उन्हें वहाँ का प्राचीनतम विख्यात गिरिजाघर बताया गया। 'मुख्य इमारत के चारों कोनों पर चार अन्य छोटी इमारतें हैं। उनमें से दाहिने कोने वाली इमारत उसकी महान प्राचीन पवित्रता के कारण बन्द ही रखी जाती है'। ऐसा स्थानिक स्थल दर्शक (guide) ने कहा। उससे कुछ कुतुहल जागृत होने के कारण पेंडसे जी ने काँच की खिड़कियों में से अन्दर झाँककर देखा तो उन्हें अन्दर शिवलिंग के आकार के गढ्ढे दिखलाई दिए। इससे उन्हें मेरे सिद्धान्तों का प्रमाण मिला कि प्रत्येक नगर का प्रत्येक ऐतिहासिक गिरिजाघर उस नगर का वैदिक देव मन्दिर था।

तुलजा भवानी का नगर "तुलूज्" (Toulouse)

स्ट्रैबो के ग्रन्थ के खण्ड १ में पृष्ठ २८१ पर लिखा है कि फ्रांस के

'टुलूज' (Toulouse) नगर में एक बड़ा प्रख्यात देवालय था जिसकी देवमूर्ति के दर्शन करने आस-पास के प्रदेश के निवासी बड़ी संख्या में आया करते थे।

यूरोपीय लोगों में प्रत्येक व्यक्ति, नगर, सागर, नदी, स्थान आदि का विशिष्ट नाम क्यों पड़ा इस सम्बन्ध में विशेष जागृति नहीं दिखाई देती। यदि कोई मेरे जैसा अन्य व्यक्ति उन्हें उस नाम की व्युत्पत्ति बतलाने जाए तो उसकी खिल्ली उड़ाकर उस पर विश्वास नहीं किया जाता। यह प्रथा ठीक नहीं। या तो वे स्वयं उस नाम की व्युत्पत्ति अन्य विविध प्रमाणों से पुष्ट कर बतलाएँ और यदि उनके पास ऐसा कोई विवरण न हो तो वे मेरे कहे प्रमाणों पर विचार करें।

उस दृष्टि से मैं जिस प्रकार विविध फ्रेंच नगरों के नामों का स्पष्टीकरण वहाँ की ईसापूर्व वैदिक सभ्यता के सिद्धान्त के आधार पर दे रहा हूँ; वैसा आज तक किसी ने दिया, मेरे सुनने में नहीं आया है।

ईसापूर्व समय में जब विश्व भर में क्षत्रियों का शासन था तब उन की कुलदेवी तुलजा भवानी हुआ करती थीं। छत्रपति शिवाजी की कुलस्वामिनी तुलजापुर की तुलजा भवानी ही थीं। वह ऐतिहासिक तुलजापुर नगर शोलापुर से लगभग १५ मील की दूरी पर स्थित है। भारत के सौराष्ट्र प्रदेश में भी एक नगर का नाम तलाजा है। एक ज्योतिषीय राशि का नाम भी 'तुला' है। वही 'तुला' राशि दिल्ली के लाल किले में राजा अनंगपाल के सिंहासन महल में संगमरमरी जाली में दर्शाई गई है। वही तुला, यवन (ग्रीक) प्रदेश के ज्योतिषशास्त्र में एक देवी आँखों पर पट्टी बाँधे हुए हाथ में तराजू पकड़े दर्शायी जाती है। वह देवी माता जगदम्बा हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को किए कर्मों का फल समतोल कर देती रहती हैं।

इसी प्रकार फ्रांस के टुलूज नगर का नाम Toulouse वास्तव में संस्कृत 'तुलजा' का फ्रेंच उच्चार है। उस नगर में प्रमुख देवालय तुलजा भवानी का था।

कोट

विश्व भर के क्षत्रिय शासन में नगरों के रक्षणार्थ ऊँचे कोट होते

थे। इसी कारण विश्व के कई नाम और कई शब्द उस संस्कृत 'कोट' से व्युत्पन्न हैं। आंग्ल भूमि के अनेक नगरों के नामों में 'कोट' शब्द है। जैसे Kingscote, Heathcote, Charlcote, Northcote। उसी प्रकार भारत में भी स्यालकोट, लोइकोट, अमरकोट, मद्रकोट आदि नगर हैं। शरीर के रक्षणार्थ सबसे ऊपर पहने जाने वाले वस्त्र का भी कोट (Coat) नाम ही है। जैसे आंग्लभाषा में Raincoat, Overcoat, Waistcoat आदि नाम हैं उसी प्रकार फ्रेंच भाषा में भी वही शब्द हैं। किन्तु कहीं वह Chateau लिखकर 'शैटो' कहा जाता है तो कहीं Agincourt यानि अग्निकोट।

अर्क

संस्कृत में सूर्य का एक नाम है 'अर्क'। सूर्य मन्दिर जहाँ भी प्रमुख होते थे वहाँ नगर या मन्दिर के नाम से 'अर्क' शब्द जुड़ जाता था। जैसे भारत के उड़ीसा प्रान्त में कोणार्क मन्दिर है। ईजिप्त में भी एक कॉर्नक मंदिर का नाम प्राचीनकाल में विख्यात था। वह कोणार्क का ही अपभ्रंश है। उसी प्रकार फ्रांस के इतिहास से एक फ्रेंच युवती झांसी की रानी जैसी बड़ी वीर साबित हुई। Joan of Arc यानि 'अर्क नगर की जोन' नाम से वह फ्रांस के इतिहास में विख्यात है। वह जिस गाँव की बेटी थी उस गाँव का नाम 'अर्क' यानि 'सूर्य' था।

मुनि

वैदिक प्रणाली में समानसेवी साधुगण ऋषि मुनि कहलाते थे। यूरोपीय भाषाओं में Monk, Monastic और Monastery (मुनिस्थरी) सारे शब्द मुनि शब्द से ही सम्बन्धित हैं। मुनि लोगों के निवास स्थान के लिए 'मुनि-स्थरी' ऐसा आंग्ल शब्द है। उन शब्दों से पता चलता है कि प्राचीन यूरोप में वैदिक ऋषि-मुनियों का संचार था।

पेरिस

फ्रांस की राजधानी है Paris (पेरिस) तथापि उसका उच्चार स्थानिक फ्रेंच लोग केवल 'पारी' ही करते हैं, क्योंकि शब्द के अन्तिम व्यंजन का वे लोग उच्चार नहीं करते। वह नगर जिस नदी के किनारे है

उसे Seine (सीन) कहते हैं। वास्तव में वह नाम सिन्धु था। किन्तु 'ध' का उच्चारण न करने की प्रथा के कारण वह नाम 'सीन' ही रह गया।

रोमन साम्राज्य के समय पेरिस का नाम (Parisorium) पॅरिसोरियम् लिखा जाता था।

संस्कृत टूटने के हजारों वर्ष पश्चात बने रोमन् साम्राज्य की लैटिन भाषा भी संस्कृत का प्राकृत रूप ही थी। अत: मूल संस्कृत नाम परमेश्वरीयम् का रोमन अपभ्रंश पैरिसोरियम् हुआ। पैरिसोरियम का संक्षिप्त रूप पेरिस लिखा जाने लगा। उसी पेरिस का अधूरा उच्चार 'पारि' किया जाता है। तो कहाँ मूल संस्कृत नाम पॅरिसोरियम्। समय जैसे-जैसे जाता रहता है मूल शब्द के अनेक अपभ्रंश होते रहते हैं।

परमेश्वरी (जगदम्बा, दुर्गा, भवानी, चण्डी) का मन्दिर सिन्धु नदी पर बनाकर वहाँ जो राजधानी का नगर बसा वही संस्कृत में परमेश्वरीयम् कहा गया। फ्रांस के लोग ईसाई बनाए जाने के पश्चात् उसी प्रसिद्ध परमेश्वरी मन्दिर का नाम Notre Dame पड़ा। नोत्रदाम् का संस्कृत विश्लेषण होगा न:=हमारी, त्र=तारण करने वाली, Dame (दाम्)। यह जगदम्ब' शब्द का टूटा हिस्सा है। फ्रेंच भाषा में Notre-Dame शब्द का अर्थ 'हमारी देवी' है। संस्कृत में उसका अर्थ 'हमारी तारण करती माँ जगदम्बा' ऐसा होता है।

फ्रांस में केवल पेरिस में ही नहीं अपितु अनेक नगरों में नोत्रदाम मन्दिर हैं। इससे जान पड़ता है कि फ्रांस के सारे लोग देवी के भक्त थे और जगदम्बा भवानी ही उनकी प्रादेशिक देवी थीं।

सुरभानु

फ्रांस में एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय का नाम Sorbonne है जो संस्कृत 'सुरभानु' यानि 'देवों का प्रकाशदाता सूर्य' अर्थात् देवादित्य अर्थ के लिए शब्द है, अर्थात् दैवी ज्ञान का तेज प्रसारित करने वाला केन्द्र। इस दृष्टि से Sorbonne शब्द बड़ा ही अर्थपूर्ण है।

वैदिक यंत्र

'नोत्र दाम' नाम का प्राचीन वैदिक मन्दिर पेरिस में यद्यपि अब ईसाई देवी मन्दिर बना हुआ है तथापि उसकी विशाल इमारत पर, स्थान-स्थान पर चौकोण, षट्कोण, अष्टकोण आदि देवी-पूजन के यन्त्रों की आकृतियां अंकित हैं। इस महान् रंग-बिरंगे, चित्र-विचित्र विश्व के निर्माण में विधाता ने जो अनेक आकार प्रयोग किए हैं, वे यन्त्र उसके प्रतीक हैं। ईसाई प्रणाली में उनका कोई स्थान नहीं है।

फ्रेंच भाषा का संस्कृत स्रोत

ऊपर दिए विवरण से पाठकों को विदित हो गया होगा कि फ्रांस की जीवन-प्रणाली वैदिक स्रोत की है और फ्रेंच भाषा का उद्गम संस्कृत भाषा ही है। अतः फ्रेंच साहित्यिक, कवि, अध्यापक, प्राध्यापक, संशोधक, शब्दकोशकार, भाषाशास्त्रज्ञ, इतिहासकार आदि यदि पाणिनी के संस्कृत शब्दकोश को ही फ्रेंच भाषा का स्रोत ग्रन्थ समझकर उसका अध्ययन करें तो उनकी कई समस्याएं सुलझ जाएंगी।

फ्रेंच भाषा में 'S' का उच्चार 'झ' किया जाता है। अतः ईश+वर' (ईश्वर यानि श्रेष्ठ स्वामी) इस संस्कृत शब्द का उच्चार यूरोपीय देशों में 'ईझर', इस तरह का बना। रोमन सम्राटों को 'सीझर' (Caeser) पदवी 'ईश्वर' शब्द का ही अपभ्रंश है। जर्मनी में सम्राट् की वही उपाधि 'सीझर' के बजाय 'केसर' कहलाती है तथा रशियन सम्राट् ईझर के बजाय केवल 'झार' कहलाता था। उधर ईजिप्त उर्फ मिस्र की राजधानी काहिरा (कैरो उर्फ कौरव) में अल् अझर विश्वविद्यालय स्पष्टतया अल् ईश्वर विश्वविद्यालय ही है। विश्व भर में प्रयोग की जाने वाली वह उपाधि विश्व की वैदिक विरासत का बड़ा पुष्ट प्रमाण है।

यूरोपीय नाम कृष्टोफर (Christopher) वस्तुतः संस्कृत कृष्णा-पर यानि 'कृष्णभक्त' अर्थ का ही शब्द है।

फ्रेंच लोगों में कई कुलों का नाम Davidovita होता है जो 'देवी दैवत' इस प्रकार का संस्कृत शब्द है। जिस कुल की दैवत देवी हो वह

कुल Davi-dovita 'दवी दैवत' कहलाया। उस अर्थ में वह संस्कृत का बहुब्रीहि समास है।

कुछ फ्रेंच कुलों का नाम Aron होता है जो संस्कृत में 'अरुण' शब्द है।

Martin यह यूरोपीय पुरुषों का नाम 'मार्तण्ड' (यानि सूर्य) ऐसा संस्कृत शब्द है। अन्तिम व्यंजन अनुच्चारित छोड़ देने की फ्रेंच प्रथा के कारण मूल संस्कृत मार्तण्ड शब्द यूरोपीय उच्चारण में केवल 'मार्टिन' बनकर रह गया।

फ्रेंच भाषा में 'बालकों के समान' ऐसा कहना हो तो Comme de Garcons कहते हैं जो सम-तु-बालकानाम्' ऐसा मूल संस्कृत का विकृत उच्चार है। 'बालकनाम्' शब्द का अपभ्रंश 'गार्कान्' हुआ है। बीच में जो 'तु' अव्यय था उसी का आंग्लभाषा में रूप The लिखा जाता है और फ्रेंच भाषा में Des लिखा जाता है।

फ्रेंच भाषा में 'थोड़ा' या 'बहुत थोड़ा' कहना हो तो 'un pen' कहते हैं, जिसका उच्चार 'ऑ-प' किया जाता है। वह संस्कृत 'अल्प' शब्द ही है। उसमें से 'ल' का लोप हो गया है। फ्रेंच में est का उच्चार 'अस्त' किया जाता है। उसका अर्थ वही है जो संस्कृत में 'अस्ति' (है) का अर्थ है।

बारह राशियों के चिह्न

पेरिस के प्रमुख विशाल 'नोत्रदाम' देवी मंदिर की दीवारों पर बारह राशियां के सिह, वृश्चिक आदि चिह्न अंकित हैं। ईसाई परम्परा में फल ज्योतिष, पुनर्जन्म या कर्मसिद्धान्त आदि का कोई स्थान नहीं है जबकि वैदिक संस्कृति में उन तीन बातों का बड़ा महत्त्व है। अत: उस गिरिजा-घर पर अभी भी उन चिह्नों का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि यद्यपि ऊपरी दृष्टि से प्राचीन वैदिक देवी को ईसाई देवी कहा गया है परन्तु उस देवी मन्दिर की वैदिक परम्पराएँ मिटी नहीं हैं।

वेद और देवी माहात्म्य

विशाल नोत्रदाम मन्दिर की दीवारों पर दो ग्रन्थों की आकृतियाँ

अंकित हैं। एक पुस्तक बन्द है किन्तु दूसरी खुली दर्शायी गई है। अतः उनमें से एक पुस्तक वेद है और दूसरी देवी माहात्म्य।

यक्ष-साधु आदि

यूरोप में कॅथेड्रल नाम के जो गिरजाघर होते हैं उनकी दीवारें बाहर से कई बार नीचे से ऊपर तक पशु, पक्षी, राक्षस, मानव, साधु, सन्यासी, आदि की प्रतिमाओं से भरी सजी होती हैं। दक्षिण भारत और उत्तरी भारत के खजुराहो, दिलवाड़ा आदि कई मन्दिरों की बाहरी दीवारें इसी प्रकार तरह-तरह की प्रतिमाओं से सजी होती हैं। वैदिक स्थापत्य ही विश्व के स्थापत्य का स्रोत है। इसका विविध प्रतिमाओं से मन्दिर की बाहरी दीवारें सजाना एक बड़ा सशक्त प्रमाण है।

ईश्वर के चित्र-विचित्र संसार का उस जमघट के रूप में दिग्दर्शन किया जाता है। मन्दिर के गर्भस्थान के अँधेरे में एक छोटे से दीप के टिमटिमाते उजाले में बड़ी मुश्किल से दिखाई देने वाली छोटी-सी देव-मूर्ति और उसी के बाहर विशाल गगनचुम्बी दीवारों पर पशु, पक्षी, प्राणी, पौधे, सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई देने वाली आविष्कृत भौतिक सृष्टि।

ऐसे मन्दिर की रचना में एक गहन और महत्त्वपूर्ण वैदिक सिद्धान्त यह विदित कराता है कि इस सारी विशाल, बहुरूपा सृष्टि की धात्री ईश्वरीय शक्ति उस संसार के मध्य में गुप्त, सूक्ष्म तथा अज्ञात रूप में निवास करती है। चित्र-विचित्र सृष्टि उसी ईश्वरीय माया का आविष्कार है।

पाद-प्रक्षालन विधि

वैदिक परम्परा में गुरुजनों के तथा बटु-ब्रह्मचारी जैसे आदरणीय व्यक्तियों के सत्कार रूप पैर धोने की विधि होती है। ईसाई परम्परा में तो सूट, मौजे, बूट पहने व्यक्ति हर धार्मिक, सामाजिक समारम्भ में सम्मिलित होते हैं तथापि पेरिस के नोत्रदाम गिरिजाघर में अभी भी धार्मिक विधियों में गुरुजनों के बूट, मौजे उतारकर उनके पैर धोए जाते हैं। यह निश्चित ही उस ईसापूर्व समय की विधि है जब नोत्रदाम

माँ जगदम्बा भवानी का मन्दिर था। ईसाई विद्वानों की, संशोधकों की तथा इतिहासकारों की यह बड़ी खामी रही है कि उन्होंने कभी ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान ही नहीं दिया।

स्वयं पोप महाशय, अपने वर्ष भर के धार्मिक संकल्पों में आदरणीय व्यक्तियों के तथा भगवानस्वरूप बालकों के इस प्रकार पैर धोने की विधि का पालन करते हैं।

कमल चिह्न

Lily उर्फ कमल यह दैवी वैदिक चिह्न फ्रांस के राजा के ध्वज पर अंकित रहता था।

अग्निकोर्ट

फ्रांस के इतिहास में Agincourt के युद्ध का उल्लेख है। कोर्ट शब्द मूलतः 'कोट' था। अतः अग्निकोर्ट यानी अग्निकोट एक यज्ञशाला थी। वैदिक प्रणाली में यज्ञों का बड़ा महत्त्व था। हर धार्मिक विधि में यज्ञ अवश्य होता था।

गणेश तथा ह्रीं

ग्रीस और रोम में गणेश पूजन होता था। इसका इतिहास में उल्लेख है। तो ईसापूर्व काल में वही ग्रीस और रोम वाली सभ्यता सारे यूरोप में थी।

Dorothea Chaplin द्वारा लिखित Matter, Myth and Spirit or Keltic and Hindu Links ग्रन्थ में पृष्ठ ३६ पर उल्लेख है कि "Ganesh" is depicted on a carving at Rheims in France with a rat above his head." यानि ह्रीम्स् नगर में गणेश की एक उत्कीर्ण प्रतिमा है जिसके सिर के ऊपर चूहा दिग्दर्शित है।

अब ह्रीम्स, यह नगर का नाम भी तो वैदिक ही है। वैदिक संस्कृति में ह्रां, ह्रीं परमात्मस्वरूप चिद्शक्ति के ही नाम हैं।

फ्रांस के देव विष्णु

भारत के संवत्कर्ता विक्रमादित्य के समकालीन यूरोप में रोमन

शासक जूलियस् सीझर थे। उनके संस्मरणों में उल्लेख है कि Gauls claimed to be descended from Dis Pater यानि गाल की जनता की धारणा थी कि वे देवस पितर यानि देवों के पितर (यानि इंद्र या विष्णु) के वंशज हैं। यह तो ठेठ वैदिक धारणा ही है। वैदिक परम्परा के अनुसार विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्मा से मनु और मनु से अन्य मानव हुए। गाल के लोगों की भी वही मान्यता थी। आधुनिक फ्रांस के लोग तो डार्विनवाद के अनुसार मर्कट द्वारा मानव की उत्पत्ति मानते हैं।

पुरोहित

पुरोहित को प्राचीन फ्रेंच भाषा में Prestre कहते थे। प्रॅस्त्र (Prestre) से ही आंग्लशब्द Priest बना है। प्रॅस्त्र यह संस्कृत पुरोहित शब्द का ही अपभ्रंश है।

द्वैतांत (De'tante)

दो व्यक्ति या दो राष्ट्रों के मतभेद समाप्त होकर जब मेल-मिलाप की सन्धि होती है तो उसे फ्रेंच भाषा में देतान्त (Detante) कहते हैं। वह 'द्वैत-अंत' इस संस्कृत शब्द का ही थोड़ा विकृत रूप है।

राया और राज्ञी

फ्रेंच भाषा में Roi यह राय उर्फ 'रुआ' शब्द 'राजा' का द्योतक है। राज्ञी यह शब्द फ्रेंच भाषा में Rene (रॅन्) लिखा जाता है। रायपुर, रायसेन, रायरत्न, रायबहादुर, रायगढ़, शिवराया आदि शब्दों से देखा जा सकता है कि वैदिक प्रणाली में राया यह राजा का समानार्थी शब्द है। अत: फ्रांस के लोगों का 'रुआ' (Roi) वही राया शब्द है। इसी प्रकार Rena यह संस्कृत राज्ञी का हिन्दी 'रानि' जैसा फ्रेंच भाषा में 'रॅन' बोला जाता है।

फ्रांस में कृष्ण भगवान

डोरोथी चॅपलीन के ग्रन्थ में पृष्ठ २४ पर उल्लेख है कि फ्रांस के Autun नाम के नगर में एक केल्टिक देव एक भुजंग का दमन करता दिखाया गया है। भगवान कृष्ण का कलियादमन का चित्र वैदिक प्रणाली

में बड़ा विख्यात है। अतः Autun नगर में जिस स्थान पर वह शिलाचित्र पाया गया है वहाँ निश्चित ही भगवान कृष्ण या अन्य किसी वैदिक देवता का मन्दिर होना चाहिए।

पौराणिक कथाएँ

फ्रांस के ७५-७६ वर्ष के एक लेखक हैं Georges Dumozil। उन्होंने तीन खण्डों का एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है—Mythes et Epople। यह सारी पौराणिक कथाओं का ही संकलन है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में उन्होंने उन कथाओं को "भारत तथा यूरोप की पौराणिक कथाएँ" कहा है जबकि वे सारी-की-सारी वही पौराणिक कथाएँ हैं जो हम भारत में पढ़ते हैं। स्थान-स्थान पर उस ग्रन्थ में ययाति, पुरुरवा, धृष्टद्युम्न, पाण्डव, द्रौपदी, इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि का उल्लेख होता है और उनके वंशवृक्ष दिए हुए हैं।

शॅंपेन

आधुनिक ईसाई फ्रांस में शॅंपेन (Champagne) नाम के मद्य की बड़ी महत्ता है। भारत में जिस प्रकार किसी भी धार्मिक विधि, त्योहार, पर्व या कार्य के शुभारम्भ पर भगवान के नाम से पानी छलकता हुआ नारियल फोड़कर वह प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है, उसी प्रकार फ्रांस में किसी भी धार्मिक या सामाजिक महत्त्व के प्रसंग का शुभारम्भ शॅंपेन की सीलबन्द बोतल खोलकर किया जाता है। बाइबल में कहे अनुसार ईसा मसीह के रुधिर के रूप में मद्य तथा शरीर के रूप में रोटी भक्तगणों को प्रसाद बाँटने की प्रथा वैदिक नारियल से निकले पानी और गरी पर आधारित है। यूरोप में ईसापूर्व वैदिक परम्परा में मद्य वर्ज्य था। किन्तु ईसाई धर्म ने वैदिक प्रसाद के स्थान पर मद्य बाँटना आरम्भ कर दिया।

फिर भी शॅंपेन शब्द चॅंपन् यानि मॉलिश के अर्थ का वैदिक, संस्कृत परम्परा का है। आसव या अरिष्ट के रूप में यूरोप जैसे ठण्डे प्रदेश में शरीर की मॉलिश करने में जिस मद्यार्क का प्रयोग करना पड़ता था उसका चॅंपन उर्फ शॅंपेन् नाम पड़ा। आगे चलकर नशाप्रेमी लोगों ने उसे पीना प्रारम्भ कर दिया।

आंग्ल द्वीपों की प्राचीन भाषा फ्रेंच

आंग्ल भूमि में अंग्रेजी भाषा रूढ़ होने से पूर्व सर्वत्र फ्रेंच भाषा ही बोली जाती थी। फ्रेंच में बोलना, लिखना प्रतिष्ठा और विद्वत्ता का लक्षण समझा जाता था। कारण यह था कि यूरोपीय भाषाएँ सारी संस्कृत की प्राकृत रूप होने से उनमें आपस में बड़ी समानता थी। जैसे-जैसे अधिक समय बीतता गया और लोगों में स्थानीय अभिमान की भावना बढ़ती गई वैसे-वैसे सूक्ष्म भेदों को दुराग्रहवश बड़ा और कड़ा रूप देकर यूरोप के विविध प्रान्त तथा प्रान्तिक भाषाएँ एक-दूसरे से बिछुड़ती गईं। "The Celtic Druids" नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १२ पर उसके लेखक Godfrey Higgins ने ऊपर कहे निष्कर्ष की पुष्टि की है। Higgins ने रोमन सेनानी Julius Caeser का हवाला प्रस्तुत किया है। गाल प्रदेश की जनता की बाबत सीझर के संस्मरणों में उल्लेख है कि गाल प्रदेश के लोग एक समान भाषा बोला करते थे। क्वचित् कोई अल्पस्वल्प भेद उनकी बोलचाल में हो तो हो। गाल लोग ब्रिटेन में द्रविड़ों के गुरुकुलों में कड़े प्रशिक्षण के लिए जाया करते थे। वहाँ के गुरुकुलों की शिक्षा बड़ी अच्छी होती थी।

टॅसिटस् नाम के प्राचीन रोमन इतिहासकार ने लिखा है कि "गाल और आंग्ल भूमि की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं था।" इसी कारण ब्रिटिश लोगों का स्थानीय अभिमान बढ़ने से पूर्व वहाँ के लोग सारे फ्रेंच भाषा ही बोला करते। उनकी भाषा का नाम अब भले ही 'आंग्ल' या 'अंग्रेजी' पड़ गया है। इससे पूर्व उनकी भाषा फ्रेंच ही थी। उनके द्वीप का अंगुलस्थान यह संस्कृत नाम था। इस अंगुल देश ने जब शनैः शनैः फ्रेंच हटाकर निजी भाषा अलग कर दी तब अंगुली देश की भाषा के नाते वह भाषा 'आंग्ल' कहलाई।

मनुस्मृति

फ्रांस की दक्षिणी सीमा से सटा स्पेन देश भी उसी वैदिक सभ्यता का अंग था। Higgins की पुस्तक में पृष्ठ १२ पर लिखा है, "Turdetani, the oldest inhabitants of Spain, were Celts, and we are

told dy Strabo that they had laws written in verse a thousand years before his time" यानि स्पेन के प्राचीनतम निवासी तुर्देतानी लोग थे। स्ट्रैबो ने लिखा है कि उसके समय से एक सहस्र वर्ष पूर्व तुर्देतानी लोगों का एक काव्यबद्ध धर्मशास्त्र था। इससे स्पष्ट है कि वह मनुस्मृति ही थी। क्योंकि स्ट्रैबो जैसे प्राचीन यावनी ग्रन्थकार से भी एक सहस्र वर्ष पूर्व समाज का नियन्त्रण करने वाला काव्यबद्ध धर्मशास्त्र मनुस्मृति के सिवाय कोई और हो ही नहीं सकता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सारे गाल लोगों में और सारे यूरोप खण्ड में मनुस्मृति ही लागू थी। क्योंकि जहाँ-जहाँ वैदिक संस्कृति थी वहाँ मनुस्मृति लागू थी और जहाँ-जहाँ मनुस्मृति लागू थी वहाँ वैदिक सभ्यता थी।

यूरोपीय दस्तावेजों में ईसाई हेरा-फेरी

हमने इस ग्रन्थ में पाठकों को बार-बार इस बात के प्रति सावधान करना आवश्यक समझा है कि ईसाई और इस्लामिक पन्थप्रथाएँ छल-बल से लोगों पर थोपी जाने के कारण उन्हें बड़े पैमाने पर इतिहास भी नष्ट या विकृत करने की आवश्यकता पड़ी।

इस सम्बन्ध में Higgins ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १४ पर जो चेतावनी दी है उसे हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। हिगिन्स कहते हैं—"It is very probable that every manuscript of Coesar's (Memoirs) now existing has been copied by a christian priest" यानि "आज (रोमन् सेनानी) सीझर के संस्मरणों की जितनी भी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं वे सारी ईसाई पादरियों की उतारी हुई प्रतीत होती हैं।" यद्यपि सीझर स्वयं ईसाई नहीं था परन्तु उसके संस्मरणों में समकालीन गाल लोगों के धार्मिक रीति-रिवाजों का तिरस्कार-पूर्वक उल्लेख है। सीझर के समय में ईसाई धर्म की स्थापना नहीं हुई थी, उसके आचार-विचार वही थे जो गालप्रदेश के लोगों के थे। अतः सीझर ने संस्मरणों में जो समकालीन समाज पर टीका-टिप्पणी है, वह उन संस्मरणों की नकल करते समय ईसाई पादरियों ने घुसेड़ दी लगती है। एक उद्धरण देखें।

"Commentaries of Julius Coesar ग्रन्थ के पृष्ठ ७८ पर लिखा है "The whole nation of the Gauls is extremely addicted to superstition, wherein they make no scruple to sacrifice men, यानि "गाल प्रदेश के सारे लोग इतने अन्धश्रद्ध हैं कि नरबलि देते हुए भी वे कभी हिचकिचाते नहीं।"

रोम और गाल के लोगों के आचार-विचार एक जैसे होते हुए भी सीझर द्वारा ऐसी टीका अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती है। ईसाई पन्थ के पूर्व की प्रथाएँ हीन थीं ऐसा दर्शाने के हेतु ईसाई पादरियों द्वारा ऐतिहासिक दस्तावेजों की नई हस्तलिखित प्रतियाँ बनाते समय उनमें ऐसी साम्प्रदायिक हेरा-फेरी की बातें घुसेड़ देना स्वाभाविक था।

आगे उसी ग्रन्थ के पृष्ठ ६८ तथा ६६ पर उल्लेख है कि 'गाल लोगों के देवताओं में बुध प्रमुख है। उसकी कई मूर्तियाँ हैं। गाल लोग बुध को सारी कलाओं का निर्माता, प्रवास, यात्रा आदि सफल कराने वाला तथा व्यापार में लाभ कराने वाला मानते हैं। तत्पश्चात् सूर्य, मंगल, गुरु, लक्ष्मी आदि का महत्त्व है।"

ऊपर उल्लिखित सारे देवताओं की वैदिक मान्यता प्रसिद्ध है। तथापि बुध जिन व्यवहारों का कर्ता-धर्ता माना जाता है वह भी सारी वैदिक फलज्योतिष परम्परा की ही हैं।

सीझर के संस्मरणों की नई हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार करते समय नकल करने वालों ने बीच-बीच में ईसाई पन्थ प्रसार के पूर्व के लोग, नरबलि देते थे ऐसे चित्र भी जोड़ दिए। ऐसा करने में पादरियों का उद्देश्य यह था कि लोग उस प्राचीन धर्म से घृणा कर ईसाई बनने को तैयार हों। उस समय जब मुद्रण यन्त्रों का शोध नहीं हुआ था तब पीढ़ी-दर-पीढ़ी सारे ग्रन्थ, पत्र-व्यवहार तथा अन्य दस्तावेजों की नकल हस्ताक्षर में करनी पड़ती थी। वह करते समय उसमें स्वार्थीजन मनचाही हेरा-फेरी कर, मूल प्राचीन कागजों को नष्ट करते रहे। इस बात पर यूरोपीय इतिहास के अध्ययन में ध्यान नहीं दिया गया है क्योंकि जब से सारे यूरोपीय लोग ईसाई बने हैं, ईसाई पादरियों की उस हेरा-फेरी का भाण्डा फोड़ने का साहस कौन करता?

फ्रांस की वेदशाला

फ्रांस के एक शहर का नाम है Calais। उसका वर्तमान उच्चार यद्यपि 'कॅले' है परन्तु मूल उच्चार 'शाले' था। फ्रांस में अभी भी विद्यालय के लिए ecole (एकोल) शब्द लिखा जाता है। उसमें भी 'C' का उच्चार यदि 'श' किया जाए तो वह 'इशाल' उर्फ 'शाल' शब्द ही दिखाई देगा।

Calais इस सागर तटवर्ती नगर का नाम 'शाले' उर्फ शाला इसलिए पड़ा कि वहाँ एक प्राचीन वैदिक विद्यालय था। जैसे भारत में सागरतट स्थित मद्रास का नाम भी वहाँ की प्राचीन वेदशाला से ही पड़ा। वह विद्यालय इतना प्रसिद्ध था कि अरबी खलासी जाते-आते उस स्थान को मदरसा कहने लगे। इसी कारण उस नगर का नाम 'मद्रास' पड़ा।

रानिकोट

Holy Blood and the Holy Grail नाम का एक ग्रन्थ तीन व्यक्तियों ने मिलकर लिखा है। वे हैं Michal Baigent, Richard Leigh तथा Henry Lincoln। उनके ग्रन्थ में Rennes-le-chateau (यानि रानिकोट नगर) में Priory of Sion (यानि शिव-प्रवर) पन्थ था, ऐसा लिखा है। स्पेन की उत्तरी सीमा पर पिरनीज (Pyrennese) पहाड़ियाँ हैं। उनके पार फ्रांस देश है। उन पिरनीज पहाड़ियों में रानिकोट नगर बसा हुआ है। इस प्रकार फ्रांस के प्राचीन नगर और वहाँ की धार्मिक, सामाजिक परम्परा—सारे वैदिक-संस्कृत स्रोत के हैं।

स्पेन

स्पेन का वैदिक अतीत वर्तमान पीढ़ी को पूर्णतया अज्ञात है। किन्तु यह सोचने की बात है कि जब यूरोप के अन्य देशों में वैदिक सभ्यता थी तो स्पेन में भी वही सभ्यता होनी चाहिए। स्पेन की वैदिक परम्परा अज्ञात रह जाने का एक प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक इतिहास में स्पेन में तीन बार भीषण आतंक मचा।

प्रथम बार चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी में सबको छल-बल से

ईसाई बनाने की लहर दौड़ पड़ी। उसमें वहाँ की वैदिक संस्कृति बड़ी मात्रा में नष्ट हो गई। तत्पश्चात सातवीं शताब्दी से इस्लामी-अरबी आक्रमण के लपेट में आए स्पेन से वैदिक संस्कृति के प्रमाण और भी नष्ट हुए। लगभग ६०० वर्ष के इस्लामी शासन के पश्चात पुन: ईसाईयों का कब्जा होकर इस्लाम का स्पेन से पूर्णतया उच्चारण हुआ। इस प्रकार उस त्रिवार हुए विधर्मियों की उथल-पुथल में स्पेन के प्राचीन वैदिक संस्कृति के अवशेष यूरोप के अन्य प्रदेशों से कहीं अधिक मात्रा में नष्ट हो गए। अत: स्पेन की लुप्त वैदिक सभ्यता का अध्ययन अधिक बारीकी से होना आवश्यक है।

यहाँ हम यह कहना चाहेंगे कि इस्लाम का नारा लगाते हुए अरबों ने दुनिया भर में जो अत्याचारी आक्रमण किया उसे जड़ से उखाड़कर नष्ट करने का जो साहसी प्रदर्शन स्पेन के वीरों ने, मुत्सद्दियोंनो तथा शासकों ने किया, वह सर्वथा समर्थनीय और अनुकरणीय है। इस प्रकार अधर्म का अभ्युत्थान समूल नष्ट करना ही ईश्वरीय प्रेरणा का सूचक तथा निदर्शक है।

स्पेन की तथाकथित इस्लामी इमारतें वैदिक सम्पत्ति हैं

सन् १९६५ में प्रकाशित 'ताजमहल हिन्दू राजमहल है' शीर्षक के मेरे ग्रन्थ में मैंने यह सूचित किया था कि भारत में मुसलमानों की समझी जाने वाली इमारतें जिस प्रकार इस्लामपूर्व हिन्दुओं की सिद्ध हुईं, उसी प्रकार स्पेन की ऐतिहासिक इमारतें भी निराधार ही इस्लामी मानी गई होंगी। यदि उनका गहराई से तथा ध्यानपूर्वक निरीक्षण तथा अध्ययन किया जाए तो वे इस्लामपूर्व साबित होंगी क्योंकि दूसरों की हड़प की इमारतें तथा नगर, कुछ पीढ़ियों के पश्चात इस्लाम द्वारा निर्मित ही कहना सुल्तान-बादशाह-सरदार-दरबारी आदि के खुशामदी चाटुकार लेखकों के बाएं हाथ का खेल रहा है।

ब्रिटिश ज्ञानकोश (Encyclopaedia Britannica) में स्पेन के कार्डोव्हा उर्फ कार्डोबा नगर की एक विशाल ऐतिहासिक इमारत का चित्र देकर उसे इस्लामी कारीगरी की बेजोड़ मस्जिद का नमूना

कहा गया है। उसी प्रकार अलहम्ब्रा (Alhambra) नाम के एक सुन्दर प्राचीन ऐतिहासिक राजमहल का श्रेय भी यूरोपीय इतिहासकारों ने अरबी मुसलमानों को दे रखा है। बगैर कोई प्रमाण देखे केवल कही-सुनी बातों पर विश्वास कर ऐतिहासिक इमारतों तथा नगरों को इस्लामी कह देने की एक बड़ी गलती विश्व के इतिहास में यूरोपीय विद्वानों की भूल के कारण गढ़ दी गयी है।

एक अमेरिकी अध्यापक का अनुभव

मेरी उसी चेतावनी के फलस्वरूप एक अमेरिकी अध्यापक Marvin H. Mills मुझसे पत्र-व्यवहार करने लगे। वे Pratt School of Architecture, Newyork में स्थापत्य विषय पढ़ाया करते थे। पाश्चात्यों की प्रथा के अनुसार वे छात्रों को स्थापत्यशास्त्र का इतिहास पढ़ाते समय "मुसलमान लोग बड़े प्रवीण स्थापति थे। उन्होंने जिन-जिन देशों को आक्रमण का शिकार बनाया उनमें मस्जिदें, कब्रें, किले, बाड़े, महल आदि की भरमार कर दी। आलीशान कब्रे बनाने में तो वे इतने पारंगत हो गए कि उन्होंने ताजमहल जैसा अप्रतिम भवन बनाया" आदि निराधार पाठ वे पढ़ाया करते थे।

ऐसा करते-करते सन् १९७२ के लगभग मेरी The Tajmahal is a Hindu Palace यह पुस्तक Mills के पढ़ने में आई। वह पढ़कर उन्हें बड़ा अचम्भा और धक्का-सा लगा। उन्होंने मुझसे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। वे भारत आए। उन्होंने मेरे साथ ताजमहल देखकर उसके हिन्दू निर्मिती की मेरे द्वारा दर्शायी बातों पर मनन किया। ताज-महल के टूटे द्वार के टुकड़े की Carbon-14 जाँच भी करवाई। इससे मेरे सिद्धान्त की सत्यता उन्हें जँच गई।

तब उन्होंने Columbia University के तत्वावधान में स्पेन की ऐतिहासिक इमारतों का संशोधन आरम्भ किया। इतिहास में उन इमारतों के निर्माण का प्रमाण ढूँढ़ने की बजाय वे Carbon-14, Thermoluminescence तथा Dondochronology ऐसी तीन भौतिक शास्त्रीय पद्धतियों से उन इमारतों के निर्माण काल का पता लगाना

चाहते थे। इसके लिए उन्हें कई बार अमेरिका से स्पेन जाना पड़ा। वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों की ईंटें, ईंटों का चूरा तथा लकड़ी आदि की जाँच करवाकर उससे उन इमारतों का निर्माणकाल निश्चित करने का क्रम उन्होंने आरम्भ किया। बाद में खर्चे आदि की सुविधा पर्याप्त न होने के कारण उन्होंने वह कार्य अधूरा ही छोड़ दिया तथापि दो-चार बार स्पेन में जाकर उन्होंने जो अध्ययन, निरीक्षण तथा संशोधन किया उसकी जानकारी देते हुए नवम्बर १५, १९८३ के पत्र से मुझे उन्होंने विदित कराया कि "यद्यपि मैं किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचा हूँ तथापि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है कि स्पेन की जिन महान ऐतिहासिक इमारतों का श्रेय मुसलमानों को दिया जा रहा है वे इमारतें इस्लामी आक्रमण के पूर्व की हैं। मुसलमानों का शासन स्पेन में ७११ ईसवी से आरम्भ हुआ। भारत की तरह मुसलमानों ने स्पेन की लूट मचाई। एक अधिक प्रगतिशील सभ्यता पर अधिकार जमा बैठे मुसलमानों को स्पेन में कई भव्य इमारतें दिखीं। अधिक कोई इमारतें बनाने का न तो उन्हें ज्ञान था, न कोई आवश्यकता थी। अतः मेरा अनुमान है की कार्डोबा नगर की तथाकथित विशाल मस्जिद, कार्डोबा नगर की सीमा पर बना प्रासाद परिसर, अलहम्ब्रा महल तथा Seville और अन्य नगरों में भी जो इमारतें मुसलमानों की कही जाती हैं वे इस्लाम पूर्व की सिद्ध होंगी। अतः भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन के समान ही स्पेन के इतिहास का पुनर्लेखन भी आवश्यक है।"

इसी सम्बन्ध में मिल्स ने Chicago नगर में सम्पन्न एक विद्वत् सम्मेलन में एक शोध प्रबन्ध नवम्बर ४, १९८३ को पढ़ा। Middle East Studies Association of North America का वह १७वाँ वार्षिक अधिवेशन था। उसमें उन्होंने कहा कि "भौतिकशास्त्रीय जाँचों से स्पेन देशान्तर्गत कार्डोबा नगर वाली विशाल (तथाकथित) मस्जिद और भारत के आगरा नगर में ताजमहल के पश्चिम में जो इमारत मस्जिद कहलाती है उन दोनों का रुख मक्का की दिशा में नहीं है। आगरा की उस तथाकथित इमारत का रुख ऐन पश्चिम दिशा की तरफ है जबकि वहाँ से मक्का १४ अंश और ५५ कला नैऋत्य की ओर

है। उस इमारत का रुख पूर्णतया पश्चिम को होना हिन्दू पद्धति है।"

ताजमहल के पिछवाड़े में यमुनातट पर उस इमारत के दो कोनों के समीप दो द्वार बने हुए हैं। उनमें से पूर्ववर्ती द्वार आधा टूटा-सा वहाँ बन्द है। धूप, वर्षा आदि खाकर उस द्वार की लकड़ी कुछ नरम-सी पड़ गई थी। उसको हाथ में पकड़कर हिलाने से एक टुकड़ा निकल आया। उसकी carbon-14 पद्धति की जाँच उन्होंने Brooklyn Clloege Radioearbon Laboratory में उसके प्रमुख (Director) Dr. Evan Williams द्वारा करवाई। फतेहपुर सीकरी से लिए एक लकड़ी के टोटे की भी उसी प्रकार जाँच कराई। निष्कर्ष यह निकला कि ताजमहल शाहजहाँ के शासन काल से सैकड़ों वर्ष प्राचीन है। उसी प्रकार फतहपुर सीकरी भी अकबर के शासनकाल के पूर्व की प्रतीत हुई। तब भी विश्व भर के इतिहास में अभी भी आँखें मूँदकर सारे अध्यापक अनेक पीढ़ियों के छात्रों से यही रट लगवाते रहते हैं कि शाहजहाँ ने ताजमहल का निर्माण करवाया और अकबर ने फतहपुर सीकरी का। अन्धेपन और दुराग्रह की यह परिसीमा है। किन्तु सरकारी छत्रछाया में बनी सेवादारी में कहीं बाधा न आए और मुसलमान कहीं नाराज न हो जाएँ ऐसी क्षुद्र, स्वार्थी और कायर भावना से भारत भर में सरासर झूठ और निराधार इतिहास ही पढ़ाया जा रहा है।

कार्डोबा वाली तथाकथित मस्जिद की बाबत मिल्स ने कहा कि वह इमारत मुसलमानों द्वारा निर्माण किए जाने का कोई सबूत नहीं है। उसका रुख भी मक्का की दिशा से ५० अंश हटा हुआ है।

ऐसे प्रमाणों से उस प्रबन्ध में मिल्स ने कहा कि कार्डोबा की वह इमारत जो मस्जिद कही जाती है कभी रोमन मन्दिर रहा हो और तत्पश्चात् उसी का प्रयोग ईसाई काल में गिरिजाघर के रूप में हुआ हो और इस्लामी कब्जे के पश्चात् उसी इमारत को मस्जिद कहते हों।

कहा यह जाता है कि मुसलमान उस इमारत को २५० वर्ष पूर्व की बताते रहे। किन्तु उसकी शैली प्रदीर्घ अर्से की खिचड़ी नहीं लगती। वह तो एक योजनाबद्ध सीमित काल के शैली की बनी है। उसके तीसरे हिस्से में जो लम्बे-लम्बे दालान हैं वे मस्जिद जैसे नहीं लगते। वह किले जैसा

कंगूरे वाला कोट और बुर्ज है, मस्जिद की बनावट ऐसी नहीं होनी चाहिए। कहा जाता है कि मस्जिद की एक मीनार अल्हाकम् प्रथम ने बनवाई। तो उसी मीनार का निर्माता कुछ वर्ष पश्चात् अब्दुलरहमान तृतीय भी कहा जाता है। वह कैसे? मीनार में चाँदी-सोने के फलों की तथा कमल-दलों की नक्काशी की गई है जो इस्लामी परम्परा से असंगत है। अन्दर के कई स्तम्भ और उनके शिखर Visegothic और रोमन शैली के क्यों हैं? इस्तम्बूल से केवल एक ही राज आया, उसने दो स्थानीय राजों को प्रशिक्षण देकर तैयार किया। तत्पश्चात् इन दोनों ने उस विशाल इमारत को बारीकी से सजाया-धजाया—क्या यह बात विश्वास योग्य लगती है? लेखक Terrasee की आशंका है कि वह इस्तम्बूल से आया राज काफर था। अतः उसे तो उस समय के धर्मांध मुसलमानों ने कार्डोबा की मस्जिद कही जाने वाली उस इमारत में प्रवेश भी नहीं करने दिया होगा।

उन दो नवशिक्षित व्यक्तियों को इस्लामी दरबानी खुशामदकारों ने 'गुलाम' कहा है। इसका अर्थ यह है कि वे पकड़कर छल-बल से मुसलमान बनाए गए अन्यधर्मीय व्यक्ति थे। इस प्रकार सारे इस्लामी दस्तावेजों और इतिहास का जागरूकता से अध्ययन करने पर वे सारे धौंसबाजी और ढोंगबाजी के भण्डार साबित होते हैं।

माद्रिद

स्पेन देश की राजधानी 'माद्रिद' कहलाती है। स्पॅनिश लोगों से यदि पूछा जाए कि वह नाम कैसे पड़ा तो वे या तो कुछ बता नहीं पाएँगे या कुछ अंट-संट अनुमान प्रस्तुत करेंगे, 'माद्रिद' का अर्थ है पाण्डव राजा की दूसरी पत्नी माद्रि के विवाह में किए कन्यादान का स्थान। अतः हमारा निष्कर्ष यह है कि उस देश के क्षत्रिय अधिपति ने अपनी कन्या माद्री के विवाह का मण्डप जहाँ लगवाया और सारे राजा, महाराजा तथा अन्य अतिथिगणों के ठहरने के प्रबन्ध के लिए जो नगरी-सी बनाई वही विवाह के पश्चात् राजधानी बनी। सन् १९८० के लगभग दिल्ली में Asiad खेलों के लिए जो खेल नगरी क्रीड़ापटुओं के निवास के लिए बनाई गई थी वही क्रीड़ा-

स्पर्द्धा के पश्चात एक बड़ी विख्यात बस्ती बन गई और उसमें बने अच्छे-अच्छे भवन खरीदने की ग्राहकों में होड़ बनी रही। माद्रिद का निर्माण भी उसी प्रकार प्रथम स्वयंवर के लिए किया गया और तत्पश्चात उस मंगलप्रसंग के लिए विविध सुख-सुविधाओं से सम्पन्न की गई वह नव-निर्मित नगरी आगे चलकर उस प्रदेश की राजधानी बन गई।

स्पेन देश की शिक्षा प्रणाली में जो Bachelor उपाधि है वह लग-भग ब्रह्मचारित्व Baccaluretwa ऐसे उच्चार का शब्द है।

शंकराचार्य के प्रति स्पेनिश राजघराने की श्रद्धा

सन् १९६३ के अक्तूबर-नवम्बर में और तत्पूर्व भी एक बार स्पेन की रानी सोफिया और उनकी एक बहन विमान से कामकोटिपीठम् के शंकराचार्य जी के भक्तिभाव से दर्शन करने मद्रास आई थीं। वस्तुतः वे थीं कॅथलिक ईसाई और शंकराचार्य ठहरे एक सनातनी वैदिक तपस्वी। दर्शनार्थियों से वे बोलते भी बहुत कम थे। एक शिष्य विदेशी दर्शनार्थियों की बातें तमिल में शंकराचार्य जी से कहता और उनका जो उत्तर होता, वह विदेशियों को सुनाता। ऐसे विरक्त, निरिच्छ, अल्पभाषी साधु का दर्शन करने की तीव्र इच्छा से एक विधर्मी रानी हजारों मील दूर से विमान द्वारा खिची चली आती है। इस घटना में भी स्पेन के प्राचीन वैदिक, आर्य, सनातन धर्म का ही सूत्र दिखाई देता है।

धर्म की दृष्टि से देखा जाए तो सोफिया ने कॅथलिक पीठाधीश पोप के दर्शन करने थे। पोप का धर्मपीठ रोम नगर स्पेन से विमान से केवल दो घण्टे के अन्तर पर है। पोप और रानी एक-दूसरे की भाषा में बिना किसी मध्यस्थ के सीधे वार्तालाप भी कर सकते थे। तथापि उस ईसाई रानी को शंकराचार्य के भेंट की जो तीव्र इच्छा हुई उसके पीछे अवश्य ही स्पेन के लुप्त-गुप्त वैदिक अतीत का कोई रहस्यमय आध्यात्मिक आकर्षण अवश्य होना चाहिए।

स्पेन की इस्लामपूर्व ऐतिहासिक इमारतों के सम्बन्ध में इस्लामी धौंसबाजी से विश्व के भोले विद्वान जिस प्रकार धोखा खा गए वैसा ही धोखा सर्वत्र हुआ है। सारे विश्व में मुसलमानों द्वारा बसाया कोई नगर

नहीं है और न ही मुसलमानों की बनाई कोई विख्यात प्रेक्षणीय इमारत ही है।

उदाहरणार्थ भारत के गोवा प्रदेश के पणजी नगर में सचिवालय की जो इमारत है उसे निद्रालु इतिहासज्ञ आदिलशाह का बनाया राजमहल मानते हैं जबकि वह महल आदिलशाह ने हिन्दू राजा से जीता था। उसी प्रकार फोंडा में जो २७ मस्जिदें कही जाती हैं वे सारे कब्जा किये हुए मन्दिर हैं। फोंडा में तब २७ मुसलमान स्थानीय निवासी भी नहीं रहे होंगे। ऐसे समय में वहाँ मस्जिदें बनाने की आवश्यकता क्या थी? वे २७ तो नक्षत्रों के या मातृकाओं के मन्दिर हो सकते हैं। उन २७ स्थलों की आख्यायिका ही शेष है। उनमें से केवल एक तथाकथित सोफा शाहपुरी मस्जिद के कुछ खण्डहर विद्यमान हैं। सोफा शाहपुरी स्पष्टतया शिवपुरी थी। इब्राहीम आदिलशाह को जब उसका निर्माता कहा जाता है तो समझना यह चाहिए कि इब्राहीम आदिलशाह ने मन्दिर को भंग और भ्रष्ट कर उसी टूटी-फूटी इमारत को मस्जिद घोषित किया।

फोंडा के किले के अन्दर जो इमारत धाई अब्दुल्ला खान शहीद की दरगाह कही जाती है, वह वास्तव में मन्दिर है। उस पर हमला करते समय अब्दुल्लाखान मारा गया अतः उसे उस मन्दिर में ही दफनाया गया।

बिचोलीम नगर का नमाजगाह एक मन्दिर का सभामण्डप था। औरंगजेब का पुत्र अकबर उस कब्जा किए भ्रष्ट हिन्दू मन्दिर में जब से ठहरा तब से मुसलमान सिपाही वहाँ नमाज पढ़ने लगे। अतः मन्दिर का नमाजगाह नाम पड़ा।

इसी प्रकार दीव की कडोआ मस्जिद, बहादुरशाह मस्जिद और नार्वा का किला सारी हिन्दू इमारते हैं जो असावधानी से इस्लाम द्वारा बनाई गई मानी जाती हैं।

ब्रिटिश भूमि का वैदिक अतीत

अन्य प्रदेशों के इतिहास की भाँति ब्रिटेन उर्फ आंग्लभूमि के इतिहास में भी यह दोष है कि लगभग २००० वर्ष पूर्व का उसका इतिहास धुंधला-सा बनकर यकायक अज्ञात हो जाता है।

सामान्य व्यक्तियों को भी दादा-पड़दादाओं के पूर्व के व्यक्तियों का नाम तक ज्ञात नहीं रहता तो इतिहास कहाँ से स्मरण रहेगा। पूरे देश के इतिहास का यही हाल होता है। केवल वैदिक संस्कृति में ही सृष्टि के आरम्भ से आज तक के इतिहास का सुसंगत सूत्र उपलब्ध है जो हमने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। वह सूत्र विश्व की सारी जनता को अवगत कराने से मानव जाति को समता, शान्ति और एकता देने वाला वैदिक समाज पुनः संगठित करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। इतिहास सीखने का एक मुख्य उद्देश्य यही होता है कि उससे अतीत की गलतियों का तथा गौरवशाली सुकृत्यों का ज्ञान हो और तदनुसार भविष्य उज्ज्वल बनाया जा सके। किसी भी देश का इतिहास वास्तव में आरम्भ से आजतक का एक अखण्ड कथासूत्र होना चाहिए। वैसा इतिहास किसी भी देश का नहीं पाया जाता। वे प्रादेशिक इतिहास जागतिक वैदिक इतिहास के फटे पृष्ठों की तरह आधे-अधूरे टुकड़े से लगते हैं। ब्रिटेन के इतिहास का भी यही हाल है।

रोमन, नॉर्मन, ऐंग्लो सैक्सन आदि कई विभिन्न जाति के लोगों के लड़ाई-झगड़े का एक आखाड़ा—ऐसा ब्रिटेन के प्राचीन इतिहास का वर्तमान स्वरूप है। एक सुसंगठित राष्ट्रीय शासन ब्रिटेन में आरम्भ हुए लगभग ४००-५०० वर्ष ही हुए होंगे। उससे पूर्व सारी उथल-पुथल ही

दिखाई देती है। आज तक विद्वान उस इतिहास के किसी एक विशिष्ट सूत्र को पकड़ नहीं पाए हैं। अतः ब्रिटिश लोगों की भाषा का उद्गम, उनके नगरों के नाम, उनका दर्शनशास्त्र, लोक-कथाएँ, राजप्रथा, साहित्य, छन्द-शास्त्र, पुरातत्वीय अवशेष आदि का तर्कसंगत विवरण आज तक ये विद्वान दे नहीं पाए हैं। अनेक विभिन्न आक्रामकों के आपसी लड़ाई-झगड़े से बनी एक रंग-बिरंगी खिचड़ी इसी का नाम ब्रिटेन की वर्तमान सभ्यता है—ऐसी धुंधली-सी धारणा वर्तमान विद्वानों में प्रचलित है। उसे जनमानस से हटवा कर इस ग्रन्थ द्वारा हम यह दर्शाना चाहते हैं कि ब्रिटेन पर भले ही अन्य देशों की भाँति समय-समय पर विभिन्न ज़मातों के आक्रमण हुए हों फिर भी वे आक्रामक लोग तथा ब्रिटिश भूमि के मूल निवासी सारे ही वैदिक सभ्यता में पले होने के कारण ब्रिटिश जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक ही वैदिक सूत्र बराबर दिखाई पड़ता है। उस दृष्टि से ब्रिटेन का ही नहीं अपितु किसी भी देश का इतिहास, समस्त विश्व की वैदिक जीवन-प्रणाली का एक अध्याय समझकर पढ़ने में तर्कसंगत तथा सूत्रबद्ध प्रतीत होता है।

इंग्लैण्ड, ब्रिटेन आदि नाम संस्कृतोद्भव हैं

आंग्ल प्रदेश के इंग्लैण्ड, ब्रिटेन आदि जो नाम पड़े हैं उनका समाधान-कारी या तर्कशुद्ध विवरण आंग्ल शब्दकोशों में भी नहीं मिलता। क्योंकि इन शब्दों के वैदिक, संस्कृत स्रोतों से वे कोशकार भी अनभिज्ञ हैं। अतः इन शब्दों की व्युत्पत्ति ढूंढने के प्रयास में वे अंट-संट, टेढ़े-मेढ़े अनुमान प्रस्तुत करते रहते हैं।

ब्रिटेन की प्राचीन भाषा फ्रेंच थी; यह हम देख चुके हैं। उस फ्रेंच भाषा में इंग्लैण्ड के निवासियों को वे 'आंग्ले' कहते रहे हैं। वह अंगुल शब्द है। उस भूमि के आकार के कारण वह नाम पड़ा। यूरोप खण्ड को यदि हम तलहस्त समझें तो ब्रिटिश द्वीप हाथ की एक अँगुली जैसा दिखाई देता है। यूरोप खण्ड की भौगोलिक लम्बाई चौड़ाई का अनुमान लगाने के लिए ब्रिटेन को एक प्रामाणिक मापदण्ड मानकर उसे 'अंगुल' नाम की उपमा देकर अंगुलस्थान कहा गया।

इससे यह अनुमान निकलता है कि प्राचीन वैदिक भूगोलशास्त्रियों

ने यूरोप खण्ड की लम्बाई-चौड़ाई तथा आस-पास के सागरों की गहराई नापने के लिए आंग्लभूमि की लम्बाई को एक प्रामाणिक नाप मानकर उसके दस गुना या बीस गुना आदि नाप आजमाने की प्रथा चलाई।

इस तथ्य का प्रमाण फ्रेंच लोगों की बोलचाल से प्राप्त होता है। वे ब्रिटेन को Anglo-Terr यानि 'अंगुलधरा' उर्फ अंगुलभूमि अर्थात् अंगुल स्थान कहते हैं।

संस्कृत में जिसे 'ग्रन्थी' कहते हैं उसे आंग्लभाषा में ग्लेंड कहते हैं। तथा लॅंप यानि दीप स्थान को 'लॅंपस्टॅंड' कहते हैं। अतः संस्कृत के 'अथ' या 'स्थान' दोनों का अपभ्रंश आंग्लभाषा में and (अॅंड्) होता है। इसी कारण 'अंगुल स्थान' का उच्चार 'अंगुलअॅंड्' होते-होते इंग्लॅण्ड बन गया।

अंगुल देश की भाषा अंगुलिश यानि 'इंग्लिश' कहलाई। जैसे बाल-क्रीड़ा को 'बालिश' कहा जाता है। अतः वह 'इश्' प्रत्यय भी संस्कृतमूलक ही है।

ब्रिटिश द्वीपों को बृहत्स्थान भी कहते थे। क्योंकि समीप के सागरी भाग में यूरोप खण्ड से टूटे जो अनेक द्वीप हैं उनमें ब्रिटिश द्वीप पर्याप्त लम्बे-चौड़े हैं। उसी बृहत्स्थान शब्द का अपभ्रंश 'ब्रिटेन' हुआ है।

आगे चलकर जब संस्कृत का अज्ञान हुआ तब ब्रिटेन में बृहत् का अर्थ 'जुड़ा हुआ है ही' यह भूलकर जनमानस में निवास करने वाली वह बृहत् की भावना के कारण उस देश को Great Britain कहने की प्रथा पड़ी। और त: और great शब्द भी स्वयं बृहत् का अपभ्रंश है यह great शब्द को breat ऐसा लिखने से स्पष्ट हो जाएगा।

बृहत्स्थान उर्फ ब्रिटेन में विस्तृत या विशाल द्वीप का भाव होते हुए भी ब्रिटेन शब्द को Great यह एक और 'बृहत्' अर्थ का विशेषण क्यों लगा? इस समस्या का हल दूसरे एक समान उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

वैदिक सभ्यता में गोमूत्र का महत्व होने से हर हिन्दू को वह शब्द परिचित होता है तथापि कई हिन्दुओं को संस्कृत का ज्ञान न होने से वे इस बात को भूल जाते हैं कि गोमूत्र का अर्थ ही गाय का मूत्र होता है। अतः किसी धार्मिक विधि पर जब गोमूत्र की आवश्यकता पड़ती है तो वे

दूसरे को कहते हैं कि 'गाय का गोमूत्र ले आना'। ऐसा कहने में पुनरुक्ति का दोष होता है। किन्तु मंगवाने वाले के मन में 'गोमूत्र' का अर्थ केवल मूत्र इतना ही शेष रह जाने के कारण वह गाय का गोमूत्र लाने का आदेश देता है। इसी प्रकार बृहत्स्थान यानि 'ब्रिटेन' होते हुए भी संस्कृत के अज्ञानवश ब्रिटेन को द्विरुक्ति के दोष से Great Britain कहा जाता है।

आंग्लभाषा का आक्सफोर्ड शब्दकोश (Oxford Dictionary) अधिकारी तथा प्रमाणभूत ग्रन्थ माना जाता है। उसमें भी Angle शब्द का अर्थ "the race of people of Angul" यानि "अंगुल देश के लोगों को आंग्ल उर्फ अंगुले कहा जाता है" ऐसा स्पष्ट लिखा है। किन्तु देश का नाम 'अंगुल' क्यों पड़ा यह वे नहीं जानते। उस शब्द के दो अर्थ हमने ऊपर स्पष्ट किए हैं। अंगुल यानि उँगली के आकार का लम्बा-सुकड़ा देश ऐसा उसका एक अर्थ है। दूसरा अर्थ है 'अंगुल रूप' मापदण्ड योग्य आकार का देश।

'ब्रिटेनी' (Britanny) भी बृहत्स्थानी शब्द का लाड़-भरा रूप है। पड़ौस में जो Ireland नाम का द्वीप है वह आर्यस्थान का अपभ्रंश है। ब्रिटेन के उत्तरी भाग को Scotland (स्कॉटलैंड) कहते हैं जो 'क्षात्रस्थान' का अपभ्रंश है।

वैदिक राजप्रथा

ऊपर कहे अनुसार ब्रिटेन सम्बन्धी सारे शब्द संस्कृत होने का मुख्य कारण यह था कि महाभारतीय युद्ध तक वह भूमि वैदिक विश्व साम्राज्य का एक भाग थी। तब वहाँ वैदिक क्षत्रियों के नाविक केन्द्र होते थे। बोली संस्कृत ही थी।

ब्रिटेन पर संस्कृतभाषी वैदिक क्षत्रियों का शासन होने के कारण वहाँ की राजप्रथा तथा परिभाषा सारी संस्कृत है। जैसे monarch (मॉनर्क) इस आंग्ल शब्द का अर्थ होता है राजप्रमुख (राजा या रानी)। वह मानवार्क उर्फ मानवादित्य शब्द है यानि मानवों में सूर्य जैसा चमकने वाला या सूर्य जैसा सर्वशक्तिमान और सर्वनियन्त्रक। मतापादित्य, विक्रमादित्य जैसा ही मानवार्क शब्द है।

राजा जब अक्षम हो, तब उसके नाम से कारोबार चलाने वाले को आंग्लभाषा में regent (रीजंट) कहते हैं जो स्पष्टतया 'राजन्त' शब्द है। Regime (रेजीम्) यह 'राज्यकाल' इस अर्थ का राज्यम् शब्द है।

राजकुल अर्थात राजशाही इस अर्थ से आंग्लभाषा में रीगल (regal) तथा रायल (royal) दोनों शब्द रूढ़ हैं। वे 'राजल' और 'रायल' ऐसे संस्कृत शब्द हैं। 'राजा' और 'राया' दोनों आंग्लभाषा में समानार्थी शब्द हैं। आन्ध्र में रायुलु और रायलसीमा उसी अर्थ के शब्द हैं। दयालु, कृपालु आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

ब्रिटिश सम्राट् का अंगरक्षक दल केशरी उर्फ नारंगी रंग की वर्दी पहनता है क्योंकि वह वैदिक क्षत्रियों का वर्ण है।

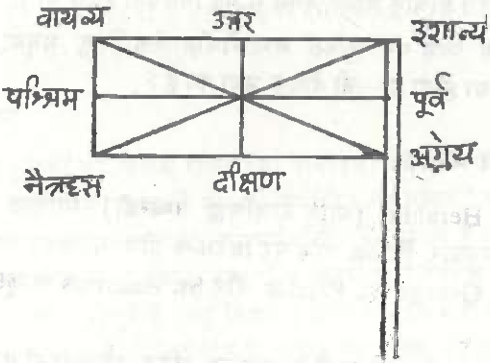
सम्राट् को आंग्लभाषा में 'माजस्ती' (Majesty) भी कहते हैं। वह 'महाराज-अस्ति' (यानि 'महाराज हैं') ऐसा शब्द है।

आंग्ल दरबारियों को 'सर' कहते हैं जो 'श्री' का 'सर' ऐसा विग्रहात्मक विकृत रूप है। अन्य कई देशों की प्राकृत लिपियों में जोड़ाक्षर की पद्धति न होने से 'जन्म', 'कर्म', धर्म जैसे शब्दों को तोड़कर जनम्, करम्, धरम् ऐसे उच्चार रूढ़ हुए। अतः Sir Roy Anderson या Henderson यह "श्री राय इन्द्रसेन" ऐसा मूल नाम है।

आंग्लप्रथा में सामान्य व्यक्तियों को सम्मानार्थी 'मिस्टर' (Mister) कहा जाता है, जो 'महास्तर' या महाशय, महोदय जैसे अर्थ का सम्बोधन है।

ध्वज

वैदिक धारणानुसार भगवान् का तथा सम्राट् का अधिकार दस दिशाओं में माना जाता है। ध्वज दण्ड का शिखर स्वर्ग का निर्देश करता है तथा निचला नोंक पाताल का निर्देश करता है। शेष अष्ट दिशाएँ यदि ध्वज पर अंकित हों तो दस दिशा हो जाती हैं। ब्रिटेन के ध्वज पर उन्हीं अष्ट दिशाओं का रेखाचित्र इस प्रकार है—



उन अष्ट दिशाओं के रक्षक अष्ट दिक्पाल इस प्रकार हैं—

(१) उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर
(२) ईशान्य ,, ,, ,, ईशान् (शंकर)
(३) पूर्व ,, ,, ,, इन्द्र
(४) अग्नेय ,, ,, ,, अग्नि
(५) दक्षिण ,, ,, ,, यम
(६) नैऋत्य ,, ,, ,, निरुत् (राक्षस)
(७) पश्चिम ,, ,, ,, वरुण
(८) वायव्य ,, ,, ,, वायु

ऐसे अष्टदिशाओं के विशिष्ट नाम होते हुए भी भारत के आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे प्रचार तथा ज्ञान माध्यमों पर वायव्य के बजाय north-west का उत्तरपश्चिमी दिशा ऐसा अनाड़ी उल्लेख होना उस प्रवक्ता का अज्ञान दर्शाता है और भारत के संस्कृत-वैदिक भाषा संभार पर लांछन-सा प्रतीत होता है।

इसी अष्ट दिशा तथा दस दिशा निर्देश हेतु कर्मठ वैदिक पद्धति से जब परमात्मा या राजा के लिए कोई भी इमारत बनाई जाती तो वह या

तो स्वयं अष्टकोणीय होती या उसके बुर्ज, कक्ष आदि अष्टकोणीय आकार के बनाए जाते। प्राचीन आंग्ल भवन में यह विशेषता होती थी।

ब्रिटेन के ध्वज पर अंकित अष्टकोणीय रेखाचिह्न भगवा, लाल, गुलाबी वर्ण का होता है—जो वैदिक प्रथा का है।

ब्रिटिशों का अज्ञान

ब्रिटिश Heraldic (यानि राजचिह्न सम्बन्धी) साहित्य में दिए विवरण के अनुसार ब्रिटिश ध्वज पर ब्रिटेन के तीन मान्यवर राष्ट्ररक्षक सन्तों—St. George, St. Patrick और St. Andrews के क्रूस अंकित हैं।

आधुनिक क्रुस्ति विद्वानों ने प्राचीन वैदिक परम्पराओं का उल्टा-सीधा, टेढ़ा-मेढ़ा समर्थन किस प्रकार किया है उसका ध्वजचिह्न सम्बन्धी उनका विवरण एक सशक्त उदाहरण है।

वैसे देखा जाए तो ब्रिटिश ध्वज में दो ही तो क्रूस हैं। तीन कहाँ हैं? एक क्रॉस सीधा + 'अधिक' चिह्न वाला है। दूसरा क्रॉस गुणा चिह्न जैसा × टेढ़ा है। यदि एक के ऊपर एक ऐसे दो क्रूसों की कल्पना कर दोनों प्रकार के दो-दो क्रूस दुहरे दर्शाए हों तो कुल चार क्रॉस होंगे; न कि तीन। तीसरा, दोष यह है कि गुणा चिह्न वाला × क्रूस वास्तव में ईसाई क्रूस है ही नहीं। किसी ईसाई सन्त का गुणा के आकार का ऐसा × क्रूस हो ही नहीं सकता, क्योंकि उस आकार के क्रूस पर क्रुस्त का वध नहीं किया गया था।

जॉर्ज, पैट्रिक, एण्ड्रूज यह तीनों सन्त नाम काल्पनिक हैं। ईसवी सन् की छठवीं शताब्दी में ब्रिटेन क्रुस्ती बना। उससे पूर्व के कोई ईसाई साधु या सन्त ब्रिटेन में हो ही नहीं सकते। जबकि ब्रिटिश ध्वज पर खींचे अष्टकोणीय चिह्न की परम्परा तो महाभारतीय युद्ध के समय की है। अतः उस चिह्न को तीन काल्पनिक ईसाई सन्तों के क्रूसों की आधुनिक खिचड़ी बताना ऐतिहासिक धौंसबाजी है।

एक और तर्क यह है कि George नाम वस्तुतः गर्ग है तथा Andrew

नाम इन्द्र है। उन दोनों वैदिक नामों को घुमा-फिराकर ईसाई रूप दे डालना ही एक हेराफेरी है। हो सकता है Patrick नाम भी किसी संस्कृत वैदिक नाम का अपभ्रंश हो।

सिंहासन

जिस कुर्सी पर ब्रिटिश राजा (या रानी) का राज्याभिषेक किया जाता है, वह वास्तव में विलायती ढंग की कुर्सी है। वह लन्दन नगर में Westminster Abbey नाम के ईसाई धर्ममन्दिर में प्रदर्शित है। राज्याभिषेक के समय उसका प्रयोग किया जाता है। उसके चार पैरों से चार सुनहरी सिंह प्रतिमाएँ जुड़ी हुई हैं। यह सिंहासन प्रथा भी इस बात का प्रमाण है कि ईसापूर्व काल से ब्रिटिशभूमि के सम्राट् का वैदिक पद्धति से सिंहासन पर ही राज्याभिषेक होता था।

ब्रिटिश राजा King वस्तुतः सिंह था

राजा को आंग्लभाषा में King (किंग) कहा जाता है। वह वास्तव में सिंह उर्फ सिंग शब्द का अपभ्रंश है। क्योंकि प्राचीन समय की आंग्ल लिखाई में जगतसिंह, मानसिंह, उदयसिंह आदि शब्दों का अन्तःपद Cing लिखा जाता था। उस समय Cing का आंग्ल उच्चार सिंह उर्फ सिंग होता था। होते होते 'C' अक्षर का उच्चार 'क' होने लगा, जिससे सिंह या सिंग के स्थान पर 'किंग' उच्चार रूढ़ हुआ। अतः ऊपर कहे विवरण से निष्कर्ष यह निकलता है कि अंगुल देश के प्राचीन सम्राटों के नाम भवानीसिंह, खड्गसिंह इत्यादि होते थे। ऐसे नामों के व्यक्ति संस्कृत-भाषी वैदिक क्षत्रियों के सिवाय अन्य कोई हो ही नहीं सकते। किन्तु आंग्ल शब्दकोश बनाने वाले भाषा पण्डितों को भी उस अतीत के इतिहास का ज्ञान न होने के कारण उन्होंने King शब्द की कोई अटपटी, ऊटपटांग सी व्युत्पत्ति दे रखी हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अतः विश्व का इतिहास दुबारा लिखने का कार्य इतना विशाल है कि इसके अन्तर्गत विश्व की सारी भाषाओं के शब्द-कोश भी दुबारा संस्कृत व्युत्पत्ति के आधार पर तैयार करने होंगे।

यूरोप का देवासुर संग्राम

ऊपर वर्णित आंग्ल सिंहासन की कुर्सी में आसन के नीचे एक और पटरी लगी हुई है जिस पर एक केसरी रंग की अतिप्राचीन ऊबड़-खाबड़ शिला बड़े ही आदर भाव से रखी हुई है। सन् १८०० के पूर्व का इसका इतिहास अज्ञात है।

इस शिला को Stone of Scon यानि स्कॉन की शिला कहते हैं। हो सकता है कि वह स्कन्द की शिला हो। देवों के सेनापति स्कन्द थे। यूरोप खण्ड में जब दैत्य वंश का राज्य था तब देवासुर संग्राम में दैत्यों के विरोध में जो नाविक दल (यानि आधुनिक Navy) आया उसे स्कन्दनावीय दल कहते हैं। उस दल ने उत्तरी यूरोप के दैत्यों के बन्दरगाह जीतकर वहाँ नाकाबन्दी की अतः इस उत्तरीय बन्दोबस्त के समय से इस प्रदेश का नाम स्कन्दनावीय (Scandnavia) पड़ा। अंगुल उर्फ आंग्ल द्वीपों पर भी इस दल ने निजी मोर्चे लगाए। इस समय जो राजप्रासाद नष्ट-भ्रष्ट हुए उनकी एक केशरिया रंग की टूटी-फूटी शिला तब से आंग्ल भूमि के क्षत्रिय शासक के सिंहासन के नीचे रखी जाया करती हैं। दैत्यों पर स्कन्द की देव सेना के द्वारा पाई विजय के स्मृतिचिह्न के रूप में उसे स्कन्दशिला कहा गया। संस्कृत से बिछड़ जाने के पश्चात् आंग्लभाषा में उस शिला को स्कन्द के बजाय 'स्कॉन' कहने लगे क्योंकि प्राचीन समय में जो फ्रेंच उच्चार पद्धति रूढ़ थी उसमें अन्तिम व्यंजन अनुच्चारित छोड़ा जाता था। अतः स्कन्द की स्मृति स्कन् उर्फ स्कॉन के नाम से चल रही है।

ब्रिटिश नगरों के संस्कृत नाम

इतिहास की वर्तमान अवस्था में पाठकों को यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य होगा कि ब्रिटिश भूमि की नदियाँ, नगर, गाँव आदि के नाम अधिकतर सीधे संस्कृत हैं। जैसे क्षात्रस्थान उर्फ स्कॉटलैण्ड में Cholomondeley नाम का एक गाँव वस्तुतः चोल-मण्डल-आलय है। इतने सारे अक्षर लिखते तो हैं तथापि उनका उच्चार करना उनके लिए इतना कठिन हो गया है कि उसे वह 'चम्ले' कहकर काम चला लेते हैं।

आंग्लभूमि में 'कोट' अन्त्यपद वाले कई नगर हैं। जैसे चार्लकोट, हीथकोट, नॉर्थकोट। इन्हें भारत के अकलकोट, बागलकोट, सिद्धकोट, अमरकोट आदि नामों से मिलाइए और Kingscoat को ठेठ एक अर्थ से राजकोट और दूसरे अर्थ से सिंहकोट है।

आंग्ल द्वीपों में घोड़ों की शर्यतों के लिए Ascot नगर बड़ा प्रसिद्ध है। क्यों न हो जब उसका नाम ही अश्वकोट है। प्राचीन अश्वकोट नाम का आधुनिक उच्चार अॅसकॉट बनकर रह गया है। आंग्लभाषा में अॅस (ass) (यानि गधा) शब्द भी 'अश्व' शब्द का अपभ्रंश है।

पत्थर का कोट जैसे नगर का रक्षण करता है वैसे वस्त्र का कोट शरीर का (ठण्ड, वर्षा आदि से) रक्षण करता है।

शंकर के मन्दिर वाले नगर

आंग्लभूमि के कई नगर या प्रदेशों के नामों के अन्त में 'शायर' ऐसे अक्षर आते हैं जैसे वारविकशायर, डर्बीशायर, पेंब्रोकशायर, मन्मथशायर। उसका कारण यह है कि वहाँ प्रसिद्ध शंकर के मन्दिर थे।

भारत में भी जहाँ-तहाँ शिवजी के मन्दिर होते थे उनसे उन बस्तियों के नाम रामेश्वर, संगमेश्वर, ओंकारेश्वर, महाबलेश्वर आदि पड़े। उसी ईश्वर उच्चार का आंग्ल अपभ्रंश 'शायर' हुआ। अतः डर्बीशायर यानि दर्मेश्वर, मन्मथशायर यानि मन्मथेश्वर, वॉरविकशायर यानि वारविकेश्वर इत्यादि।

आंग्लभूमि के कई नगरों के नामों के अन्त में pton अक्षर पाए जाते हैं जो संस्कृत 'पट्टण' शब्द है। जैसे Southampton, Northampton, Hompton इत्यादि। इन शब्दों में 'साउथ' यानि 'दक्षिण' अतः साउथम्प्टन् यानि दक्षिणपट्टण; North यानि उत्तर, अतः Northampton यानि उत्तरपट्टण। तथा Hampton यानि हेंपिपट्टन। भारत में भी हम्पि नाम का नगर है और इंग्लैण्ड में भी है। अतः भारत में जो वैदिक संस्कृति थी वैसी ही आंग्लभूमि में भी थी।

ब्रिटिश भूमि के कुछ नगरों के अन्त में 'बुरी' अक्षर होते हैं। वह पुरी शब्द का ही अपभ्रंश हैं। भारत में जिस प्रकार कृष्णपुरी, जगन्नाथपुरी

बलरामपुरी नाम के नगर होते हैं वैसे आंग्लभूमि में वॉटरबुरी (Waterbury) यानि जलपुरी, एन्सबुरी, श्यूसबुरी, सप्तपुरी (Sevenbury) यानि ऐसे नगरों के नाम हैं।

'पुरी' का 'बुरी' अपभ्रंश होता है इसका प्रमाण पोटॅटो (potato) इस आंग्ल शब्द का 'बटाटा' ऐसा उच्चार महाराष्ट्र जैसे भारत के कुछ भागों में रूढ़ होने में मिलता है।

उसी प्रकार संस्कृत का जो 'पुस्तक' शब्द है उसका 'स्त' अक्षर निकल जाने से जो 'पुक' शब्द रह जाता है उसी का आंग्ल अपभ्रंश बुक (book) बना।

नदियों के नाम भी संस्कृत

ब्रिटेन की नदियों के नाम भी संस्कृत ही हैं। जैसे Thames (टेम्स्) 'तमसा' नदी है। उसका पानी मैला (माटी-सा) तथा नदी के ऊपर बादलों के कारण प्रकाश भी मन्दा और धुंधला-सा होता है अतः इसे 'तमसा' यानि 'तम' या 'अन्धकार जैसी' नाम पड़ना स्वाभाविक था। रामायण में उल्लिखित 'तमसा' आंग्लभूमि वाली तमसा नदी ही है ऐसा कहा नहीं जा सकता है। क्योंकि भारत में जो नाम प्रसिद्ध हुए या वैदिक संस्कृति में जो नाम जंचे या रूढ़ हुए वे ही नाम अलग-अलग प्रदेशों में बार-बार दिए गए। भारत में ही देखें उदयपुर, बिलासपुर आदि नगर के नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मिलेंगे। मुसलमानों के शासन में औरंगाबाद नाम कई नगरों को दिया गया। उसी प्रकार तमसा, सिन्धु, गंगा आदि नदियों के नाम विश्व में अनेक स्थानों पर पाया जाना स्वाभाविक है।

ब्रिटेन की एक नदी का नाम है Amber (अम्बर) जो संस्कृत 'अंभस्' (यानि 'जल') से बना है, ऐसा Oxford Dictionary of Place Names (यानि स्थानवाचक शब्दकोश) में कहा है। तथापि उसी आंग्लकोश में 'पुरी', 'ईश्वर', 'षट्टण' आदि संस्कृत नामों से भी ब्रिटिश नगरों के नाम पड़े हैं इसका उल्लेख नहीं है। अतः इस स्थानवाचक नामों के कोश का भी पुनर्लेखन होना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में प्रस्तुत ब्योरे

से मानवीय सभ्यता, इतिहास, भाषा-कोश आदि जितने भी ग्रन्थ हैं उन्हें इस नई जानकारी द्वारा दुबारा लिखना होगा।

राम नाम के ब्रिटेन में उल्लेख

राम नाम वैदिक संस्कृति का एक प्रमुख चिह्न बन गया है। तो वह नाम भी ब्रिटेन की भूमि पर लोगों में बार-बार प्रयोग होता रहता है। जैसे Ramisgate यानि रामघाट (नगर), Ramisden यानि रामस्थान। Ramford यानि नदी पार करने का रामस्थान उर्फ रामतीर्थ। व्यक्ति नामों से भी राम शब्द का अन्तर्भाव है जैसे Sir Winston Ramsay (यानि रामसहाय) तथा Ramsay (रामसहाय) Macdonald। Cinc hama, panorama आदि आंग्ल-भाषा के शब्द भी 'मनोरमा' के समानार्थी होने से उनमें 'रम' धातु है।

ब्रिटेन के कुछ नगरों के नामों में gham (घाम) ऐसे अन्तिम अक्षर होते हैं, जैसे Sandringham (सुन्दर धाम या सुन्दर ग्राम) और Birmingham (ब्राह्मणगाम अर्थात् ब्राह्मणग्राम या ब्राह्मणधाम)।

Billingsgate, Queensgate, Margate वे नदी या सागरतट पर स्थित हों तो बिलिंगघाट, रानीघाट, मरघाट आदि नाम हो सकते हैं। या वे द्वार शब्द के अनुवाद के रूप में बिलिंगद्वार, रानीद्वार, मरद्वार आदि मूल संस्कृत नाम हो सकते हैं।

धार्मिक परिभाषा

ईसाइयों की सारी परिभाषा वैदिक संस्कृत है क्योंकि कुछ आतंकवादी कृष्णपन्थी लोगों ने ही वैदिक प्रणाली से फूटकर ईसाई पन्थ चलाया। अतः 'चर्च' यह धर्मचर्चा स्थान का द्योतक 'चर्चा' मूलक संस्कृत शब्द है।

'चर्चिल' यह जो अंग्रेजों के अनेक कुल नामों में से एक है वह चर्चा-चालक के अर्थ से 'चर्चिल' नाम पड़ा। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि आंग्ल-राष्ट्र के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय सर विन्स्टन् चर्चिल (Sir Winston Churchill) के दादा-पड़दादा ईसाई धर्मगुरु रहे होंगे जो किसी गिरिजाघर में चर्चा उर्फ प्रवचन करते रहे होंगे।

गिरिजाघर के जिस कक्ष में साधु-संन्यासी आदि के पवित्र वस्त्र रखे जाते हैं उस कक्ष को 'वस्त्री' (Vestry) कहते हैं। पवित्र वस्त्र अलग से रखना और उन्हें संस्कृत भाषा में वस्त्र ही कहना यह यूरोप की वैदिक-संस्कृत पम्परा का ठोस प्रमाण है।

ईसाई साधु 'फ्रायर' कहलाते हैं, जो 'प्रवर' यानि ऋषि का अपभ्रंश है। ईसाई साधु को 'सेण्ट' भी कहते हैं, जो सन्त शब्द का ही जरा तिरछा उच्चारण है।

अणुशक्ति से सर्वनाश

द्वितीय महायुद्ध में जर्मन बमबारी से लन्दन नगर के पार्लियामेण्ट सभागृहों के परिसर में जो इमारतें टूटीं उनका मलवा निकालते समय वहाँ एक प्राचीन मित्र (यानि सूर्य) मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुए थे जो ईसापूर्व समय के इंग्लैण्ड की वैदिक सभ्यता के साक्ष्य हैं।

आंग्लभाषा में Underling (अन्दरलिंग) शब्द का अर्थ आश्रित या हस्तक होता है। वह अन्तरलिंग शब्द है। वैदिक शिव मन्दिरों में एक बड़ा शिवलिंग बाहर या ऊपर होता है और अन्य छोटा शिवलिंग उसकी निचली मंजिल में या अन्दर कक्ष में होता है। वह निचला या अन्दरवाला शिवलिंग अन्तर्लिंग कहलाता है।

आंग्ल-भाषा में तन्त्रम् (tantrum) शब्द भी है। उसका उच्चार वे टॅंट्रम करते हैं क्योंकि उनकी लिपि में 'न' अक्षर नहीं है। एक तान्त्रिक जैसे आधिदैविक धुन की मस्ती में दंग होकर उल्टे-सीधे अंग-विक्षेप करता है वैसी ही क्रोधी अवस्था को tantrums कहते हैं।

मिनिस्टर यह आंग्ल शब्द मन्त्री का ही अपभ्रंश है।

आंग्ल कुलों का ब्रॅहॅम् (Brahm) नाम होता है जैसे भारत में 'ब्रह्मे' उर्फ 'ब्रम्हे' नाम होता है। अब्रहम् भी ब्रह्मा का वैसा ही अपभ्रंश है जैसे स्नान को अस्नान भी कहा जाता है।

भाषा

आंग्लभाषा शास्त्रज्ञ आंग्ल शब्दों की व्युत्पत्ति लैटिन में ढूंढ़ते हैं। लैटिन स्रोत का आभास उन्हें इसलिए होता है कि लैटिन स्वयं संस्कृत से

निकली है। क्योंकि हम देख चुके हैं कि किस प्रकार प्राचीन इटली में वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा ही थी। अतः आंग्ल शब्दों का लैटिन स्रोत ढूंढ़ने की बजाए सीधा संस्कृत उद्गम ही देखना ठीक होगा। जैसे अपर (upper) ऊपर शब्द है; medium यानि माध्यम; प्रीचर (pteacher) यानि प्रचारक; अॅडोर (adore) यानि आदर करना, मॅन (man) यानि प्रचारक, डोअर (door) यानि द्वार, कौ (cow) यानि गौ। संस्कृत व्याकरण के कई नियम आंग्ल-भाषा में लागू हैं।

यूरोप के लोगों का भोजन 'सूप' से आरम्भ होता है। दाल या शाक के द्रव निचोड़ को सूप कहते हैं। वह संस्कृत शब्द है। आसव, प्रसव शब्दों से पता चलेगा कि 'सू' यानि निचोड़। उसको अग्नि पर पकाने का अर्थ 'प' से ध्वनित होता है। अतः सूप यानि दाल या शाक का पतला, पकाया निचोड़। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में रसोई पकाने वालों को सूपकार कहा जाता है।

आंग्ल सागरतट पर अणु किरणों का प्रकोप

अणु या परमाणु से निकलने वाली शक्तिशाली किरणों को radio-activity कहते हैं। उनसे प्रभावित वस्तु के सम्पर्क से मानव का स्वास्थ्य तथा सन्तुलन बिगड़कर मृत्यु भी हो सकती है। महाभारत के मौसल पर्व में यादवों पर बीती उसी प्रकार की हानि का वर्णन है।

सन् १९८३ की नवम्बर ३० को ब्रिटेन के पर्यावरणदर्शी मन्त्रालय ने एक पत्रक द्वारा जनता को सावधान कराया कि "ब्रिटेन के वायव्य भाग में Windscale अणुऊर्जा यंत्रालय के कारण निकट के सागरतट पर उगी घास प्रभावित हो गई है। सामान्य स्तर से ऊर्जा किरणों का प्रभाव १००० गुना बढ़ जाने से जनता को वहाँ की घास से दूर रहना ठीक होगा।

महाभारत के मौसलपर्व में ठीक इसी तरह का वर्णन है। इस समय यादवों को भी सावधान किया गया था कि द्वारका सागरतट की घास किरणोत्सर्गी मूसलखण्डों के प्रभाव से मानव जीवन को हानि पहुँचाएगी और ठीक उसी से यादवों का नाश हुआ।

महाभारतीय युद्ध में १८ दिन लगातार कौरवों-पाण्डवों की सेना ने

एक-दूसरे पर जो अनेक अस्त्र फेंके उनमें से कई बगैर विस्फोट हुए इधर-उधर पड़े रहे। युद्धोपरान्त कुछ यादव कुमार एक युवक को गर्भवती स्त्री का रूप देकर उसे एक ध्यानमग्न ऋषि के पास ले गये। ऋषि से मस्करी करने की भावना से उन यादव कुमारों ने कहा, "ऋषिजी आप अन्तर्ज्ञान से यह बताएँ कि इस गर्भवती को क्या होगा ?"

ऋषि सचमुच अन्तर्ज्ञानी थे। उन्होंने यदु-शिशुओं की मस्करी से क्रोधित होकर शाप दिया "इस कुमार के पेट से शिशु के बजाय एक मूसल निकलेगा और उसी से यदुकुल का नाश होगा।"

'ठीक वैसा ही हुआ। गर्भ के दिन पूरे होते ही उस युवक के पेट से एक मूसल निकला। अब यादवों को उसके कथित भावी संहारी परिणामों का भय सताने लगा। उन्होंने उस मूसल का चूरा करके उसे सागर में झोंक दिया। उससे जो घास उगी वह अणु किरणों से दूषित थी। तत्पश्चात् यादवों ने एक रात मदिरापान कर सागरतट पर की उस दूषित लम्बी घास को उखाड़-उखाड़कर उसकी एक बेत या डोर बना-बनाकर एक-दूसरे को पीटा और उस दूषित किरण संसर्ग के कारण यादवों का अन्त हुआ। उसी घास का बना एक नोकीला बाण एक भील ने चलाया जो ध्यानस्थ वन में बैठे श्रीकृष्ण के पैर में लगकर उनकी लीला समाप्ति का कारण बना। ऐसी महाभारत की कथा है।

ऊपर कही घटना आधुनिक अनुभव से शत-प्रतिशत सही लगती है। सेना के चाँदमारी प्रशिक्षण के मैदान में या किसी युद्ध के पश्चात् ऐसे कई बम, गोलियाँ आदि अस्त्र बगैर विस्फोट हुए इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं। अनुभवी बच्चे कुतूहल से उन अस्त्रों को लोहे की गेंद या पीतल के बर्तन समझकर उसे खोलने के विचार से उसे पत्थर या हथौड़े से ठोकते हैं। उससे विस्फोट होकर कई लोग घायल होते हैं। आधुनिक युग में विस्फोटों के अतिरिक्त अणुशक्ति के किरणोत्सर्गी अस्त्र बनते रहते हैं। उनसे पानी, हवा, वस्तुएँ आदि सारे दूषित हो उठते हैं। उन दूषित वस्तुओं के संसर्ग से मानव, पशु, पक्षी बड़ी संख्या में या तो मर ही जाते हैं या रोगजर्जर होकर दुर्बल तथा पराधीन हो जाते हैं। यही हाल महाभारत युद्ध के पश्चात् होना पूरी तरह से सम्भव था क्योंकि उस युद्ध में दोनों पक्षों द्वारा बड़े-बड़े महा-

संहारी जीव-जन्तुओं के तथा किरणोत्सर्गी अस्त्र छोड़े गए थे। उसमें से कई युद्धोत्तरकाल में दुर्लक्षित अवस्था में इधर-उधर पड़े रहे होंगे।

अंग्रेज तथा यूरोपीय आर्य कहलाते हैं

अंग्रेज तथा यूरोप के अन्य देशों के लोग अपने-आपको आर्य कहते हैं। कहते तो ठीक ही हैं, किन्तु इसका अर्थ वे गलत समझते हैं।

प्रचलित धारणा यह है कि गोर वर्ण के, सीधी नाक वाले और ऊँचे, लम्बे, सशक्त कद वाले (यूरोपीय) लोग आर्यवंशी होते हैं। वह धारणा दुनिया के अधिकांश विद्वानों के मन में एक दृढ़मूल मान्यता-सी बन गई है। जो भी विद्वान् कोई लेख या ग्रन्थ लिखने बैठता है या भाषण देने खड़ा होता है तो कहता है, "जब आर्य लोग भारत में आए थे···" इत्यादि-इत्यादि।

उन्हें यदि पूछा जाए कि आर्य लोग कौन थे? कहाँ से आए? उनका मूल देश कौन-सा था? उनकी भाषा क्या थी? उनकी लिपि कौन-सी थी? वे कहाँ से कब चले? तो इन सब प्रश्नों का "मालूम नहीं, ज्ञान नहीं, शायद ऐसा होगा, शायद वैसा होगा" इस प्रकार पूर्ण अज्ञानदर्शक उत्तर मिलता है।

क्योंकि वास्तव में आर्य नाम की कोई जाति थी ही नहीं। आर्य यह धर्म है। वैदिक, सनातन, हिन्दू जीवन-प्रणाली का ही नाम आर्यधर्म है। वह किसी भी देश या वंश का व्यक्ति अपना सकता है। इसी कारण 'कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्' ऐसा ऋग्वेद का आदेश है। हब्शी, गोरे, पीले ऐसे कोई भी आर्यधर्मी बन सकते हैं। इतना ही नहीं अपितु आर्यधर्म के नियमों का पालन सबका कर्त्तव्य होना चाहिए, ऐसा वेदों का आदेश है।

आर्य शब्द का अर्थ

आर्य शब्द का अर्थ ही वैसा है। 'री' धातु को 'आ' लगने से आर्य शब्द बनता है। जैसे ऋषि को 'आ' लगने से आर्ष शब्द बनता है। उदाहरणार्थ आर्ष वाङ्मय वह होता है जो ऋषिओं का लिखा होता है। ऐसा वाङ्मय टिकाऊ होता है। उसका क्षय नहीं होता। क्योंकि वह किसी के दबाव या

प्रलोभन से नहीं लिखा जाता। निर्भीक और स्वतंत्र वृत्ति से शुद्ध ज्ञान और सत्य का आविष्कार करना यही आर्ष साहित्य का उद्देश्य होता है।

'री' धातु का अर्थ है मूल वस्तु को बढ़ाना, उसका संवर्धन करना, संगोपन करना आदि उसे 'आ' अक्षर लगने से आर्य शब्द बनता है। अतः आर्य विचार-प्रणाली का उद्देश्य होता है कि मानव के हृदय में सत्य बोलना, स्वच्छ रहना, सेवा करना, परोपकार करना आदि जो मूलभूत दैवी भावना है उसको बढ़ाते-चढ़ाते आत्मा को महात्मा बनाकर तत्पश्चात् उसे परमात्मा में लीन होने तक आत्मा का विकास करते रहना। इस हेतु से आयु बिताने में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष मार्गदर्शन देने हेतु चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम की कर्त्तव्यपूर्ति का संस्कारपूर्ण कर्म मार्ग कहा गया है। अतः ऐसा ध्येय रखने वाला और उसके अनुसार आचरण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति आर्य ही कहलाएगा चाहे वह किसी देश का, वर्ण का, या कद का हो।

द्रविड़ आर्यधर्मी ही हैं

द्रविड़ लोग, चाहे भारत के हों या यूरोप के, वे आर्यधर्मी ही थे। अतः 'द्रविड़' और 'आर्य' विरोधी संज्ञाएँ नहीं हैं। बल्कि आर्यधर्म की निगरानी तथा मार्गदर्शन करने वाले ऋषि-मुनि द्रविड़ कहलाते थे।

आंग्लभाषा में चावल को राइस (Rice) कहते हैं, द्रविड़ लोग उसे 'अरिसु' कहते हैं। दोनों में कितनी समानता है।

गायत्री मन्त्र का जप

द्रविड़ लोग आर्यधर्म संचालक ऋषि-मुनि थे इसका एक और महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह है कि यूरोप के विभिन्न देशों में जो कोई थोड़े से लोग निजी द्रविड़ परम्परा की पवित्र स्मृति मन में सँवारे और सँभाले हुए हैं वे कम से कम वर्ष में चार बार सार्वजनिक स्थल पर इकट्ठे होकर सूर्यपूजन और सूर्य-स्तवन करते हैं।

जिन दिनों दिन-रात की लम्बाई एक जैसी होती है (यानि २१ मार्च और २३ सितम्बर) तथा जिस दिन सबसे लम्बा दिन हो (जून २१) और रात दीर्घतम हो (२२ दिसम्बर) इन चार तिथियों को अपने द्रविड़ियन् का गर्वपूर्ण स्मरण रखने वाले विभिन्न देशों के द्राविड़ी मण्डल अपने-अपने

नगर में किसी ऊँचे टीले पर सूर्योदय के पश्चात् इकट्ठे होकर पूर्व दिशा में सूर्य का दर्शन करते हुए जल, फल-फूल आदि अर्पण कर स्थानिक भाषा में उच्च स्वर में प्रार्थना बोलते हैं कि "हे सूर्यदेव आप हमारी बुद्धि को चेतना दें। आप ही इस जीवसृष्टि के कर्ता-धर्ता हैं।" इत्यादि-इत्यादि। यानि एक प्रकार से वे "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस प्राचीन गायत्री मन्त्र का अनुवाद ही सदियों से निजी पारम्परिक स्मृति में सँवारे हुए हैं।

शिव संहिता

उन द्रविड़ गुटों के छोटे-छोटे प्रकाशन होते हैं। उनमें इसी प्रकार की प्रार्थना, उपदेश आदि होते हैं। किन्तु उनमें से एक पुस्तिका 'शिवसंहिता' है। वह बड़ी आश्चर्य की बात है।

वैसे तो उस पुस्तिका में शिव की स्तुति है या नहीं यह मुझे देखने को नहीं मिला क्योंकि वह अप्राप्य थी (पुराने संस्करण की सारी प्रतियाँ बिक चुकी थीं और नया छपा नहीं था) फिर भी इंग्लैण्ड के द्रविड़ों के प्रकाशनों की सूची में 'शिवसंहिता' नाम तो अवश्य था।

गुप्तता

यूरोप के विभिन्न देशों में निजी द्रविड़ परम्परा का गौरव मानकर जतन करने वाले जो छोटे-मोटे गुट कहीं-कहीं रह गए हैं, वे बड़ी गुप्तता बरतते हैं। कभी किसी समाचार-पत्र में उनकी वार्षिक या मासिक सभाओं की छोटी-सी सूचना या वार्ता छपे तो छपे। वैसे वे अधिकतर एक-दूसरे से गुप्ततापूर्ण व्यक्तिगत सम्पर्क पर ही निर्भर रहते हैं। उनके अड्डे, प्रकाशन या कार्यकर्ता आदि के पते ब्रिटिश ग्रन्थालय में ढूंढ़ने पर बड़ी कठिनाई से मिलते हैं।

इतनी गोपनीयता का कारण यह है कि चौथी से ग्यारहवीं शताब्दी तक लगातार ६००-७०० वर्ष क्रुस्ती पन्थ सैनिक और सामाजिक आतंक और अत्याचारों द्वारा जब ईसाई धर्म यूरोप की सारी जनता पर थोपा जाने लगा तब पुरातन वैदिक परम्पराओं का संरक्षण करने की जिम्मेदारी अनुभव करने वाले द्रविड़ नेतागणों को छुप-छुपकर निजी सूर्यपूजा, शिव-भक्ति, गणेश-भक्ति आदि की परम्परा चलानी पड़ी। ऐसा करते-करते

उनके मन्त्र-तन्त्र, संस्कृत ग्रन्थ, स्तोत्र आदि सारे लुप्त होते गए। बचा सो केवल एक स्मृति का ढाँचा और गौरव की भावना। फिर भी उन्हीं को यूरोप के लोग अपने छोटे-छोटे बिखरे मण्डलों में बड़ी दृढ़ता से पकड़े हुए हैं।

हिन्दू मन्दिर

छठी शताब्दी में ब्रिटेन पर ईसाई धर्म थोपा गया। तब तक ब्रिटिश भूमि में अनगिनत वैदिक देवताओं के मन्दिर होते थे। जितने भी प्राचीन गिरिजाघर हैं वे वैदिक मन्दिर ही थे। उनमें से मूर्तियाँ नष्ट कर उन स्थानों को छल-बल से ईसाई गिरिजाघर कहा जाने लगा।

यौर्क नाम के नगर में जो विशालतम गिरिजाघर है वह अर्क यानि सूर्य का मन्दिर था। उसी का अपभ्रंश York हुआ।

लन्दन नगर में St. Paul's का विशाल गिरिजाघर सन्त गोपाल का मन्दिर था। उसकी धनुष्याकृती छत पर मोटे अक्षरों में जो लैटिन प्रार्थनाएँ लिखी हैं उनके आरम्भ में OM (ॐ) अक्षर लिखा हुआ है। उसकी दीवारों पर वाराणसी के गंगाघाट पर भावुक लोग तथा साधु आदि स्नान-सन्ध्या करते दर्शाने वाले चित्र अंकित हैं।

लन्दन में Westminster Abbey नाम का जो दूसरा विशाल गिरिजाघर है, वह भी मन्दिर ही था।

पश्चिम मनस्तर अभय

Westminster Abbey यह नाम 'पश्चिम मनस्तर अभय' ऐसा संस्कृत नाम है। भारत की वैदिक संस्कृति से सुदूर पश्चिम में (यानि इंग्लैण्ड के लन्दन नगर में) वह स्थित है, इस कारण उसके नाम में 'पश्चिम' शब्द अन्तर्भूत है।

आंग्लभूमि में कई गिरिजाघरों को 'मिन्स्टर' और 'अभय' कहते हैं। मिन्स्टर यह 'मनस् + तर' संस्कृत शब्द है। जहाँ जड़ संसार से अध्यात्म के प्रति मन तर जाता है, उस पवित्र देवस्थान को 'मनस्तर' कहने की प्रथा पड़ी। Abbey यह 'अभय' संस्कृत शब्द है। देवमूर्ति की शरण जाने वाला भक्त सारी निजी चिन्ता, भय आदि परमात्मा के हवाले कर निर्भय हो

जाता है। इस प्रकार आंग्लभूमि के गिरिजाघरों के पर्यायी शब्द प्राचीन वैदिक संस्कृति के समय के अभी भी रूढ़ हैं।

शंकरपुरी

भारत में जैसे वाराणसी का काशी विश्वनाथ का मन्दिर बड़ा विख्यात है, उसी प्रकार आंग्लभूमि में शंकरपुरी का शिव मन्दिर ख्यात था। शंकर-पुरी का ही आंग्ल अपभ्रंश 'कण्टरबुरी' (Canterbury) है। इसका विश्लेषण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। Can का उच्चार 'कैन' करने के बजाय 'शं' होना चाहिए (जैसे Cen का 'शेन' उच्चार होता है)। Ter यह 'कर' का आंग्ल अपभ्रंश है। क्योंकि संस्कृत में 'नौका सम्बन्धी' इस अर्थ से 'नौकिक' शब्द बनता है तथापि आंग्लभाषा में उसका उच्चार 'नॉटिक' (Nautic) होता है। उसी प्रकार नायक उर्फ नाईक को आंग्लभाषा में 'नाइट्' (Knight) कहा जाता है। 'बुरी' यह पुरी का अपभ्रंश है। अतः Canterbury यह शंकरपुरी का विकृत उच्चार है।

उस शंकरपुरी के पुरोहित (Archbishop) प्राचीनकाल से आंग्ल-भूमि के प्रमुख धर्मगुरु माने जाते थे। वर्तमान समय में Dr. Robert Runcie पुरोहित हैं। मैंने उन्हें पत्र द्वारा सूचना दी कि छठवीं शताब्दी से पूर्व आंग्लभूमि में जब वैदिक सभ्यता थी तब उस पीठ के पुरोहित शंकर की पूजा करने वाले वैदिक धर्मगुरु थे, तो डॉ० रॉबर्ट रन्सी के ग्रन्थपाल ने मुझे उत्तर भेजा कि "हो सकता है। यह बात बड़ी प्राचीन है। हमारे पास उसका संशोधन करने के लिए योग्य व्यक्ति नहीं है।' वास्तव में बात विद्वानों की कमी की नहीं अपितु आकांक्षा की है। ईसाई बने धर्मगुरु को निजी प्राचीन वैदिक परम्परा सम्बन्धी आत्मीयता या गौरव की भावना जब तक जागृत न हो तब तक वे उसका शोध लेने में समय या द्रव्य लगाना निरर्थक ही समझेंगे। जैसे कोई मुसलमान बना व्यक्ति उसके पूर्वज कभी हिन्दू थे इसका उल्लेख भी टालता रहता है। अतः किसी अन्य संशोधन प्रेमी, सत्यान्वेषी व्यक्ति को Canterbury के शंकरपुरी अतीत का पता लगाना होगा।

इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी The Royal Ancient City of

Canterbury (यानि प्राचीन राजनगरी शंकरपुरी) पुस्तिका में प्रस्तुत है। The official guide published with the approval of the city council by the Canterbury and District Chamber of Trade, St. George's Chambers, 31 George's Place, Canterbury ऐसी उस पुस्तिका की महति है। स्थानीय जन मण्डल तथा जिला व्यापारी परिषद् ने वह पुस्तिका सन् १६६० में प्रकाशित की।

उस पुस्तिका के पृष्ठ ५ पर उल्लेख है कि "स्थानीय राजचिह्न पर लगभग पचास वर्ष पूर्व Ave Mater Anglia यानि एक प्रकार से 'वन्दे मातरम्' यह शब्द लिखे गए, क्योंकि यहाँ का प्रमुख cathedral (देव-स्थान) आंग्लभूमि का प्रमुख धर्मपीठ माना जाता रहा है। सन् ५९७ में रोम नगर के (पोप) सन्त ग्रेगरी द्वारा भेजे गए पादरी सन्त अगस्त्यन् और उसके साथियों ने आंग्लभूमि में ईसाई धर्म प्रसार का कार्य यहीं से आरम्भ किया। आंग्लभूमि के काफिरों को ईसाई बनाने का कार्य उन्हें सौंपा गया था। किन्तु सन् ५९७ तो बड़ा आधुनिक-सा वर्ष है। शंकरपुरी का इतिहास तथा परम्परा उससे बड़ी प्राचीन है। आधुनिक संशोधन तथा उत्खनन से पता चलता है कि यहाँ पूरे नगर का कोट बना हुआ था जो अगस्त्यन् के आगमन से कम-से-कम एक सहस्र वर्ष पूर्व का था। अन्य चिह्नों से पता चलता है कि क्रुस्त-जन्म समय से सैकड़ों वर्ष पूर्व शंकरपुरी व्यापारी केन्द्र था। द्वितीय महायुद्ध में शत्रु की बमबारी से जो दुकान नष्ट हुए उनके लिए दुबारा नींव खोदते समय ऐसे ब्रिटिश राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनके नाम लोग लगभग भूल ही चुके हैं। इसी स्थान पर आंग्ल-भूमि का पहला मन्दिर बना। अतः कहावत यह है कि "प्रत्येक आंग्ल स्त्री-पुरुष ने शंकरपुरी की यात्रा जीवन में कम-से-कम दो बार तो अवश्य करनी चाहिए।"

ऊपर दिए उद्धरण से शंकरपुरी का प्राचीनकाल के आंग्ल जीवन में वाराणसी जैसा महत्त्व था, यह बात स्पष्ट होती है। उसी महत्त्व के कारण ईसाई बनने पर भी शंकरपुरी का पुरोहित ही आंग्ल-भूमि का प्रमुख उपाध्याय माना गया। वही सम्मान उसको आज भी प्राप्त है।

उस नगर के वैदिक चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। जैसे उसकी

प्राचीन इमारतों के बुर्ज अष्टकोण हैं। इमारतों की दीवारों पर अष्टदल कमल अंकित हैं। सन्त अगस्त्यन् गुरुकुल का जो विशाल कमानी प्रवेशद्वार है, उस कमान के दाईं-बाईं ओर वैसे ही कमल चिह्न अंकित हैं जैसे भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतों में हैं।

ब्रिटिश का हिन्दू नव वर्ष दिन

सन् १७५२ तक मार्च २५ ही आंग्ल-भूमि का नव वर्ष दिन माना जाता था। चैत्र शुक्ल प्रदिपदा लगभग उसी तारीख को पड़ती है। वहाँ प्राचीन काल में संस्कृतभाषी वैदिक सम्राटों का शासन रहने से ही तो वैदिक परम्परा का नववर्ष दिन मनाने की प्रथा पड़ी। तिथि क्षय वृद्धि आदि के कारण वैदिक पंचांगों में नववर्ष की कोई निश्चित तारीख नहीं होती। तथापि आंग्ल-भूमि में गुरुकुल शिक्षा बन्द हो जाने पर जब वैदिक पंचांग का ज्ञान नहीं रहा तब अन्तिम नववर्ष दिन २५ मार्च को पड़ा होगा। अतः वही उनके नववर्ष दिन की तारीख बनी रही।

सन् १७५२ में पार्लियामेण्ट द्वारा पारित एक नियम के अनुसार मार्च २५ को रद्द कर जनवरी १ नववर्ष का दिन माना जाने लगा।

स्कॉटलैण्ट में १० से १९ अगस्त, १९७७ को एक विद्वत् सम्मेलन हुआ था। उसमें अमेरिका निवासी भारतीय प्राध्यापक कृष्णदेव माथुर ने एक प्रबन्ध पढ़ा था। उसका शीर्षक था, "भारत की वेधशालाओं का उद्गम"। उसमें ५२ क्रमांक की टिप्पणी में लिखा था कि "पूर्ववर्ती देशों से यूरोप में सन् ६२८ के लगभग जो ग्रहवेध प्राप्त हुए थे उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि अंग्रेजों और हिन्दुओं का उद्गम एक ही होना चाहिए।" (The Edinburgh Review, Vol. 20, पृष्ठ ३८७, सन् १८१० में वह जानकारी उद्धृत है)।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था

ब्रिटेन में हिन्दू शासन समाप्त होने के सैकड़ों वर्ष पश्चात् रोमन सेनानी ज्यूलियस सीझर ने ब्रिटेन में रोमन सेना उतारी। उस समय के उसके संस्मरणों में ब्रिटेन की तत्कालीन जनता में दो वर्ण ऊँचे माने जाते थे, ऐसा लिखा है। वैदिक वर्ण-व्यवस्था में ही ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसे दो

उच्च वर्ण थे। वैश्य और शूद्रों की गणना दो निचले वर्गों में होती थी। अतः ब्रिटेन तथा यूरोप में ईसाई धर्म से पूर्व जो 'हीदन' लोग कहे जाते हैं वे वास्तव में आर्य, सनातन, वैदिक, हिन्दू लोग थे। उनकी 'बुद्धिईशा' (Bodicia) नाम वाली रानी ने रोमन सेनाओं से टक्कर ली थी।

आयुर्वेद

ईसाई बनने से पूर्व यूरोप में वैदिक (हिन्दू) धर्म ही था इसका एक और प्रमाण यह है कि वहाँ आयुर्वेद ही चलता था। किसी शासन की निजी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति हो तो उसी का सरकारी पुरस्कार किया जाता है। जैसे भारत में जब अंग्रेजों का शासन प्रस्थापित हुआ तब उन्होंने अपना विदेशी चिकित्सा शास्त्र ही भारत में लागू करते हुए आयुर्वेद को टाल दिया। इस बात से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि प्राचीन यूरोप में वैदिक शासन था तभी तो वहाँ आयुर्वेद चलता रहा। आयुर्वेद के प्रचलन के कारण ही पाश्चात्य चिकित्सा परिभाषा सारी आयुर्वेद पर आधारित है यह हम एक विभिन्न अध्याय के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में पहले ही बता चुके हैं।

संस्कृत माध्यम

सारे यूरोप में वेदविद्या के संस्कृत माध्यम वाले गुरुकुल होते थे इसी कारण यूरोप की सारी भाषाएँ संस्कृतोद्भव हैं तथा सारी शास्त्रीय परिभाषा भी संस्कृत प्रचुर है, इसका विवरण भी हम प्रस्तुत कर चुके हैं।

विविध स्तरों की परीक्षाएँ तथा उन्हें पारित करने पर प्रदान की जाने वाली उपाधियाँ भी संस्कृत में ही थीं यह भी हम बता चुके हैं।

आंग्ल शब्दकोशकारों का अज्ञान

आंग्ल शब्दकोशकारों ने आंग्ल शब्दों का स्रोत प्रमुखतया लैटिन, ग्रीक और फ्रेंच भाषा माना है। किन्तु वे भाषाएँ स्वयं संस्कृतोद्भव हैं। अतः आंग्ल शब्दों का मूलस्रोत संस्कृत ही माना जाना चाहिए। वैसा न करने से कई समस्याएँ निर्माण होती हैं। उनका उत्तर पाणिनी के व्याकरण से ही प्राप्त हो सकता है। कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर भी संस्कृत व्याकरण से ही मिलता है। जैसे प्रत्येक वर्णमाला का पहला अक्षर 'अ' ही है। यह

कैसे हुआ ? क्योंकि संस्कृत वर्णमाला में 'अ' स्वर सर्वप्रथम है। उसी प्रकार आंग्ल वर्णमाला में जो X (एक्स) अक्षर है वह संस्कृत 'क्ष' है। वैदिक परम्परा में क्षात्र धर्म, क्षात्र परम्परा आदि का बड़ा महत्त्व होने से 'क्ष' एक विशिष्ट अक्षर संस्कृत वर्णमाला में अन्तर्भूत है। उस क्षात्र शब्द का ही अपभ्रंश स्कॉट (Scot) बना है।

अंग्रेजों की पुस्तकों में लिखा है कि आयरलैण्ड के लोगों ने ही आंग्ल-देश की भूमि में बसना शुरू किया, तब से वह स्कॉटलैण्ड बना। यह विवरण जँचता नहीं। आयरलैण्ड के लोगों की बस्ती का स्कॉटलैण्ड नाम पड़ने का भला क्या कारण ? वास्तव में बात यह है कि आर्यधर्मी, सनातन, वैदिक लोगों ने जिस द्वीप में बस्ती की उसको उन्होंने आर्यस्थान नाम रखा। वे लोग आंग्लभूमि के उत्तरी भाग में जब जा बसे तो उन्होंने उस भूमि को क्षात्रस्थान कहा। उसी का अपभ्रंस स्कॉटलैण्ड बना।

वैदिक प्रणाली के अवशेष

आंग्लभूमि में जहाँ-तहाँ वहाँ की प्राचीन वैदिक प्रणाली के अवशेष पाए जाते हैं। जैसे इंग्लैण्ड नामक प्रान्त के उत्तर में रोमन् सम्राट् Hadrian का बनाया कोट है। उसे Wall of Hadrian कहते हैं। उस पर खुदे पद्य शिलालेख में Hieropolis की देवी की आराधना की गई है। Hieropolis यह हरिपुर नाम है। हरि यानि कृष्ण या विष्णु ? ब्रिटिश म्यूजियम में उस भूमि में पाए गए देवताओं की जो मूर्तियाँ या चित्र प्राप्य हैं उनमें दीवारों पर प्रदर्शित दो बड़े चित्र हैं—एक शिवजी का त्रिशूलधारी है, दूसरा भैंसे पर सवार यमराज का है।

कुछ टूटी-फूटी मूर्तियाँ भी हैं। वहाँ के मन्दिरों में दीवार पर या भूमि पर स्वस्तिक, मोर, कमल आदि के जो वैदिक चिह्न पाए गए हैं वे भी ब्रिटिश म्यूजियम में प्रदर्शित हैं।

उन अवशेषों के अतिरिक्त ब्रिटेन में सैकड़ों स्थानों पर पत्थरों के प्राचीन मकानों के ढाँचे पाए गए हैं, उन्हें Cremleigh कहते हैं। वह 'क्रमालय' संस्कृत शब्द है। उन द्वीपों में संचार करने वाले वैदिक क्षत्रियों को क्रम से स्थान-स्थान पर मुकाम करने के लिए आलय आवश्यक थे। वे

क्रमालय कहलाए ।

अन्य कई स्थानों पर बड़े विशाल मन्दिर, महल, बारादरियाँ आदि पाई गई हैं, मित्र यानि सूर्य के मन्दिर पाए गए हैं। यूरोपीय विद्वानों ने उस मित्रस् को ग्रीक देवता कहकर टाल दिया है। वह वैदिक सूर्य देवता है। सूर्य आराधना का गायत्री मन्त्र अभी भी द्रविड़ लोग यूरोप में बड़े आदर और भक्तिभाव से निजी स्थानिक भाषा में किस प्रकार दोहराते रहते हैं इसका विवरण हम दे ही चुके हैं।

स्थान-स्थान पर पाए गए मित्र (सूर्य) देवता के मन्दिरों के अवशेष भी ब्रिटिश वास्तु-संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। कई भग्न मूर्तियों का विवरण देते हुए वास्तु-संग्रहालय ने लिखा है कि ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने वालों ने कई बार उन मूर्तियों को छिन्न-भिन्न किया।

सूर्य-नमस्कार में सूर्य के जो १२ नाम लिए जाते हैं उनमें 'मित्र' नाम सर्वप्रथम आता है। अतः प्राचीनकाल में यूरोप के हर प्रदेश में मित्र मन्दिर और प्रतिमाएँ पाई जाना वहाँ की प्राचीन वैदिक सभ्यता का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

ईसाई लोगों में Xavier नाम क्षत्वीर उर्फ क्षत्रवीर या क्षत्रियवीर का संक्षिप्त रूप है।

शिवलिंग वाली सुवर्ण की अँगूठी

लेफ्टिनेण्ट कर्नल जेम्स टॉड ने मई १३, १८३० को एक प्रबन्ध पढ़ा था। उसका शीर्षक था "स्कॉटलैण्ड के माण्ट्रोज नगर से प्राप्त एक सोने की अँगूठी का विवरण"। वह अँगूठी G. Fitzclarence नाम के व्यक्ति ने Tod के पास भेजी थी।

अँगूठी के साथ भेजे पत्र में Fitzclarence ने लिखा था कि Montrose के समीप Fort Hill नाम के स्थान पर सन् १५५५ के आसपास एक छोटी लड़ाई हुई थी। उसी स्थान से यह अँगूठी प्राप्त हुई। हिन्दू धर्म की थोड़ी-बहुत भी जानकारी रखने वाले को यह अँगूठी हिन्दू वस्तु प्रतीत होती है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि वह हिन्दू अँगूठी उस स्थान पर (यानि

स्कॉटलैण्ड में जहाँ हिन्दुत्व का कोई सम्बन्धी नहीं रहा हो) कैसे पाई गई ? वह कोई धार्मिक ताबीज-सी वस्तु थी, जिसका कोई ज्योतिषीय तथा दैवी रहस्य था। सूर्यदेव बालनाथ का वह प्रतीक था। अतः वह किसी भावुक व्यक्ति की वस्तु रही होगी।"

उस अँगूठी पर शिवलिंग बना हुआ था। प्राचीन ब्रिटेन की वैदिक सभ्यता का वह एक साक्षात् प्रमाण था। भारतीय इतिहास पुनर्लेखन मण्डल (दिल्ली) के सन् १९८० के वार्षिक शोध अंक में उस अँगूठी के दो फोटो प्रकाशित हैं।

उसे सूर्य का प्रतीक मानना अयोग्य है। आंग्ल विद्वानों ने ऐसी कुछ गलत धारणाएँ बना रखी हैं। रोम, असीरिया, सीरिया, बेबीलोनिया, ईजिप्त आदि प्रदेशों से प्राप्त शिव, सूर्य, अम्बा, दुर्गा, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, कृष्ण, विष्णु आदि देवताओं की मूर्तियों को प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति के प्रमाण समझने के बजाय यूरोपीय विद्वान उन मूर्तियों को भिन्न-भिन्न विचित्र परस्पर विरोधी पंथों के चिह्न मानते रहे। अतः इस सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों के मत ग्राह्य नहीं माने जाने चाहिएँ। यूरोप, अफ्रीका, एशिया आदि खण्डों के विविध देशों में आज तक जो भी पुरातत्वीय सामग्री प्राप्त हुई है उसका पुनः अध्ययन तथा मूल्यांकन होना आवश्यक है।

वैदिक पर्व तथा प्रतीक

विश्व भर में जैसी वैदिक मूर्तियाँ, स्वस्तिक आदि प्रतीक पाए गए हैं वैसे उत्सव, पर्व, त्योहार आदि भी प्रचलित हैं। फिर भी उनकी वैदिक विशेषता विद्वानों के ध्यान में नहीं आई है।

Indian Antiquities नाम का अनेक खण्डों का एक ग्रन्थ है। उसके छठे खण्ड में पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि "वसन्त सम्पात का एप्रिल की एक तारीख का पर्व प्राचीनकाल से भारत तथा ब्रिटेन में भी मनाया जाता रहा है।"

"May मास की पहली तारीख को शिव का उत्सव भी भारत और (प्राचीन) ब्रिटेन में होता रहा है।" (पृष्ठ ८९, खण्ड ६)

"प्राचीन ब्रिटेन की धार्मिक परम्परा में गोलाकार ब्रह्मा का चिह्न माना जाता था और चन्द्राकार शिवजी का।" (पृष्ठ २३६, खण्ड ६)

विविध ग्रन्थों में प्राचीन सभ्यता के सम्बन्ध में पाए जाने वाले उद्धरणों के नमूने ऊपर दिए हैं। उनसे यह बात तो स्पष्ट दिखाई देती है कि जहाँ-तहाँ वैदिक संस्कृति के अवशेष पाए जाते हैं। किन्तु यूरोपीय विद्वानों के उन चिह्नों से हमारा अनुमान ठीक नहीं है। जैसे O इस प्रकार का सूर्य बिम्ब तथा ⌣ ऐसी चन्द्र कोर को ब्रह्मा तथा शिव के चिह्न मानना ठीक नहीं। वे सूर्य और चन्द्रमा के प्रतीक या तो पूजा के लिए बनाए जाते या यावच्चन्द्र दिवाकरौ का भाव व्यक्त करने के लिए शिलालेखों पर अंकित रहते थे।

अंग्रेज आर्य ही थे

सन् १८५८ में प्रकाशित India 3000 Years Ago (Indological Book House, वाराणसी द्वारा आधुनिककाल में वह ग्रन्थ पुनर्मुद्रित हुआ है) ग्रन्थ में डा० जान विल्सन ने लिखा है "विद्यमान सारे दर्शनशास्त्री इस बात को मानते हैं कि अंग्रेज तथा आर्य एक ही स्रोत के लोग हैं।"

हम पहले बता चुके हैं कि आर्य एक धर्म या विचार-प्रणाली रही है। आर्य को जाति या वंश समझना ठीक नहीं। उसी प्रकार अंग्रेज भी किसी एक जाति या वंश के लोग नहीं हैं। समय-समय पर ब्रिटिश द्वीपों पर जो विभिन्न देशों के लोग जाते रहे उनके सम्मिश्रण से वर्तमान ब्रिटिश जनता निर्माण हुई है। तथापि, भारतीय और अंग्रेज इनमें प्राचीनकाल से जो समानता दिखाई देती है, उनकी धार्मिक परम्पराएँ तथा मूर्तियाँ आदि एक जैसी दीखती हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि ब्रिटिश लोग भी प्राचीनकाल से वैदिक धर्मी रहे हैं। उसी प्रकार विश्व के अन्य प्रदेशों के लोग भी वैदिक धर्मी रहे हैं। चाहे उनकी वर्तमान पीढ़ियाँ अपने-आपको ईसाई, मुसलमान या यहूदी समझती हों।

विश्वव्यापी हिन्दू धर्म

Indian Antiquities नाम के बहुखण्डीय ग्रन्थ की प्रस्तावना में पृष्ठ ११ से १३ पर ठीक ही लिखा है कि "ऐसा लगता है कि हिन्दू धर्म सारे

प्रदेशों में फैला था। प्रत्येक धर्म में उसके चिह्न विद्यमान हैं। इंग्लैंड का 'स्टोनहेंज', बुद्ध मन्दिर ही तो था। विविध देशों के गणित, खगोल, ज्योतिष, फलज्योतिष, त्यौहार, खेल, तारिकाओं के नाम तथा भाषाएँ—आदि सबका एक ही स्रोत (हिन्दू वैदिक) प्रतीत होता है।

द्रविड़ लोग भारत के ब्राह्मण थे

ऊपर उल्लिखित Indian Antiquities ग्रन्थ के छठे खण्ड में Dissertation on the Indian Origin of Druids (यानि ड्रुइड लोगों के भारतीय स्रोत सम्बन्धी विवेचन) शीर्षक के विवरण का निष्कर्ष है कि "यूरोप खण्ड के ड्रुइड भारत से आए ब्राह्मण थे।"

स्तवनकुंज

क्रुस्तपूर्व इंग्लैण्ड में अनेक पुरातत्वीय अवशेषों में स्टोनहेंज सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग सारे ही विद्वान कहते हैं कि वहाँ एक मन्दिर तथा वेधशाला थी। किन्तु 'स्टोनहेंज' नाम का विवरण किसी ने नहीं दिया। उन सबकी यह धारणा रही है कि आंग्लभाषा में Stone यानि पत्थर; तो उस स्थान पर ऊँची और मोटी शिलाएँ खड़ी हैं अतः उससे स्टोनहेंज (Stonehenge) नाम पड़ा होगा। Stone यानि पत्थर भले ही हो, फिर भी henge का क्या अर्थ है? इस उदाहरण से आज तक के विद्वानों की संशोधन पद्धति के एक दोष का पता लगता है। कई बातों का उन्होंने मूलतः विचार ही नहीं किया। उन्होंने कुछ निजी मनमानी धारणाएँ बना लीं और सारे प्राप्त प्रमाण या तर्क वे खींचातानी से उन्हीं मनमाने सिद्धान्तों से जोड़ते रहे।

अतः हमारा अपना निष्कर्ष यह है कि Stone का अर्थ यहाँ 'पत्थर' लेना ठीक नहीं होगा। Stone यह स्तवन का अपभ्रंश है और henge यह 'कुंज' का अपभ्रंश है। अतः Stonehenge यानि स्तवनकुंज। आंग्ल विद्वानों के अनुसार यहाँ यदि मन्दिर और वेधशाला थी तो ऐसे स्थान का स्तवनकुंज नाम भी जंचता है।

उसी की पुष्टि साथ वाले एक स्थान से होती है। वहाँ से थोड़ी-सी दूरी पर Woodhenge नाम का स्थान है। Wood यानि 'वन'। अतः वह वन-

कुंज स्थान है। इससे यह अनुमान निकलता है कि आंग्ल स्थलनामों में जहाँ भी henge शब्द आए वह 'कुंज' शब्द का द्योतक समझा जाना चाहिए।

स्टोनहेंज से लगभग ७-८ मील दूर Upavon नाम का स्थान है जो स्पष्टतया 'उपवन' संस्कृत शब्द है.

स्टोनहेंज विल्टशायर विभाग के सैलिसबरी विभाग में है। Wiltshire बल्लेश्वर और Salisbury शैलेशपुरी शब्द हैं।

स्टोनहेंज की शिलाओं की रचना तथा उनके आगे-पीछे बने वर्तुलाकार गढ्ढों से सूर्य और चन्द्रमा के उदय तथा अस्त के समय का पता लगाया जाता था, ऐसा विद्वानों का कहना है।

Avinshy नाम के एक रशियन विद्वान का अनुमान यह है कि वहाँ गढ़ी-खड़ी कुछ शिलाओं से एक पंचकोणात्मक तारिका जैसा आकार बनता है। वहाँ शिलाओं के जो अनेक वर्तुल बने हुए हैं वे विविध ग्रहों के द्योतक हैं।

हाल में वहाँ १६ शिलाएँ खड़ी हैं तथा ११ भूमि पर पड़ी हुई हैं। प्रत्येक शिला का वजन लगभग २६ टन है।

उत्खनन द्वारा पता लगाया गया कि बाहर के वर्तुल में ३० शिलाएं होती थीं तथा अन्दर का वर्त्तुल ४०शिलाओं का बना हुआ था। वहाँ खड़ी दो शिलाएँ ६.६ मीटर ऊँची हैं। अन्य १२ शिलाएँ घोड़े के नाल के आकार में खड़ी हैं। उनमें कुछ तो Sarsen यानि sandstone जाति की शिलाएँ हैं तो अन्य नील वर्ण की हैं।

बौद्ध धर्म

Colonel Meadows Taylor नाम के एक ब्रिटिश लेखक का अनुमान है कि ग्रीस देश में बौद्ध धर्म का प्रसार था वैसा ब्रिटेन में भी रहा होगा।

इस ग्रन्थ में हम पहले भी कह चुके हैं कि बौद्ध धर्म कोई अलग मत नहीं था। वह हिन्दू वैदिक धर्म की ही एक नई लहर या नई तरंग था। वेदोपनिषद से भिन्न न कुछ बुद्ध ने कभी सोचा या समझा या समझाया। बुद्ध नवीनतम प्रसिद्ध भारतीय व्यक्ति होने के कारण हिन्दू धर्म के शाश्वत

तत्व बुद्ध के नाम विश्व में सर्वत्र दोहराए जाने लगे। भारतीयों के लिए उसमें कोई नई बात नहीं थी। अतः भारत में बौद्ध मत या परम्परा लुप्त हो गई, किन्तु अन्य देशों में वैदिक धर्म क्षीण हो गया था। वेदादि ग्रन्थों का प्रवचन बन्द हो जाने के कारण बुद्ध के नाम से हिन्दु धर्मतत्वों का विचार होते-होते दूर देशों के लोग समझ बैठे कि बुद्ध ने कई धर्मतत्व चलाए।

हाथी तथा मयूर के चित्र

आंग्ल देशों में हाथी या मोर नहीं होते, फिर भी आंग्ल देश के प्राचीन मन्दिरों के खण्डहरों में इन दो प्राणियों के चित्र खुदे मिले हैं।

Dorothea Chaplin का ग्रन्थ Matter, Myth and Spirit or Keltic and Hindu Links की लिखी प्रस्तावना में Sir Grafton Elliot Smith ने लिखा है कि "स्कॉटलैण्ड के अवशेषों में हाथियों से सम्बन्धित चित्रकारी और धारणाएँ दिखाई देती हैं।"

कृष्ण

डोरोथी चैंपलीन के ग्रन्थ में पृष्ठ २० से २४ पर उल्लेख है कि इंग्लैंड में Penrith की Parish Church के आँगन में नाग का दमन करता हुआ एक देवात्मा का चित्र एक स्थानीय पत्थर पर उत्कीर्ण है। इससे अनुमान यह निकलता है कि गिरिजाघर बनाए जाने से पूर्व वह कृष्ण मन्दिर था।

त्रिमूर्ति

Holy Trinity गिरिजाघर स्कॉटलैंड के Kincardineshire प्रान्त में Dinnacair में स्थित है। उसके पश्चिमी द्वार के बाहर एक शिला होती थी। अब वह Banchory House में है। वह शिला स्वयं मत्स्य के आकार की है और उस पर एक मत्स्य की आकृति भी अंकित है। डोरोथी चैंपलीन की पुस्तक में पृष्ठ २७ पर यह उल्लेख है।

Holy Trinity गिरिजाघर स्पष्टतया वैदिक त्रिमूर्ति का मन्दिर था। किंकर्दिनेश्वर नाम शिवमंदिर का द्योतक है। Dinnacair शब्द दिनेश्वर यानि सूर्यवाचक है। अतः उस परिसर में इन सब देवताओं के मन्दिर थे।

वराहमूर्ति

दक्षिण वेल्स प्रान्त में St. David's Cathedral के अन्दर दीवार पर एक वराह की आकृति अंकित है। उस इमारत का वह भाग बड़ा प्राचीन है। वैदिक दशावतारों में वराह एक अवतार है। इतिहासकार Tacitus ने लिखा है कि Gaelic भाषा बोलने वाले Aestyi जमात के लोगों का भी एक धार्मिक चिह्न वराह होता था। Argyll में Dunadd नाम का जो चट्टानी किला है उसमें भी वराह का चित्र खुदा है। Inverness (स्कॉटलैंड) के समीप Knoek-na-Gael वराह की जो आकृति उत्कीर्ण है उसे देवावतार माना जाता है। उसके ऊपरकी तरफ एक सूर्य बिम्ब खुदा है।

सितम्बर २०, १६२६ के London Times में Herbert Craw का लिखा एक लेख छपा था। उसमें लिखा था कि "स्कॉटलैंड के प्रथम नरेश अर्क (यानि सूर्य) के पुत्र Fargus Mor का राज्याभिषेक Dunadd किले में हुआ। आयरलैंड के अन्तरिम प्रान्त के दलरियादा गाँव से वह आया था। क्रुस्त सन के प्रारम्भिक काल की यह घटना है। यहाँ कई प्रागैतिहासिक समय की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। वह किला उस घटना से पूर्व का बना लगता है। कई वीरों की समाधि पर पत्थर की घड़ी तथा वराह की मूर्ति होती है। Firth of Forth नाम के सागरी तट के समीप Incholm का पवित्र द्वीप है। उसे पवित्र कहा जाता है। अतः निश्चित ही उस पर कोई प्राचीन देवस्थान होगा। वहाँ एक प्राचीन Abbey (अभय) मन्दिर के अवशेष अभी हैं। वे इतने प्राचीन हैं कि स्कॉटलैंड के पूर्वभाग का वह एक आदरणीय स्थान माना जाता है। वहाँ की एक दुकान के द्वार पर वराह की रेखाकृति थी। St. Andrew's (यानि इन्द्र) Church, Penrith, Cumberland एडिनबरो नगर के एक टीले पर स्थित है। इसकी नींव तथा चबूतरा बहुत ही प्राचीन गिना जाता है। यहाँ वराह मूर्तियाँ बनाई गई हैं जो देवरूप मानी जाती हैं। Hounslow (Middlesex) में भी पौराणिक आकार की वराह की रेखाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं। Perthshire (पार्थेश्वर) की Meigle बस्ती में ध्यानस्थ बैठे एक व्यक्ति के पीछे एक वराह की

रेखाकृति है। ऐसी कई शिलाकृतियाँ इस परिसर में और होंगी। (डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक के पृष्ठ ३७ पर ऊपर उद्धृत जानकारी प्राप्त है।)

गणेश

पृष्ठ ४६ पर डोरोथी चॅपलीन ने उल्लेख किया है कि कॅट प्रान्त में मारगेट(Margate)गुफा है। उसमें गणेश की आकृति उत्कीर्ण है। उसमें प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अवश्य योगध्यान, वेद-पाठ आदि किए होंगे। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का एक कालेज Balliol कहलाता है। बल्लाल गणेश का नाम है।

स्कन्द

पौराणिक कथाओं में देवों के सेनापति 'स्कन्द' रहे हैं। Gaelic भाषा में स्कन्दलोक (Scandlok) का अर्थ होता है 'लड़ाकू' और Scandal यानि लड़ाई। इसमें गाल लोगों की वैदिक सभ्यता दिखाई देती है।

आगम

वेदों को आगम या निगम कहा जाता है। आगम का अर्थ होता है 'आना' और निगम यानि 'जाना'। जन्मजन्मान्तर के जीवों के आने-जाने के विषय में मार्गदर्शक साहित्य यानि वेद। ब्रिटेन की एक प्राचीन पवित्र रहस्यमय लिपि का नाम Ogam है। Keltic नक्काशी में Ogam का चक्र कई स्थानों पर अंकित रहता है। South Wales के Margam गिरिजाघर में इसके कुछ नमूने हैं। उस लिपि का Ogam नाम वेदों से सम्बन्धित है। उससे पता चलता है कि प्राचीन ब्रिटेन में वेद-पाठ होता था।

गौ और अम्बामाई

वैदिक परम्परा में गौ को पवित्र माना गया है। ब्रिटेन में कई चट्टानों पर गोमुख खुदा है। डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक में पृष्ठ ४२ से ४५ पर उल्लेख है कि "बड़े प्राचीन समय में भारतीय ऋषि-मुनियों ने अम्बा की आराधना प्रस्थापित की। गत सौ वर्षों में अम्बामाता की मूर्त्तियाँ या रेखाकृतियाँ एशिया, अफ्रीका और यूरोप के कई भागों में प्राप्त हुई हैं।

ग्रीक लोग Demater नाम से जिस देवी का उल्लेख करते हैं वह

देवमातर संस्कृत वैदिक नाम है।

वेल्स तथा Comish भाषाओं का jwawl शब्द संस्कृत ज्वाला शब्द ही है।

सर्प आकृति

डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक में पृष्ठ ७३-७४ पर ब्रिटेन में पाई गई सर्प मूर्तियों का उल्लेख हैं। सर्पों के शिलाचित्र ब्रिटेन में कई स्थान पर पाए जाते हैं। Staffordshire के Alstonfield में क्रूस के कुछ टुकड़े हैं जिनमें कभी-कभी सर्प के फण की आकृति पाई जाती है। Staffc :d नायक घराने का जो चिह्न है उसमें रस्सी की गठान-सी लगी दीखती है। उस रस्सी के अग्र सर्पमुख जैसे बने होते हैं। Argyll के Loch Nell के समीप एक ३०० फीट लम्बा सर्पाकार टीला बना हुआ है। Airlie, Angus, Scotland में एक भूगर्भस्थ भवन में एक सर्प की आकृति बनी हुई है।

डोगरे

भारत में डोगरे नाम की जाति है। डोरोथी चॅपलीन ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८१ पर लिखा है कि पाँचवीं शताब्दी में किसी समय ब्रिटेन के ड्रुइडों का प्रमुख एक Dhogra था। हो सकता है कि कश्मीर के डोरा जमात से उसका सम्बन्ध रहा हो।

कमल की आकृति

पृष्ठ ८३ पर डोरोथी चॅपलीन लिखती हैं कि यद्यपि कमल ब्रिटेन में नहीं उगता, लेनिन स्कॉटलैंड की Pict जमात की प्राचीन नक्काशी में कमल के चित्र दिखाई देते हैं। वेल्स प्रान्त के वादकों के विवाह समय के एक गीत के शब्द हैं—

> कमलदल पर तैरता मदन बैठा।
> लदी नौका में चले महाकाल को देखा!!

Iona के गिरिजाघर में एक खिड़की की जाली कमलदल जैसी बनी हुई है।

स्तम्भ नृत्य

मध्ययुगीन भारत के वसन्तोत्सव में तीन मास तक उद्यान में एक सजा-धजा स्तम्भ खड़ाकर सभी लोग उसके इर्द-गिर्द नाचते-गाते थे। इसी प्रकार इंग्लैंड में भी कई स्थानों पर Maypole के नृत्यगान आदि आज भी होते रहते हैं।

घास से भूमि ढकना

दुर्गापूजा मण्डपों में भारत में कुशा नाम का तृण भूमि पर बिछाया जाता है। वैसी ही एक प्रथा ब्रिटेन में भी है। Westmoreland के Grasmere भाग में St. Oswald गिरिजाघर में अगस्त की पाँच तारीख को या उसके आसपास भूमि पर घास बिछाई जाती है। नॉटिंघमशायर में Ascension Day के पर्व पर भी इसी तरह की प्रथा है।

भारत जैसी ब्रिटेन में भी धारणा है कि कुत्ता यदि मिट्टी खुरचता दिखाई दे तो यह घर में किसी की मृत्यु की अग्रिम सूचना होती है।

यम का पर्व उर्फ सर्वपित्री अमावस्या

स्कॉटलैण्ड में मृत्युदेव को Saman कहते हैं। हो सकता है कि वह दक्षिण भारतीय प्रथानुसार यम का यमन् और यमन् का समन् अपभ्रंश बना हो। वैसे भी यूरोपीय लोगों में जो games नाम है यह yames यानि यमस् का ही अपभ्रंश है। इससे पता चलता है कि यूरोप के लोगों में यम देव की संकल्पना और नाम भी लगभग वही रहा है।

स्कॉटलैण्ड में अक्तूबर ३१ की मध्यरात्रि को यम का पर्व आरम्भ होता है। झाड़ू के लम्बे दण्डों पर सवार डाकनें अंधेरे आकाश में इधर-से-उधर डरावने चक्कर काटती रहती हैं और उसी समय उल्लू, चमगादड़ और काली बिल्लियाँ इधर-उधर घूमती दिखाई देती हैं, ऐसी लोगों की धारणा होती है। भारत में सर्वपित्री अमावस्या का लगभग वही समय होता है। आश्विन मास लगने से पहले जो कृष्णपक्ष होता है उसे पितृपक्ष मानकर उसमें मृत व्यक्तियों का स्मरण और पूजन किया जाता है।

केण्ट

ब्रिटेन के एक भाग का नाम है केण्ट। पश्चिम बंगाल के मिदनापुर

जिले के सागर किनारे को Kauthi इसी कारण कहते हैं। यह उदाहरण देकर डोरोथी चॅपलीन कहती हैं कि केण्ट नाम उसी संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है।

मारगेट की गुफा

ब्रिटेन में एक बड़ी प्राचीन गुफा है जहाँ वेदपठन होता रहा होगा। Thanet के द्वीप पर बनी इस गुफा का पता लगभग १०० वर्ष पूर्व लगा। ब्रिटेन की अन्य गुफाओं की अपेक्षा मारगेट गुफा की कई विशेषताएँ हैं। उसकी कारीगरी अन्दर से बड़ी सुन्दर है। अन्दर की दीवारों पर चित्रकारी है। गुफा का एक प्रवेशद्वार है। उसके अन्दर एक गोल कक्ष है। उसके पार एक चौकोर दालान है और सर्पाकार मार्ग बने हैं। दीवारें, छत और कमानें विभिन्न प्रकार की चित्रकारी से सुशोभित की गई हैं। दीवारों पर हृदय जैसी एक बड़ी आकृति और उसके अन्दर उसी प्रकार की एक छोटी आकृति बनी हुई है। हिन्दू धारणा के अनुसार हृदय के अन्दर हृदय अथवा कमल के अन्दर कमल जीव-चक्र का प्रतीक है। हृदय में रुधिर ले जाने वाली नाड़ी की तुलना ऋषियों ने कमलकलि की डण्डी से की है। एक स्थान पर दो हृदय इकट्ठे बताए गए हैं। शंख और सीप से कहीं-कहीं करी चित्रकारी उस पर दीप का प्रकाश पड़ने से चमक उठती है। चौकोर कक्ष की दीवारों पर चन्द्र, सूर्य तथा तारिकाओं की आकृतियाँ बनी हुई हैं। केण्ट में सूर्यपूजा की प्रथा थी इसी कारण वहाँ के राजचिह्न में एक धवल अश्व सम्मिलित है। वह गुफा सूर्य रूप विष्णु उर्फ नारायण या वरुण को समर्पित है। पृथ्वी को धारण किए हुए विष्णु को बताया गया है। उस पृथ्वी पर त्रिमूर्त्ति रूप मानव-वंश का प्रतीक बना हुआ है। उसके ऊपर सूर्य है। कक्ष के चारों कोनों में शंख चित्रित किए गए हैं।

"मारगेट' गुफा को शंख गुफा कहा जा सकता है। सारे ब्रिटेन में यह गुफा बेजोड़ है। इस गुफा में एक केन्द्रीय स्तम्भ है। स्तम्भ पर कछुए का चित्र खुदा है जो वैदिक परम्परा का प्रतीक है। यहाँ उदीयमान सूर्य, मध्याह्न का चमकता सूर्य और सायंकाल का अस्तमान सूर्य दिग्दर्शित हैं, जिसमें से ज्वाला निकल रही है, ऐसे यज्ञकुण्ड भी दीवारों पर बनाए गए

हैं। इस गुफ़ा में आवाज गूँजती है। कहीं प्रतिध्वनि सुनाई देती है। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में इस गुफा का प्रवेश द्वार इतना सुकड़ा होता था कि एक बार एक ही मनुष्य जा आ सके। भूलभुलैय्या जैसा गुफा का आकार है। गुफा में ईसाई प्रथा के कोई चिह्न नहीं हैं। आंग्लभाषा में अनेक कक्ष की ऐसी रचना को कटकोब (Cotacoub) कहते हैं। वास्तव में वह संस्कृत शब्द है शतकुम्भ। शब्दारम्भ के 'C' अक्षर का उच्चार 'श' करना चाहिए, न कि 'क'। तब स्पष्ट हो जायगा कि वह 'शतकुम्भ' संस्कृत शब्द है। वह गुफा सर्वदा जल से सम्बन्धित एक तीर्थस्थान-सा रहा होगा।

ऊपर दिया वर्णन डोरोथी चॅपलीन के ग्रन्थ के पृष्ठ ११३ से ११५ और २१६ से उद्धृत है। उस गुफा में अवश्य ही कोई प्राचीन गुरुकुल रहा होगा जहाँ शिष्यों की कई पीढ़ियाँ वेद आदि ग्रन्थ पढ़ती होंगी।

डोरोथी ने लिखा है कि ब्रिटेन के स्थलनामों में जहाँ-जहाँ Combe (कुम्भ) शब्द आया है उस स्थान पर अवश्य ही कोई प्रपात या किसी प्रकार का जल अवश्य होता है। केण्ट में Swancombe नाम का स्थान है जहाँ दस सहस्र वर्ष प्राचीन कुम्भ मिले हैं। ब्रिटेन के ऐसे अवशेष लुप्त वैदिक सभ्यता का स्मरण दिलाते हैं।

स्कॉटलॅण्ड के पहाड़ी प्रदेशों में Comb शब्द उन स्थानों को लगाया जाता था जहाँ पहाड़ियों में किसी एक तरफ उत्खनन से चन्द्रकोर जैसा आकार बन गया हो। उस चन्द्रकोर जैसी खाई को Comb कहते हैं। संस्कृत में भी ठेठ वही घड़े या कलसी जैसे आकार का भाव कुम्भ शब्द से प्रकट होता है। इस तथ्य से स्कॉटलैण्ड की प्राचीन भाषा का संस्कृत आधार स्पष्ट हो जाता है।

सर्पग्राम-अहिपुरी

ब्रिटेन में Avebury नाम के गाँव में कई स्थानों पर बड़ी-बड़ी शिलाएँ सर्प की लपेटों के आकार में भूमि पर लगी हुई हैं। एण्डबुरी, अहिपुरी का ही अपभ्रंश है।

Angelsey नाम का जो द्वीप ब्रिटिश द्वीपों में है उसमें शेषशायी विष्णु भगवान की एक विशाल प्रतिमा बनी हुई थी। अब वहाँ केवल उस शेष

की लपेट दर्शाने वाली शिलाएँ बिखरी पड़ी हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु के वर्षों पश्चात् उसके दफनाए शरीर का केवल अस्थिपंजर ही रह जाता है। उसी प्रकार वहाँ केवल उस महाकाय शेष की लपेटों का पत्थरी ढाँचा दीखता है। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं आंग्लेश यानि 'अंगुल देश के भगवान् की प्रतिमा वाला द्वीप' इस अर्थ से उस द्वीप का अपभ्रष्ट नाम अँगलसी पड़ा है।

फटे-टूटे वस्त्र टाँगने का वृक्ष

भारत में कई देवस्थानों पर बबूल के या अन्य किसी वृक्ष पर भावुक लोग फटे वस्त्र लटकाते रहते हैं। ऐसा करते समय मन-ही-मन में वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उन पर आ पड़ा कोई विशेष संकट टल जाए या उनके घर में कभी अन्न, वस्त्र आदि की कमी न पड़े इत्यादि। ठीक यही बात ब्रिटेन में भी होती थी।

स्कॉटलैण्ड प्रदेश के Renfrewshire विभाग के Houston नगर उर्फ Hua's Town में एक पवित्र जल का कुआँ था। माताएँ अपने रुग्ण या दुर्बल बच्चों को उस कुएँ के पवित्र पानी से नहलाने लातीं। उस समय बालक की पीड़ा टले इस हेतु आसपास के वृक्षों पर बड़ी भावुकता से घर का कोई फटा-टूटा कपड़ा टाँग देतीं ताकि रोग वहीं-का-वहीं रह जाए। किन्तु ईसाई धर्म प्रसार का जब दौर चला तो पादरियों ने जनता पर दबाव डालकर वह कुआँ भी बन्द करवा दिया और वृक्षों पर फटे वस्त्र टाँगने की प्रथा भी बन्द करवा दी।

दाह-संस्कार

ब्रिटेन में ईसाई पंथ का प्रसार होने से पूर्व मृतकों का दाह-संस्कार होता था। ब्रिटेन में कई स्थानों पर टीले, आले आदि बने हुए हैं जहाँ अग्नि-संस्कार किए हुए मृतक का भस्म एक मृत्तिका-पात्र में इकट्ठा कर आदर-भाव से सुरक्षित रखा गया है।

बलि-द्वार

पुराणों में असुरों का बलि राजा सर्वश्रुत है। विष्णु ने वामनावतार द्वारा बलि का दमन करके उसे पाताललोक भेजा। ब्रिटेन की राजधानी

लण्डन नगर में Belin's gate नाम का एक नगरद्वार चौराहा है। कहते हैं कि कार्नवॉल प्रान्त का एक राजा Cloton था। उसका पौत्र Belin था। बलिन की मृत्यु पर उसका दाह-संस्कार कर उसकी भस्म एक ब्रांझ धातु के बर्तन में धर दी गई और वह अस्थिकलश जिस नगर द्वार के ऊपर रखा गया उस द्वार का नाम बलिन् द्वार (Belin's gate) पड़ा। इस कथा में तीन मुद्दों का बड़ा महत्त्व है—(अ) संस्कृत नाम बलिन् ही है। राजकुमार का नाम बलिन् होना भी उचित है क्योंकि पुराणों में बलिन् राजा ही था। (ब) उसका दाह-संस्कार हुआ यह भी बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। वैदिक प्रथा दाह-संस्कार की ही थी। (स) एक नगर द्वार के चौराहे में उस राजकुमार का अस्थिकलश रखा जाना भी वैदिक परम्परा का चिह्न है।

हिन्दू तान्त्रिक चिह्न

South Wales के St. David गाँव में Old Bishop's Palace नाम की जो इमारत है उसकी और कुछ अन्य इमारतों की खिड़कियों में जो चक्र तथा चक्र के सोलह भाग आदि नक्काशी बनाई गई है वह हिन्दू तान्त्रिक पद्धति की है। David यह 'देवी का दिया हुआ' इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। अत: ईसापूर्व काल में उस गाँव में मातृदेवी का मन्दिर प्रमुख रहा होगा।

सूर्य चिह्न

ईसाइयों में 'मार्टिन' (Martin) नाम होता है। वह वैदिक सभ्यता का 'मार्तण्ड' यानि 'सूर्य' शब्द है यह हम पहले कह चुके हैं। उसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि ब्रिटेन में 'मार्टिन' घराने का जो चिह्न है उसमें 'गुणा' चिह्न के समान X ऐसे दो डण्डे हैं और एक डण्डे के अग्रभाग में सूर्य तथा दूसरे के अग्रभाग में चन्द्र दिग्दर्शित हैं।

वैदिक परम्परा में सूर्य-चन्द्र इकट्ठे दिखाना 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' का अर्थ प्रकट करता है।

विष्णु के मन्दिरों पर सूर्य बिम्ब के प्रतीक के रूप में एक गोल वर्तुलाकार चिह्न होता है। शिवजी के मन्दिरों पर त्रिशूल होता है। ऐसे चिह्न यूरोप खण्ड में कई प्राचीन गिरिजाघरों पर पाए जाते हैं।

परिक्रमा

पवित्र कुओं को भेंट देते समय केल्ट उर्फ सेल्ट जन उस कुएं की हिन्दू प्रथा की त्रिवार परिक्रमा किया करते थे। इंग्लैण्ड के दो ईसाई सम्राट् Edgar तथा Conute ने उस प्रथा को बन्द करवा दिया।

Galway सागर तट के पास Aran द्वीप है। वहाँ कभी घना जंगल रहा होगा अत: उसका 'अरण्य' नाम पड़ा। उसी का अपभ्रंश 'अरन्' हुआ।

मोरेश्वर

स्कॉटलैण्ड प्रान्त के मोरेश्वर (Morayshire) संभाग में चट्टानों पर बैलों के चित्र अंकित हैं। मोरेश्वर (कार्तिकेय) का नाम होने से उस विभाग में अवश्य ही गणेश, शिवजी आदि के मन्दिर रहे होंगे।

वैदिक यात्राएँ

St. Nicholos चर्च में एक प्राचीन ईसापूर्व पर्व की स्मृति में मई (May) मास में पड़ने वाले पहले सोमवार तथा मंगलवार को यात्रा होती थी। दक्षिण स्कॉटलैण्ड के Peebles नगर में अभी भी एक Beltana उत्सव जून २१ (जिस दिन दिनमान दीर्घतम होता है) को मनाया जाता है। उसमें एक जुलूस निकलता है और कुछ धार्मिक विधान किए जाते हैं, मेला लगता है और मिष्ठान्न भोजन भी किया जाता है। Peebleshire (पीपलेश्वर) पहाड़ियों पर कई किले हैं उनमें से दो प्रमुख किलों के नाम हैं Cademur तथा Cardrona (सरद्रोण)।

ईसापूर्व समय में Peebles में एक धार्मिक रोग चिकित्सा केन्द्र होता था। उसके आसपास पवित्र माने गए कई कुएं हैं। वे कुएँ विविध वैदिक देवताओं के नाम से प्रसिद्ध थे। अब उन नामों को टेढ़ा-मेढ़ा ईसाई रूप St. Mungo, St. Ronan इत्यादि दिया गया है।

यहाँ भू-स्तर के नीचे १२ फुट गहराई में एक तालाब बना हुआ है। उसमें ३६ स्तम्भ हैं। उस तालाब में ७०० गैलन पानी रह सकता है। वहीं समीप में घोड़े की नाल के आकार की एक खाई-सी बनी है जिसमें एक मीठे पानी का झरना तथा दूसरा गन्धक वाले जल का झरना है। ब्रिटेन में इस प्रकार के कई पवित्र कुएँ हैं। ऐसा ही एक कुँआ Perth (पार्थ) नगर में है।

स्कॉटलैण्ड में समय-समय पर जो युद्ध हुए और ईसाई प्रचारकों ने जो तोड़-फोड़ की उसमें वैदिक सभ्यता के लगभग सारे ही तीर्थस्थान नष्ट किए गए। St. Andrew यह ईसाई दिखने वाला नाम मूलतः 'इन्द्र' है। St.Andrews इस सागर तटवर्ती नगर में इन्द्र का देवालय प्रमुख था। ईसाई तोड़-फोड़ में जो वैदिक मन्दिर भंग किए गए उनके पत्थर वहाँ के सागर तट पर की गोदियों में लगे देखे जा सकते हैं। Galloway जिले में जितने भी वैदिक देवस्थान थे; उन्हें नष्ट किया गया और वैदिक मन्दिरों को ईसाई गिरिजाघर बना दिया गया।

विध्वंस करने वाला John Knox

John Knox नाम का एक कट्टर ईसाई प्रचारक था। Knocker यानि 'तोड़-फोड़ करने वाला' ऐसी उपाधि उसकी करतूतों द्वारा उसके नाम के साथ जुड़ी हुई है। Perth नगर में ईसाई पन्थ प्रसार हेतु लोगों को उकसाने वाला एक भाषण देकर उसने एक रात्रि में सारे वैदिक मन्दिर तुड़वाए। लन्दन नगर में स्थित विशाल St. Paul's (सन्त गोपाल मन्दिर) लगभग उसी समय हथियाकर गिरिजाघर बनाया गया।

सरस्वती मन्दिर

Staffordshire जिले में प्राचीन वैदिक मन्दिरों के कई अवशेष हैं। ब्रिटिश दन्तकथाओं में एक White Goddess (गोरी देवी) का बार-बार उल्लेख आता है। वह देवी सरस्वती थी। Robert Graves नाम का एक आंग्ल कवि है। उसकी एक White Goddess नाम की पुस्तक है, उसमें उसी सरस्वती का वर्णन है।

पवित्र नदियाँ

डोरोथी चॅपलीन ने लिखा है कि गंगा के अनेक नामों में से एक Dhur है। वेल्श भाषा में जल को dwr लिखा जाता है जो Dhur का ही अपभ्रंश है। यह धारा शब्द से सम्बन्धित है। केल्ट लोग नदियों को वैदिक परम्परा के समान स्त्रीलिंगी देवी स्वरूप ही माना करते थे। फ्रेंच भाषा में भी Tamise शब्द संस्कृत 'तमसा' समान स्त्रिलिंगी ही है। तथापि आंग्लभाषा

में Thames नदी को Father यानि 'पिता' का मान दिया जाना, ईसाई मोड़ हो सकता है।

एसेक्स् (Essex) जिले में जो नदी है उसे 'हुगली' ही बोलते हैं। लिखने में उसे Ugley लिखा जाता है।

डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक में पृष्ठ १३८ पर उल्लेख है कि "कईयों को पता नहीं होगा कि संस्कृत में Margharita का अर्थ होता है मोती। मॅक्रिडल ने ग्रीक इतिहास ग्रन्थों का जो आंग्ल अनुवाद प्रकाशित किया है उसमें अलेक्झॅडर के आक्रमणों के वर्णनों में उस शब्द का उल्लेख है।"

ईसाई बने यूरोप में कई स्त्रियों का नाम 'मार्गारीटा' लिखा जाता है। उसके दो और संस्कृत अर्थ बनते हैं। एक है 'मार्गरता' यानि 'किसी अच्छे मार्ग में रत' तथा 'मार्ग-ऋता' यानि जिसका मार्ग 'ऋत' यानि 'सत्य' का है।

मनु प्रदेश

ब्रिटेन में कई प्रदेशों से मनु का नाम जुड़ा हुआ है। एक है Isle of Man (मनुद्वीप), दूसरा है स्कॉटलैण्ड प्रान्त का Slamarnan जिसका अर्थ है 'मनु का पठार' तथा Checkmannan (स्कॉटलैण्ड का अल्पतम जिला) यानि मनुप्रस्तर। प्रोफेसर वाटसन के दिए हुए वे अर्थ हैं।

Edinburgh यह स्कॉटलैण्ड प्रान्त की राजधानी का नगर है। उसके सार्वजनिक ग्रन्थालय में सन् १७३१ का जो नक्शा है उसमें लिखा है कि स्कॉटलैण्ड के पश्चिम में जो द्वीप हैं उनमें Islay नाम का द्वीप है। वह वास्तव में Isle of Ila का संक्षेप है। मनु की पत्नी का नाम इला था। Sutherlandshire (सुन्दर स्थानेश्वर) जिले में Helmsdale नगर तथा Helmsdale नदी, दोनों से 'इला' का नाम जुड़ा हुआ माना जाता है।

वेदानांपुरम्

डोरोथी चॅपलीन के अनुसार Scotland प्रान्त की राजधानी Edinburgh उर्फ Edinborough का अर्थ है वेदों का नगर। वह ठीक ही कहती हैं। हम उस नाम का विश्लेषण भी कर दिखा सकते हैं। यूरोप में वेद शब्द का अपभ्रंश Edda हो गया था। अतः 'वेदानांपुरम्' शब्द एद्दानांपुरम्

होकर Edinborough तथा Edinburgh लिखा जाने लगा। भारत का हस्तिनापुर भी तो हस्तिनापुरम् होता था।

पुर अथवा पुरी

ब्रिटेन में Borough उर्फ बर्ग (Burgh) शब्द 'पुर' का अपभ्रंश है। तथा 'पुरी' का अपभ्रंश 'बुरी' बना। यॉर्कशायर (यानि अर्केश्वर) जिले में Whitby के समीप जो Goldborough नगर है वह 'सुवर्णपुर' है। उसमें तथा पड़ोस के Flamsborough (अग्निपुर) में वैदिक बस्तियों के विपुल अवशेष हैं। Famborough जहाँ बसा हुआ है वह बड़ा प्राचीन स्थान है। उसका गिरिजाघर एक प्राचीन वैदिक मन्दिर था। उसमें जो शिलालेख है वह ब्रिटेन में प्राचीनतम माना जाता है।

ब्रह्मपुर

Cheshire जिले का Bromborough नगर ब्रह्मपुर का अपभ्रंश है। आंग्ल द्वीपों में संस्कृत शिक्षा बन्द होने के पश्चात् जितना अधिक समय बीता उतने अधिक वहाँ के स्थलनामों के उच्चार बिगड़ते चले गए।

आंग्लभाषा में Town का अर्थ होता है नगर। वह 'स्थान' शब्द का अपभ्रंश है।

Scottish Lowlands में स्थित Jedburgh Abbey (यदुपुर अभय) नाम का मन्दिर था। ईसाई प्रचारकों द्वारा उसकी बहुत तोड़-फोड़ करने पर भी वह प्राचीन कला का एक उत्तम नमूना माना जाता है।

विक्रम जैसी राजा ऑर्थर की कथाएँ

भारतीय परम्परा में जिस प्रकार विक्रमादित्य की कई कथाएँ प्रसिद्ध है वैसी ही आंग्ल परम्परा में राजा ऑर्थर की हैं। केल्टिक लोगों का अग्निदेव Aedh उर्फ गौरवर्णी Aedhan का ही अवतार ऑर्थर था ऐसी स्कॉटलैण्ड प्रान्त में लोगों की धारणा है।

विक्रमादित्य का सिंहासन जैसे भारत में प्रसिद्ध है वैसे ही एडिनबरो नगर में राजा ऑर्थर की गद्दी का स्थान प्रसिद्ध है। वहाँ एडिनबरो यानि वेदानांपुरम् नगर का एक प्रसिद्ध चिराग उर्फ दीपस्थान है। उस स्थान की

कई दन्तकथाएँ हैं। वेदों का ज्ञान तेज वहीं से सारी दिशाओं में फैला, ऐसी एक धारणा है। वेदों में जो aidh शब्द आया है उसका अर्थ मॅक्समूलर ने 'मशाल' या 'चिराग' लिया है। एध यानि ईंधन अथवा यज्ञ की समिधा। उस शब्द से व्युत्पन्न कई स्थलनाम ब्रिटेन में पाए जाते हैं।

ईसाईयों का Michael (माइकेल) नाम 'मनु कुल का व्यक्ति' इस अर्थ का है।

Peebles नगर परिषद् में एक चाँदी का बाण प्रदर्शित है। एडिनबरो नगर के Hall of The Royal Archers में वह ९५ इंच लम्बा बाण रखा हुआ है। ईसापूर्व समय की ही वह वस्तु है।

स्कॉटलैण्ड की दीपावली

वैदिक परम्परा का सबसे लम्बा, दर्शनीय तथा हर्षोल्लास वाला त्यौहार दीपावली कहलाता है। उसी का एक अंश Scotland के Hallow E'en उत्सव में जलते दीपों के जुलूस में दिखाई पड़ता है। कछुओं को खोखला बनाकर उन्हें मानवीय चेहरे का रूप या सूर्य-चन्द्र का रूप देकर उनमें दीप जलाए जाते हैं। यह उत्सव जाड़े के दिनों में ही पड़ता है। इस अवसर पर तरह-तरह की Cakes (पकवान) भी बनाए जाते हैं।

धेनु

गाल भाषा की एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक Dun Cow है जो स्पष्टतया धेनु-गौः ऐसा संस्कृत शब्द है।

सन्त देवीदत्त

ब्रिटेन के वेट्स प्रदेश के प्रमुख देव सन्त देवदत्त (St. David) ने घोर तपस्या की। उनके सम्बन्ध में कई लोककथाएँ हैं।

South Wales प्रान्त के त्र्यम्बकेश्वर (Pembrokeshire) जिले के देवस्थान (Dewisland) नगर में कई वैदिक सभ्यता के अवशेष हैं। इस प्रदेश के नाम ऊपर दर्शाए अनुसार पूरी तरह वैदिक परम्परा के हैं।

वैदिक नाट्य

प्राचीन वैदिक परम्परा में नृत्य, नाटक आदि सार्वजनिक मनोरंजन के सारे माध्यम पौराणिक कथानकों पर आधारित होते थे। ब्रिटेन तथा सारे

यूरोप में भी यही प्रथा थी। इस सम्बन्ध में डोरोथी चॅपलीन के ग्रन्थ में पृष्ठ १८५ पर उल्लेख है कि "ब्रिटेन में ईसापूर्व काल में जो सेल्टिक उर्फ केल्टिक जीवन-प्रणाली थी उसमें देवी-देवताओं की लीला बताने वाले नृत्य तथा नाटक हुआ करते थे। उनसे प्रेक्षकों को नीति-धर्म के पालन की शिक्षा प्राप्त होती थी। पाप-पुण्य, धर्म-नीति, त्याग आदि गुणों को मानव रूप देकर उनका नाटक खेला जाता था। उदाहरणार्थ John Neywood का लिखा The Play of the Weather (यानि ऋतु नाट्य) सन् १७३२ में Malvern नगर में खेला गया। उसमें विविध ऋतुओं की मनोरंजक भूमिकाएँ थीं। सन् १७३३ में वह नाटक प्रकाशित किया गया था। उस नाटक का नायक था 'स्वर्गनाथ' यानि इन्द्र। ऋतुमान सम्बन्धी मनोरंजक और हास्यपूर्ण संवाद के द्वारा उस नाटक में बड़ी खूबी से कुछ आध्यात्मिक तत्व प्रतिपादित थे।

वेल्श परम्परा में ॐ

आंग्लभूमि का दक्षिणी भाग इंग्लैण्ड कहलाता है। उसी के ढोली में Wales प्रान्त है। वहाँ की भाषा आदि 'वेल्श' कहलाती है। उत्तर के प्रान्त का नाम स्कॉटलैण्ड है। 'वेल्श' भाषा कई तरह से संस्कृत की निकट सम्बन्धी प्रतीत होती है। George Barrow के अनुसार Cymric की अपेक्षा Gaelic में संस्कृत का मिश्रण अधिक है। संस्कृत जैसे ही वेल्श भाषा में जो-जो अक्षर लिखे जाते हैं उनका ज्यों-का-त्यों उच्चार होता है। वेल्श परम्परा के अनुसार ईश्वर नाम ।।। ही स्वयं पहला अक्षर ॐ उर्फ शब्द था। वे प्रकाश की तीन किरणें हैं। उन्हीं से आगे ज्ञान सरिता वर्णमाला बनी। अ + उ + म् = ॐ शब्द की वही धारणा है। केल्ट लोगों की तथा वेल्श प्रान्त की धारणा के अनुसार साइंस तथा संगीत का उद्गम उसी प्रारम्भिक दैवी (ॐ) ध्वनि से हुआ। इससे यही निष्कर्ष निकलता है प्राचीन ब्रिटेन के लोग ॐ को ही मूल प्रथम दैवी ध्वनि मानते थे।

प्रदीर्घ समास में छिपा वेदपाठ

एक आंग्ल लेखक ने कहा है कि संस्कृत में अजगर जैसी अनेक समासों की लपेट वाली लम्बी-लम्बी शब्द पंक्तियाँ होती हैं। बाणभट्ट के 'कादम्बरी'

ग्रन्थ में वैसी शैली दिखाई देती है। वेल्श में भी कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं। जैसे उस प्रान्त में स्थित एक नगर के नाम में ५८ अक्षर इस प्रकार हैं—

LLANFAIRPWLLGWYNGYLLGOGERYCHW
YRNDROBWLLILANTYSILIOGOGOGOCH

वहाँ के रेलवे स्टेशन के टिकट पर वे सारे अक्षर छपे होते हैं। उनका उच्चार कौन कैसे करे? तथापि उन अक्षरों का 'कलॅनफेर पिजी' (Clanfair Piji) उच्चार माना गया है। वैसा कहने पर टिकट मिल जाता है। वेल्श के पश्चिम में Isle of Anglesey नामक गांव है जो आंग्लेश द्वीप के परिसर में ही है।

ईसाई परम्परा में उस लम्बे-चौड़े नाम का विग्रह इस प्रकार किया जाता है—"St. Tysillo गिरिजाघर के निकट लाल गुफा के समीप जो शीघ्रगति का भँवरा है उसके पास के धवल Hazel वृक्षों के बीच स्थित St. Mary का गिरिजाघर।"

ईसाई पादरियों द्वारा लगाए उस मनगढ़न्त अर्थ के पीछे हमें रहस्य यह प्रतीत होता है कि अति प्राचीन ब्रिटेन में शेषशायी विष्णु के देवस्थान में किए जाने वाले वेदपाठ के कुछ मुखोद्‌गत अक्षर जैसे के तैसे बड़ी श्रद्धा से लोगों ने जैसे लिख रखे हैं वे वैसे-के-वैसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी दोहराए जा रहे हैं।

इसी के जैसा उदाहरण स्याम (थाईलैण्ड) में पाया जाता है। स्याम यद्यपि नाममात्र का बौद्धधर्मी देश है। वहाँ के जन-जीवन पर वैदिक संस्कृति की गहरी छाप है। उनकी मूल राजधानी अयोध्या थी। ब्रह्मी लोगों के हमले में वह तहस-नहस हो गई अतः बॅकॉक राजधानी बसाई गई। उनकी राजधानी की गरिमा का लम्बा-चौड़ा वर्णन इस प्रकार है "क्रुंगथेप महाना खोनोबोनोबोवोर्न रतन कोसीन महिन्तरयूदयया महादिलोकपोप्नोपरतन राजथानी बुरिरोमद् ओम्रझीवास महासतरनामो रूपिमर्न वरसतितसकत्तिय विष्णुकम्प्रसित्।"

इसका अर्थ है "देवताओं का वह नगर अमरपुरी, विविध रत्नों से चमकने वाली इन्द्रनगरी, अयोध्या नरेश की नगरी, चमकीले मन्दिरों की पुरी, राजा के अनेक उत्तमोत्तम प्रासाद और प्रदेशों का प्रमुख नगर तथा

विष्णु आदि सारे देवताओं का धाम।"

हो सकता है कि वेल्श परम्परा में सुरक्षित उन ५८ अक्षरों के समास में वैसा ही कुछ गहन अर्थ हो जो कोई संस्कृत तथा वेदों के ज्ञाता समाधिस्थ अवस्था में ज्ञात कर सके। महाविष्णु तथा त्रिमूर्ति का प्रतिष्ठान, सकल सृष्टि का धाता त्राता परमात्मा की नाभि का यह परम पावन क्षेत्र इस प्रकार का भी कोई वर्णन उन ५८ अक्षरों में छिपा हो। ब्रिटेन में Monmouthshire, Balliol, Cholomondeley आदि कई नाम ऐसे हैं जो संस्कृत में तो बड़े अर्थपूर्ण हैं किन्तु आँग्लभाषा में उनका कोई अर्थ नहीं बनता। उसी प्रकार की ऊपर कही ५८ अक्षरों की पंक्ति है।

ब्रिटिशों के 'कुल' नाम

Old Staffordshire में ऐसे कई घराने या कुल हैं जिनके नाम Paget (पॅजेट्) या Bagot (बॅगॉट) हैं। वे 'भक्त' या भागवत शब्द के अपभ्रंश हैं। भारत में भी उसी तरह के 'भगत' या भागवत नाम पाए जाते हैं।

रॉय नाम ब्रिटिश घरानों का तथा भारतीयों का (विशेषतः बंगाल में) होता है। फ्रांस में भी यह नाम पाया जाता है।

शीलवती के अर्थ से शीला नाम भारत तथा ब्रिटेन दोनों देशों में स्त्रियों को दिया जाता है।

संस्कृत 'सर्वेक्षण' शब्द का संक्षिप्त रूप Survey (सर्वे) आंग्लभाषा में प्रचलित है।

आंग्ल स्त्रियों का Sarah (सरा) नाम प्राचीन वैदिक देवी सरस्वती का संक्षिप्त रूप बनकर रह गया है।

प्राचीन वेल्श शब्द Syr, आधुनिक इंग्लिश 'Sir' दोनों ही संस्कृत 'श्री' के अपभ्रंश हैं।

तालसेन गन्धर्व के पुनर्जन्म की दन्तकथा

वेल्श लोगों में Tellesin उर्फ Taliessin की दन्तकथा है। कहते हैं उसका पुनर्जन्म हुआ था। कृतयुग की प्रथम पीढ़ी में जन्मे विश्वकर्मा,

धन्वन्तरि के जैसा तालसेन गन्धर्व भी था। अगले युगों के मानवों के मार्ग-हेतु तालसेन गन्धर्व का पुनर्जन्म होना स्वाभाविक था।

राजचिह्न

ब्रिटेन के राजचिह्न में राजा का चिह्न नाग, रानी का चिह्न सिंह और कभी Gryffin यानि सिंह-अश्व-भेड़िया आदि के सम्मिश्र रूप का एक काल्पनिक प्राणी होता है। यह सारे वैदिक परम्परा के प्राणी हैं।

St. Andrews (सन्त इन्द्र) विश्वविद्यालय के चिह्न में चन्द्रकोर है जो वैदिक चिह्न है।

Westminster Abbey के Pyx Chappel में कहीं-कहीं दीवारों पर (या भूमि में) नागसर्प की आकृति दर्शायी गई है।

Durham Cathedral की मीनार के प्रमुख दर्शनीय भाग पर Dun Cow यानि धेनु गौ का रेखाचित्र अंकित है। इससे अनुमानतः वहाँ गोपाल कृष्ण का मन्दिर था।

वहीं संस्कृत शब्द हृद् (यानि हृदय) गाल की भाषा Cridhe ऐसा लिखा हुआ है।

हर्टफोर्डशायर जिले के डॉमिंग्टन् (Dormington) नगर में सन् १९११ के सितम्बर मास में एक बंजारे शिशु का देहान्त हुआ। इस पर ८० पौण्ड कीमत की उनकी गाड़ी जिसमें वे यात्रा भी करते और उसी के आसरे रहते भी थे, उसे जलाकर उस चिता में उन्होंने निजी शिशु का दाह-संस्कार किया। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि वैदिक दाह-संस्कार के प्रति उनकी कितनी गाढ़ी श्रद्धा थी। तभी उन्होंने उचित चिता करने हेतु अपने निवास तथा भ्रमण का एकमात्र साधन भी भस्मसात् किया।

पवित्र थाली

यूरोप के लोगों की एक धार्मिक धारणा यह है कि सत्यान्वेषी पुण्यात्मा को ही कृस्त की अन्तिम भोजन की थाली का साक्षात्कार होता है। ज्ञान-साधना में जिसकी एकाग्रता भंग होगी उसे वह पवित्र थाली दीखते-दीखते अदृश्य हो जाएगी। वैदिक परम्परा के भावुक लोगों में इसी तरह की कई धारणाएँ होती हैं।

मनु

वैदिक परम्परा के अनुसार मनु ही मानव जाति के प्रजनेता हैं। पिता जैसे पुत्रों को नीति-नियमों का प्रशिक्षण देता है वैसे ही मनु महाराज ने मानव-जाति के मार्गदर्शन के लिए मनुस्मृति उपलब्ध करा दी। यह मनुस्मृति वैवस्वतमनु कृत नहीं अपितु मनु से लाखों वर्ष पू ब्रह्मा के साक्षात् पुत्र स्वायम्भुव मनु कृत है। अंग्रेजी Man शब्द मनु पुत्र मानव का ही द्योतक है।

डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक में पृष्ठ २१३ पर Isle of Man (यानि मनुद्वीप) के बारे में Canon Kermode का निष्कर्ष उद्धृत है कि "यह बड़ी विचित्र बात है कि हमारे Monks शिलालेखों में जिन-जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है उनमें से एक का भी इतिहास में उल्लेख नहीं है (Zeitschrift fur Celtische Pilalogic, 1897)। St. Andrews विश्वविद्यालय के प्रध्यापक W. A. Craigie, Isle of Man (जिसे Iceland में Mon कहा जाता है) की बाबत कहते हैं कि उसकी षष्ठी विभक्ति Manor है। अत: उसका सम्बोधन 'मनु' होना चाहिए। गाल भाषा के अनुसार षष्ठी का रूप 'मनु' होता है। हिन्दू नीति धर्मशास्त्र कर्ता मनु Iceland की अनेक पौराणिक कथाओं का केन्द्र हैं। उसी प्रकार ब्रिटेन में भी कई जिलों में मनु के नाम का बड़ा प्रभाव दीखता है।

Iceland में वर्तमान समय में बस्ती विरल है। लोग ईसाई बने हैं। किन्तु ईसापूर्व काल में वहाँ के लोग वैदिक धर्मी थे। उनकी भाषा भी संस्कृत का ही एक प्राकृत रूप है। उदाहरणार्थ 'सम्बन्धी' यह शब्द ज्यों-का-त्यों Iceland की भाषा में भी प्रयोग होता है।

मन्मथेश्वर रुद्र

ब्रिटेन का एक जिला मन्मथेश्वर कहलाता है। मन्मथेश्वर शिव का एक रूप 'रुद्र' कहलाता है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि Rudry नाम का एक गाँव मन्मथेश्वर जिले में है। अत: वहाँ का जो प्राचीनतम गिरिजाघर होगा वही रुद्र-शिव का मन्दिर होना चाहिए। इस दृष्टि से यदि ब्रिटिश पुरातत्त्व का पुनरावलोकन किया जाए तो ब्रिटेन के प्राचीन वैदिक देवस्थानों का बड़ी सरलता से पता लग सकता है।

मुनि

डोरोथी चॅपलीन की पुस्तक में पृष्ठ २१६ और २१७ पर कहा गया है कि दक्षिण वेल्श में St. David's नाम का जो धर्मस्थान है उसका प्राचीन नाम मुनि होने से उसका निश्चित ही हिन्दू पुराणों से सम्बन्ध है।

गौरी

Elgin Cathedral का पुराना नाम Chaurykirk है। चौरी चर्च यानि ईसाई पूर्व समय का गौरी मन्दिर। गौरी, शिव की धर्मपत्नी हैं। ठीक उसी शिव के नन्दी, इस जिले के कई स्तम्भों पर रेखांकित हैं।

भारद्वाज

गाल के देव Budwas वास्तव में भारद्वाज थे। भारद्वाज, बृहस्पति के पौत्र थे। भारद्वाज के वंशज द्रोण थे। उन्हीं द्रोणाचार्य के नाम से Cardrona (सरद्रोण) का पहाड़ी किला बना है।

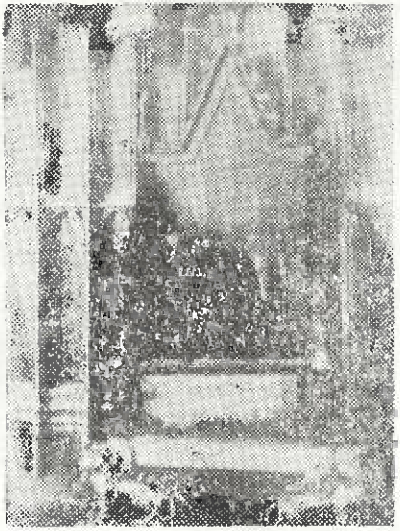
व्यूह

महाभारत में व्यूहों का उल्लेख कई बार आता है। उनमें भी चक्रव्यूह विशेष प्रसिद्ध है। वैसे एक चक्रव्यूह पद्धति के किले का उल्लेख डोरोथी चॅपलीन के ग्रन्थ में है। Scotland के Malvern Hills में Herefordshire Beacon नाम का एक स्थान है। वहाँ शत्रु के हमलों से बचने के लिए एक के अन्दर दूसरा ऐसे पत्थर के कई एक-से-एक ऊँचे गोल कोट बने हुए हैं। इससे दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। एक यह कि महाभारत में वर्णित चक्रव्यूह कपोलकल्पित नहीं है। दूसरा निष्कर्ष यह कि स्काटलैण्ड वास्तव में क्षात्रस्थान होने से वहाँ चक्रव्यूह का नमूना पाया जाना स्वाभाविक है।

ब्रिटिश राजा या रानी का जिस कुर्सी पर राज्याभिषेक किया जाता है उसका चित्र सामने पृष्ठ (२१९) पर है। वह कुर्सी लण्डन नगर में वेस्टमिन्स्टर अॅबे नाम के विशाल गिरिजाघर में प्रदर्शित है।

उसके चार पैरों से चार सिंहों की सुनहरी प्रतिमाएँ जुड़ी हुई हैं। यह वैदिक सिंहासन परम्परा ब्रिटिश राजघराने में ईसापूर्व काल से चली आ

रही है। उन सिंहों की प्रतिमाएँ भी प्राचीन हिन्दू राजचिह्नों में दिग्दर्शित सिंहों के जैसी ही हैं—सुकड़ा-सुकड़ा शरीर चिढ़ी हुई मुद्रा, इत्यादि।



आंग्ल शब्द King (किंग्) यानि राजा भी 'सिंह' शब्द का ही अपभ्रंश है।

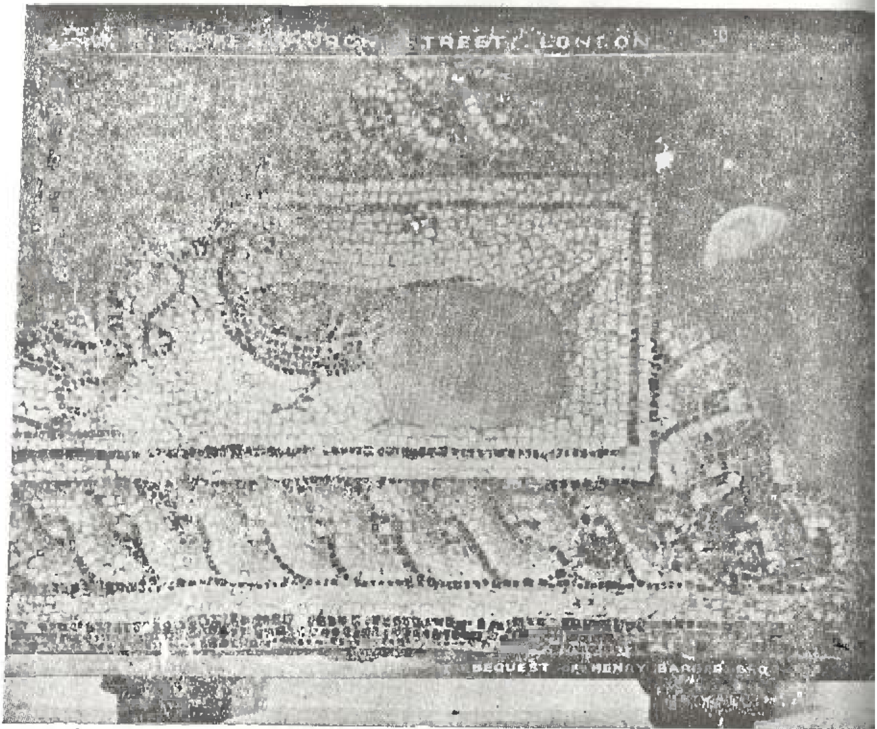
सिंह मूर्तियों से ऊपर की तरफ कुर्सी के आसन के नीचे एक केसरिया रंग की ऊबड़-खाबड़ शिला धरी हुई चित्र में देखें। उसे बड़ा पवित्र माना जाता है। यह शिला प्राचीनकाल से ब्रिटिश सिंहासन में सम्मिलित है। लगभग सन् १२०० से पूर्व का उसका इतिहास अज्ञात है।

वह भारत के किसी राजप्रासाद की टूटी शिला दिग्विजय करने वाले राजाओं के साथ इंग्लैण्ड गई और तब से वहाँ क्षत्रिय शासकों के राज्याभिषेक उसी शिला पर होते रहे। कुछ वर्ष पश्चात् जब राज्याभिषेक के लिए कुर्सी बनाई गई; तब कुर्सी के आसन के नीचे वह शिला रखी गई।

दिग्विजयी क्षत्रिय सेनाएँ देवों के सेनापति स्कन्द का आदर्श रखती

थीं। अतः राज्याभिषेक की उस शिला का स्कन्दशिला नाम पड़ा। आंग्ल अपभ्रंश में उसे स्कॉन शिला (Stone of Scon) कहते हैं।

सत्य, न्याय, त्याग, सेवा आदि गुणों पर आधारित शासन करने की प्रेरणा राजा को मिलती रहे इस भावना से वह केसरी रंग की शिला उस प्राचीन सिंहासन से जुड़ी हुई है।



यद्यपि ब्रिटेन के शीत वातावरण में मयूर नहीं होते तथापि वहाँ के प्राचीन भग्न मन्दिरों में नागों की चौखट में मयूर, स्वस्तिक आदि वैदिक चिह्न होते थे। ब्रिटिश म्यूजियम में प्रदर्शित वैसे एक मन्दिर का एक भग्नावशेष ऊपर के चित्र में दिखाया गया है।

वैदिक परम्परा में मोर आदरणीय पक्षी है। सरस्वती का वाहन मयूर होता है और भगवान कृष्ण का मुकुट मोरमुकुट होता था।

सर्प भी उसी प्रकार कई देवमूर्तियों से सम्बन्धित वैदिक चिह्न है।



ईसापूर्व ब्रिटेन में वैदिक मन्दिरों के खण्डहरों में प्राप्त स्वस्तिक तथा अष्टदल कमल के ऐसे नमूने ब्रिटिश वास्तुसंग्रहालय (म्यूजियम्) लण्डन में प्रदर्शित हैं।



Mary Queen of Scots की ब्राँझ धातु की प्रतिमा लण्डन नगर के Westminster Abbey में प्रदर्शित ऊपर के चित्र में दिखाई गई है।

अल्पकाल राज्य करने के पश्चात् इस कट्टर कॅथलिक पन्थी रानी को प्रॉटेस्टेण्ट पन्थी एलिजाबेथ रानी द्वारा देहदण्ड दिया गया।

पादरी, पुरोहित, राजा-रानी, सरदार, दरबारी आदि अनेक गणमान्य ईसाई व्यक्तियों की मृत्यु-समय की प्रतिमाएँ हाथ जोड़कर परमात्मा की प्रार्थना करते हुए बताया जाना ब्रिटेन की प्राचीन वैदिक सभ्यता का एक ठोस प्रमाण है। ऐसी बीसों प्रतिमाएँ यूरोप के विविध देशों में विद्यमान हैं। कृस्ति पन्थ में हाथ जोड़कर नमस्कार करने की प्रथा यूरोपीय समाज में प्रचलित नहीं है तथापि ईसाई धर्मप्रसार के लगभग १००० वर्ष पश्चात् बनी हुई प्रतिमाएँ भी मृत्यु के समय अनन्यभाव से हाथ जोड़े परमात्मा की आराधना करते हुए या परमात्मा की शरण जाते हुए बताया जाना ब्रिटेन तथा यूरोप की प्राचीन वैदिक सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण हैं।

आधुनिक इतिहास संशोधन में ऐसे मोटे-मोटे दृश्य प्रमाणों के प्रति भी किसी का ध्यान आज तक नहीं गया। प्रचलित संशोधन प्रणाली कितन दोषपूर्ण है? ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

आयरलैण्ड का वैदिक अतीत

आयरलैण्ड आर्यस्थान का यूरोपीय अपभ्रंश है। हो सकता है कि उसे अरण्य स्थान भी कहते हों। उस आयरलैण्ड में वैदिक अवशेष भी विपुल हैं और वहाँ के लोगों के रहन-सहन में वैदिक परम्पराएँ भी दीखती हैं, यद्यपि उन लोगों पर क्रुस्ती विचार-प्रणाली लादे हुए एक सहस्र वर्ष से अधिक समय बीत गया।

The Encyclopaedia of Ireland नाम के आयरिश ज्ञानकोश (सन् १९६८ में Dublin नगर में Allen Figgis द्वारा प्रकाशित) में पृष्ठ ८२ पर उल्लिखित है कि "आयरिश राज परम्परा धार्मिक होती थी। राजा एक प्रकार से प्रजाजनों का पुरोहित माना गया था।"

भारतीय वैदिक परम्परा भी ठेठ वही है। उदयपुर के महाराणा भी अपने आपको परमात्मा का पुरोहित मानते थे।

प्राचीन समय में आयरलैण्ड में १५० रियासतें थीं। प्रत्येक राज्य तुअथ (Tuath) कहलाता था। राजा को 'राय तुअथ' (Ri Tuath) कहते थे। उन सब में प्रमुख राजा (राया) को रायराय (ruiri) कहा जाता था। भारत में भी 'राज राज चोल', 'राजराजेश्वर' या 'राजाधिराज' उसी प्रकार की पदवियाँ होतीं थीं।

समाज में वैदिक संयुक्त कुटुम्ब पद्धति ही प्रचलित थी।

Tuath शब्द देवस्थान का अपभ्रंश है।

सन् ९०८ ईसवी में 'तारा' (तारागढ़) के राजा Flan Sinn ने Cashel के राजा 'पुरोहित' Mac Cuilennain को Belach के युद्ध में

पराजित कर मार डाला। Flan Sinn यह प्रेमसिंह का अपभ्रंश है। Cashel यह 'कौशल' नाम है। Mac Cuilennain 'महाकुलनयन' नाम है।

आयरलैंड के दक्षिण में Ui Neill राज्य का राजघराना Clann Cholmain of Mide कहलाता था। वह कुलिन चोलमान का अपभ्रंश प्रतीत होता है। चोल राजघराने की विविध शाखाएँ प्राचीन विश्व के कई भागों में राज्य करती थीं। इससे यह अनुमान निकलता है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक विश्वसाम्राज्य का विघटन होने पर जो नए राजकुल प्रस्थापित हुए उनमें चोल वंश का अधिकार विश्व के दूर-दूर के प्रदेशों में रहा।

आर्यस्थान की प्राचीन राजधानी तारा

आयरलैण्ड के मीथ (Meath) नाम के जिले में हरी घास से आच्छादित ऊबड़-खाबड़ 'तारा' नाम का एक भू-खण्ड है। भारतीय परंपरा में जैसे हस्तिनापुर, अयोध्या आदि नामों का जो महत्त्व है वही आयरलैण्ड के इतिहास में तारा का है। उस नाम से लोगों की श्रद्धा, आदर आदि भावनाएँ जुड़ी हुई हैं और उस स्थल की अनेक दन्तकथाएँ हैं।

भारत के अजेय मेरु (अजमेर) नगर में तारागढ़ एक पहाड़ी किला है। आयरलैण्ड का 'तारा' पहाड़ी नहीं है। वहाँ कुछ खण्डहर भी नहीं बचे हैं। शायद उखाड़-उखाड़कर लोग उस स्थान से ईंट, पत्थर आदि ले गए होंगे। अब केवल हरियाली की ऊँची-नीची भूमि ही वहाँ दिखाई देती है। तथापि स्थानीय पुरातत्व विभाग ने वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर उस स्थान का महत्त्व दर्शाने वाले सूचनाफलक लगाए हैं। एक विशेषता यह है कि प्रत्येक स्थान को 'रथ' कहा गया है। हो सकता है कि वहाँ विविध स्थानों पर अधिकारी गणों के रथ खड़े होते हों। तारा स्वयं संस्कृत शब्द ही है।

Mayo (मेयो) जिले का Ballintubber Abbey एक प्राचीन गुरुकुल का स्थान है। Mayo, 'माया' शब्द का अपभ्रंश है। Tipperary जिले के Cashel नगर के Cormac's Chappel में प्रवेश द्वार के पास ही दो स्तम्भ हैं जिन पर नक्काशी खुदी है। भारतीय मन्दिरों में ऐसे

ही स्तम्भ होते हैं। जिले का नाम टिपेरारी 'त्रिपुरारि' (शिव) नाम का अपभ्रंश है।

वेद-पाठ

ईसाई पादरियों ने क्रस्ती पाठ पढ़ाना आयरलैण्ड में पाँचवीं शताब्दी में आरम्भ किया। उसके सैकड़ों वर्ष पूर्व भी आयरलैण्ड में साहित्य था। सारे केल्टिक लोगों में ड्रुइड उर्फ द्रविड पुरोहित होते थे। उनका सारा ज्ञान श्लोकों में बँधा हुआ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को रटाया जाता था। इससे स्पष्ट है कि वहाँ गुरुकुल पद्धति की शिक्षा होती थी। जहाँ चाहे वेद, आयुर्वेद, स्थापत्यशास्त्र, मूर्त्तिकला, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि, जो भी विषय हो, उसका सारा ज्ञान श्लोकों में बंधा हुआ गुरु से शिष्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सिखाया जाता था। ईसाई पन्थ का प्रसार होने तक आयरलैण्ड में इस प्रकार वैदिक शिक्षा-प्रणाली ही लागू थी।

आयुध मारण

जिस आयुध से किसी को मारा जाता है उसे संस्कृत में 'आयुध मारण' (या मारण आयुध) कहते हैं। ठीक यही नाम प्राचीन आयरलैण्ड में भी प्रचलित था। आयरलैण्ड की वैदिक सभ्यता का यह बड़ा प्रमाण है।

"The Celtic Druids" नाम का Godfrey Higgins का लिखा ग्रन्थ लन्दन में सन् १८२९ में प्रकाशित हुआ। उसके पृष्ठ lxix पर Higgins Eiramon वंश के Lugh Reobhadear (लव रायभद्र) अधिपति का उल्लेख करते हैं। उस प्रसिद्ध राजवंश के न्यायाधीश छाती पर Iodhan Maran (आयुध मारण) लटकाकर न्यायासन पर बैठते थे। यदि कोई न्यायाधीश (किसी प्रलोभन के कारण) गलत न्याय दे तो वह आयुध मारण उसका गला पकड़ लेता था। उसी प्रकार न्यायालय में गवाह देने वाले व्यक्ति के गले में भी वैसा आयुध मारण लटका दिया जाता ताकि वह झूठ बोले तो वह आयुध गवाह का भी गला दबा देता। अतः प्राचीन आयरलैंड में 'आयुध मारण' की धमकी देना एक कहावत-सी बन गई थी।

वैसा एक 'आयुध मारण' Limerick जिले में Bury नाम के व्यक्ति

की भूमि में हरियाली दलदल में १२ फुट गहराई में दबा हुआ पाया गया। सोने के पतले पत्तर से वह मढ़ा हुआ था।

ऊपर जिस प्रसिद्ध Eiremon वंश का उल्लेख है वह स्पष्टतया आर्य-मानव उर्फ आर्यमनु वंश है। इस प्रकार आयरलैण्ड की परम्परा पूरी सनातन, आर्य, वैदिक, संस्कृत दिखाई देती है।

आजकल Lie detector नाम का यन्त्र होता है। उससे कौन व्यक्ति झूठ कह रहा है उसका पता चलता है। उसी को यदि गला पकड़ने वाली यन्त्रणा लगा दी जाए तो वह साथ-ही-साथ झूठ बोलने वाले का गला भी पकड़ सकती है। हो सकता है कि प्राचीनकाल में ऐसी ही कुछ यन्त्रणा रही हो।

वैदिक भाट-प्रणाली

वैदिक परम्परा में भाट होते थे। वे भाट पद्य में राजा के पूर्वजों का इतिहास सुनाते, युद्ध के समय सैनिकों में और प्रजाजनों में कर्त्तव्यपूर्ति तथा पराक्रम की भावना जगाते थे। भाट को 'बरदाई' (यानि बरदायी) भी कहते थे। जैसे पृथ्वीराज के दरबार में भाट का नाम 'चन्द बरदाई' था। वही दो नाम आंग्लभाषा में पाए जाते हैं। भाट का अपभ्रंश poet (पोएट्) है तथा बरदाई का अपभ्रंश bard (बार्ड) है।

आयरलैण्ड के नरेशों के दरबार में भी ऐसे भाट होते थे। हिगिन्स के ग्रन्थ में पृष्ठ ८३-८४ पर उल्लेख है कि "आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा वेल्श तीनों प्रदेशों के भाटों-सम्बन्धी उल्लेख एक जैसे हैं। आयरलैण्ड के एक नरेश ने भाटों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की उसके लिए वह विख्यात है। उस राजा ने भाटों के लिए एक गुरुकुल स्थापित किया। उस गुरुकुल से प्रशिक्षित भाट प्रत्येक सरदार दरबारी के आश्रित बना दिए जाते। इस प्रकार प्रत्येक दरबारी घराने का इतिहास मुखोद्गत साबुत और जागृत रखा जाता। उनको यह भी आदेश था कि वे प्रत्येक कुल के पुराने दस्तावेज भी इकट्ठे कर सँभालकर रखें और उसी के साथ-साथ नए-नए कागजातों की भी देखभाल करें। Iona (यावन) में प्राचीनकाल में ऐसी ही व्यवस्था की गई थी। आयरलैण्ड के लोग कहते हैं कि उनके स्थानीय द्रविड़ों के गुरुकुल

द्वारा भी वैसी ही व्यवस्था आयरलैण्ड के कई भागों में की गई। कृस्ती पन्थ में जब कुछ लोग प्रॉटेस्टेंट बनकर फूट निकले; उस समय की उथल-पुथल में Iona के दस्तावेज नष्ट हुए। उसी प्रकार गत २००० वर्षों से आयरलैण्ड में भी जो गड़बड़ी रही है उसमें आयरलैण्ड का प्राचीन ऐतिहासिक लेख-साहित्य भी सारा नष्ट हो गया।"

हिन्दू, वैदिक परम्परा में इतिहास नहीं लिखा जाता था, ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं रखे जाते थे, ऐसा जिनका भ्रम हो वे हिगिन्स के कथन के प्रति ध्यान दें। सारे विश्व के वैदिक शासन में भाट लोग इतिहास जतन करने के कार्य के लिए ही नियुक्त किए जाते थे। भाटों के लिखे वर्णन काव्य में होते थे क्योंकि प्राचीनकाल में प्रत्येक शाखा का ज्ञान काव्यरूप ही होता था। हमारी पीढ़ी को भाटों के जो काव्य प्राप्य हैं उनमें यदि कुछ राजाओं के गुणगान ही शेष रहकर तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख नहीं रहा हो तो उसका कारण यह है कि तत्कालीन घटनाओं का महत्त्व या गम्भीरता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आकलन नहीं होगी। किन्तु व्यक्ति के गुण (जैसे वीरता, त्यागभाव या सेवावृत्ति) नई पीढ़ी को चिरन्तन स्फूर्तिदायी हो सकते हैं।

प्राचीन वैदिक विश्व के अरण्य

प्राचीन वैदिक विश्व में हर प्रदेश में लम्बे-चौड़े अरण्य होते थे। उनमें तरह-तरह के प्राणी पलते थे, शिकार किया जा सकता था, आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियाँ प्राप्त की जाती थीं, लकड़ी प्राप्त होती थी, वायु शुद्धि हुआ करती, पर्जन्य आकर्षित होता इत्यादि-इत्यादि। अतः महाभारत आदि प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में दण्डकारण्य, नैमिषारण्य आदि नाम सुनाई देते हैं। वे सारे विश्व में थे। उन्हें केवल भारत के अन्तर्गत अरण्य समझना ठीक नहीं। जैसे ईरान में Daharan, इरानी क्षेत्र आखात का बहरीन (Bahrein) आदि सारे प्राचीन अरण्यों के निर्देशक हैं, उसी प्रकार आंग्लभूमि में आयरलैण्ड को Eirn या Iarne लिखते हैं। वह अरण्य शब्द ही है।

Origin of the Pagan Idols (यानि भगवान मूर्तियों का स्रोत)

नाम के ग्रन्थ के भाग ४, अध्याय ५, पृष्ठ ३८० पर Rev. Faber लिखते हैं कि "गाल और ब्रिटेन के सेल्ट उर्फ केल्ट लोगों का धर्म वही था जो हिन्दुओं का या ईजिप्त के लोगों का था। Cananites, Phrygians Greeks तथा रोमन् लोगों का भी वही धर्म था।"

आगे चलकर Faber ने लिखा है कि "Phoenicians, Anakim, Philistine, Palli तथा ईजिप्शियन् लोगों के राजा लोग सारे कुश के वंशज होने से कुशाइट कहलाते थे। उन्हीं को Septuagent के अनुवादकों ने Ethiopians (Abyssinians) भी कहा है। ग्रीक भाषा में Ethiopians का अर्थ होता है 'काले' किन्तु हब्शी नहीं।"

भाग ३, अध्याय ३ में फेबर ने लिखा है "यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि प्राचीन आयरलैण्ड के लोगों का भी एक झुरमुट था। आयरलैण्ड के लोग तथा इराणी दोनों माता को दग्धा या दुग्धा कहते हैं। Borlase ने भी इराणी और ब्रिटिश जनता के प्राचीन धर्माचार में समानता देखी। ड्रुइड, Mage और ब्राह्मण—इन तीनों जमातों की धार्मिक धारणाएँ एक समान थीं। यह Vallaney, Wilford, Maurice, Davies आदि सारे ही लेखक संशोधक लिख गए हैं।

ऊपर दिए उद्धरणों से इस ग्रन्थ के मूल सिद्धान्त की पूरी पुष्टि हो जाती है। प्राचीनकाल में किसी भी प्रदेश के लोग हों उनकी सभ्यता वही थी जो भारत के ब्राह्मणों की थी। अतः सारे वैदिक धर्मी ही थे।

झरतुष्ट्र अपने समय का एक वैदिक ऋषि ही था। इसी कारण ईरान से आयरलैंड तक उसके नाम की धाक् और छाप थी। अतः पारसी उस समय के हिन्दू थे। इसी कारण तो इस्लाम के छल-बल से बचने के लिए उन्होंने अन्य प्रदेशों में न जाते हुए भारत में शरण ली। अतः इतिहास में जितना भी पीछे जाओ उतना अधिक वैदिक संस्कृति का विश्व प्रसार ही दिखाई देता है।

तारा

आयरलैण्ड के प्राचीन नगर तारा के सम्बन्ध में डोरोथी चॅपलीन ने (पृष्ठ ४०-४१ पर) लिखा है कि "बुध की माता तारा का नाम भारत में

सर्वत्र ज्ञात है। भारत स्थित Kalasan का मन्दिर तारा नाम की किसी राजकन्या ने निर्माण करवाया ऐसा डच प्राध्यापक Dr. Stutterheim का निष्कर्ष है। नालन्दा विश्वविद्यालय के एक ताम्रपत्र में उल्लिखित Kalaṣan मन्दिर के निर्माता राजकुमारी तारा के पति हो सकते हैं। तारा पुराणों में उल्लिखित रणचण्डी है। उसका रूप बड़ा भयानक होता है। उसका वर्ण नीला होता है। तारा को नील सरस्वती कहते हैं। केल्ट उर्फ सेल्ट लोगों में Eithna नाम की विद्या देवी थी। आयरलैंड के तारा नगर के न्यायालयों की अधिष्ठात्री देवी तारा उसी Eithna देवी का दूसरा रूप था।

अपनी पुस्तक के पृष्ठ ४८ पर डोरोथी चॅपलीन ने लिखा है कि "कुछ लोगों के अनुसार Angus Og और Manannan भारत से दूध मँगवाकर Eithna को पिलाया करते। वे गौवें (सुरभी, कामधेनु आदि) दैवी जाति की थीं।

यदि दूध जैसी अल्पकाल टिकने वाली वस्तु प्रतिदिन भारत से आयरलैण्ड पहुँचती थी तो उस प्राचीनकाल में भी यातायात के द्रुत साधन थे; यह निष्कर्ष निकलता है।

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ ६२ पर डोरोथी लिखती हैं कि "आयरलैण्ड के तारा नगर में 'सहस्र सैनिकों का महल' कहलाने वाला एक विशाल भवन था। हिन्दू पुराणों में तारा को रणचण्डी कहा गया है।"

बलप्रस्थ

भारत में जैसे पानीप्रस्थ (पानीपत), सुवर्णप्रस्थ (सोनीपत) आदि नामों के नगर हैं उसी प्रकार प्राचीनकाल में वैसे ही नामों के नगर विश्व के अन्य प्रदेशों में भी होते थे। यूरोप में प्रस्थ का अपभ्रंश fast हुआ है। जैसे Ireland का प्रसिद्ध नगर Belfast बलप्रस्थ नाम का ही अपभ्रंश है। उस नगर के आसपास कई दुर्ग होने से उसका बलप्रस्थ नाम पड़ा जो आगे चलकर 'बेल्फास्ट' बोला जाने लगा।

प्राचीन आयरलैण्ड की वैदिक सभ्यता

Lt. Gen. Charles Vallancey ने Collectania De Rebus

Hibernicus (Craisberry & Campbell 10 Backlane, Dublin द्वारा सन् १८०४ में प्रकाशित) नाम का ग्रंथ लिखा है। उसकी प्रस्तावना में पृष्ठ VIII पर वे लिखते हैं कि "आयरिश तथा वेल्श लोगों की शिकायत है कि उनके दस्तावेज ईसाई पादरियों ने तथा डेनमार्क, नार्वे आदि से आए (आक्रामक) लोगों ने नष्ट किए।"

सारे यूरोप की प्राचीन वैदिक सभ्यता का सबूत इसी प्रकार ईसाई धर्म प्रचारकों ने तथा अन्य आक्रामकों ने नष्ट किया। इसका विवरण देते हुए Vallancey अपनी प्रस्तावना के पृष्ठ XX पर लिखते हैं "ब्रिटेन के ड्रुइडों का धर्म आयरिश लोगों के धर्म पर ही आधारित था और आयरिश लोगों का धर्म लगभग वही था जो ब्राह्मणों का था। ऐसा नहीं होता तो ब्राह्मणों के देवताओं का उल्लेख आयरिश दस्तावेजों में होता ही कैसे।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रिटेन तथा आयरलैंड और गाल, रोम, ग्रीस आदि भागों में जो-जो प्राचीन दस्तावेज थे वे सारे हिन्दू, सनातन, आर्य, वैदिक धर्म के होने के कारण वे ईसाई पादरियों ने नष्ट किए। उसमें हिन्दू वैदिक धर्मग्रन्थ तथा क्षत्रिय राजकुलों के दस्तावेज नष्ट हो जाने से सारा प्राचीन इतिहास लुप्त हो गया। ईसाई पादरी एक तरह के दीमक ही साबित हुए।

Vallancey के ग्रंथ में पृष्ठ २२ पर Sir William Jones का निष्कर्ष उद्धृत है कि "आयरिश भाषा संस्कृत से बहुत मिलती-जुलती है।"

हिन्दू विश्वसाम्राज्य

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ १ पर Vallanceey लिखते हैं, "इसके पूर्व के ग्रन्थ में मैंने उनका (यानि Eire-Coti लोगों का) इतिहास पंजाब से आरम्भ किया था। प्राचीन ग्रीक इतिहासज्ञों ने उन्हें Indo-Scythoe कहा है। वह Scythia साम्राज्य ईजिप्त से गंगा तक तथा इराणी आखात से हिन्द महासागर तथा गंगा तक फैला हुआ था।"

इससे हमारे कथन की पुष्टि होती है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक विश्वसाम्राज्य टूटा। उसी टूटे साम्राज्य के एक बड़े टुकड़े का उल्लेख Vallancey ने किया है। उससे पूर्व उस साम्राज्य में चीन, जापान तक सारे प्रदेश अन्तर्भूत होते थे।

सिन्धु नदी के प्रति आयरिश लोगों की श्रद्धा

वैदिक संस्कृति में सिन्धु नदी को बड़ा सम्मान प्राप्त है। वह सम्मान विविध प्रदेशों से प्रकट होना उन प्रदेशों की प्राचीन वैदिक सभ्यता का एक लक्षण है। उदाहरणार्थ जापान की मूल सभ्यता Shintoism कहलाती है। वह सिन्धु सभ्यता (Sindhuism) का द्योतक है। उसी प्रकार आयरिश भाषा में Seghdu (यानि सिन्धु देश) "बड़ा रमणीय प्रदेश···विश्व के गिने चुने प्रदेशों में से एक···चार नन्दनवनों में से एक माना गया है।" (Vallancey के ग्रन्थ में पृष्ठ २८ पर यह उल्लेख है)।

आयरिश लोगों के हिन्दू देवता

Vallancey के ग्रन्थ के पृष्ठ ३२-३४ पर लिखा है कि "हिन्दुओं के लगभग सारे देवता आयरिश लोग भी पूजते थे। उनके नाम की वेदियाँ आयरलैंड में अभी भी हैं। Dupuis के कथनानुसार आयरिश लोगों को हिन्दू ही कहना चाहिए। Prospectus of an Irish Dictionary नाम के अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना के पृष्ठ XXIII पर १८ देवताओं के नाम दिए हैं जिन्हें Pagan (भगवान) तथा आयरिश तथा ब्राह्मण सारे ही मानते थे। यह उल्लेखनीय है कि आयरलैंड की दो बड़ी-से-बड़ी नदियों के नाम Seanon (Shannon) तथा Suir वही हैं जो भारत की दो बड़ी नदियों के हैं—सिन्धु और सुरनदी (गंगा)। बेबीलोन में जिसे Euphrates कहा जाता है उसका (प्राचीन) नाम भी 'सुर' (गंगा) ही है।"

वैदिक होम-हवन

Vallancey के ग्रन्थ के पृष्ठ ३५ पर उल्लेख है कि "Seanon नदी के Lough Deargh द्वीप पर सात गिरिजाघर और एक गोल मीनार हैं। सभी में होम की अग्नि प्रज्ज्वलित होती थी। इन सप्त यज्ञशालाओं का स्रोत ब्राह्मण परम्परा में ही पाया जाता है। क्योंकि उनका वर्णन इस प्रकार है—"हे अग्नि ! तुम्हारे सप्त ईंधन हैं, तथा सप्त जिह्वाएँ हैं, सात तुम्हारे मुख हैं, सात तुम्हारे प्रियधाम हैं, सात प्रकार के सात यज्ञों में तुम्हारी पूजा की जाती है।" अग्नि को वेदों में सप्तचेता कहा गया है। इसी

कारण वे सात यज्ञशालाएँ हैं जो अब गिरिजाघर बना दिए गए हैं।" (Religious Ceremonies of the Hindus, Af. Ref. Vol. 7)

दुर्गा

"आयरलेंड में दो सरोवरों तथा एक नदी को दुर्गा के नाम दिए गए हैं। एक Donegal जिले में है। दूसरे सरोवर के बीच से Seanon नदी निकलती है। उसी नदी में वे सात गिरिजाघर तथा एक गोल मीनार हैं।" (पृष्ठ ३५, Vallancey का ग्रन्थ)

यम

यम के आयरलेंड में Seomna, Seom, Saman आदि नाम हैं। नरक का स्वामी वही था। प्रत्येक के पाप-पुण्य के अनुसार वह उसे अगला जन्म प्रदान करता है। All Souls Day यानि सर्वपित्री अमावस्या से एक दिन पूर्व यम का दिन आयरलेंड में मनाया जाता है। उस पर्व का नाम है "Oidche Saman"। (पृष्ठ ३९, Vallancey का ग्रन्थ)

हम अन्यत्र बता चुके हैं कि ईसाई लोग जो All Souls Day मनाते हैं; वह स्पष्टतया सारे पितरों का श्राद्ध दिन यानि सर्वपित्री अमावस्या ही है। अत: उससे एक दिन पूर्व यमराज की पूजा होना वैदिक परम्परा के अनुसार पूर्णतया स्वाभाविक है। कृस्ती परम्परा में तो वे दोनों पर्व तर्क-संगत नहीं हैं। अतः ईसाई लोग नाममात्र को एक नया धर्म चलाकर भले ही अपने आपको अलग समझते हों किन्तु उनके त्यौहार, पर्व, परम्परा, परिभाषा इत्यादि सारी वैदिक ही हैं।

वेलेन्सी के ग्रन्थ में पृष्ठ ४२ से ४६ पर लिखा है कि "प्राचीन दस्तावेजों से ऐसा लगता है कि ईसाई बनने से पूर्व आयरलैण्ड के लोग बुध की पूजा किया करते थे। बुध (Budh) तथा दग्धा (Daghdae) आयरिश भाषा में सूर्य के नाम हैं। आयरलैण्ड के दस्तावेजों में पाए गए देवताओं के नाम उससे सैकड़ों वर्ष पूर्व भारत में प्रचलित थे।

आयरलैण्ड नाम संस्कृत 'अरण्य' का अपभ्रंश है, यह हम पहले कह चुके हैं। उसी की पुष्टि उनके जिलावाचक शब्द बन (Bun) उर्फ वन से होती है। उदाहरणार्थ आयरलैण्ड के जिलों के नाम हैं बन-महोन(मोहन);

बन लबी इत्यादि। Mahon जिला 'मोहन' कृष्ण का वाचक है। अतः बन महोन (Bun Mahon) यानि कृष्ण वन तथा Bun Laby यानि वन लबी उर्फ लब का वन इत्यादि।

आयरलैण्ड की प्राचीन भाषा में कपड़ा वाची एक इण्डिया (India) था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आयरलैण्ड को (अर्थात् सारे यूरोप को) वस्त्र भारत से ही जाता रहा। वैदिक पूजा-पाठ में लगने वाले सारे पवित्र वस्त्र भारत से यूरोप भेजे जाते थे।

काली देवी का नाम आयरलैण्ड में प्रचलित था। इसका प्रमाण यह है कि Coal (कोल) यानि 'काल' तथा काल (Cal) यानि मृत्यु इस अर्थ के शब्द आयरिश भाषा में हैं। भारत में भी काला यानि 'श्यामवर्णी' तथा 'काल' यानि 'मृत्यु' ऐसे उन शब्दों के अर्थ होते ही हैं।

लिमरिक (Limerick) जिले के Adoir नगर में कई ईसाई Abbey (यानि 'अभय') मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। उनके परिसर का उत्खनन, अध्ययन एवं निरीक्षण करने पर वे प्राचीन वैदिक मन्दिर प्रतीत होंगे।

ताड़पत्र के दस्तावेज

वैदिक सभ्यता के प्राचीन ग्रन्थ आदि ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे। ठीक उसी प्रकार आयरलैंड में भी प्राचीन दस्तावेज या ग्रन्थ ताड़पत्री पर लिखे जाते थे। इसी कारण आयरिश भाषा में duile ('दल') जैसे 'कमल दल' शब्द संस्कृत की तरह पेड़ के पत्ते का निदर्शक है और पुस्तक के पृष्ठ का भी। आंग्लभाषा में भी leaf (लीफ) शब्द के वही दो अर्थ हैं।

गोलन शिव मन्दिर

वेलेन्सी के ग्रन्थ में पृष्ठ १७९ पर उल्लेख है कि एक टीले पर गोलन गाँव बसा हुआ है। पहाड़ी के तले एक मन्दिर है जिसमें नौ पत्थरों से बने एक वर्तुल के मध्य में एक शिवलिंग है।

शिव गिरिजाघर

Kerry नाम के जिले के Killarney (किला-अर्णव = किलार्णव) नगर में Aghadoe Church (गिरिजाघर) है। उसमें प्राचीन ogham

लिपि में एक शिलालेख है। उसे ईसाई हमलावरों ने छिन्न-भिन्न किया है। उस शिलालेख में वहाँ के देवता का नाम 'सोम' लिखा है। भारत के सोमनाथ मन्दिर की तरह वह आयरलैण्ड का सोमनाथ मन्दिर था। किन्तु ईसाई कब्जे के पश्चात वह गिरिजाघर माना गया है। संस्कृत में 'अद्य' यानि 'पाप' तथा देव यानि भगवान। अतः पाप-पुण्य का निर्णय करने वाले भगवान शिव का वह मन्दिर था। उस गाँव का नाम किलार्णव सागर तट पर बने हुए कोट अर्थात किले का द्योतक है।

गौ छाप सिक्के

वैदिक सभ्यता में गाय, बैल तथा गोवत्स का बड़ा महत्त्व होने के कारण प्राचीन आयरिश सिक्कों पर गौ की आकृति बनी होती थी। Cow of eight groats (आठ ग्रोट वाली गौ) नाम आधा-क्राउन उर्फ दो farthing के सिक्के के लिए दक्षिणी तथा पश्चिमी आयरलैण्ड में प्रचलित था।

वेलेन्सी के ग्रन्थ में पृष्ठ २०२ पर उल्लेख है कि संख्या के आँकड़े प्राचीन आयरलैण्ड में भारतीय पद्धति के लिखे जाते थे।

विविध प्रकार के सिक्कों के लिए आयरिश भाषा में Cears (Kea-rs), Cone (Kine), Cios (Kees), Capar (Kepar), Mal and Ana नाम हैं। भारत में कौड़ी, कर्पदिक, पैसा तथा 'आना' आदि शब्द थे जो ऊपर कहे कुछ आयरिश नामों से मिलते हैं।

तिथि के अनुसार पर्व

वैदिक परम्परा में सारे पर्व, त्यौहार आदि चन्द्रमा के भ्रमण के अनुसार सिद्ध होने वाली तिथि पर आधारित होते थे। प्राचीन आयरलैण्ड में भी वही प्रथा थी।

राजघराने के रत्न, गहने आदि

प्राचीन आयरिश राजा लोग वैदिक क्षात्र परम्परा के होने के कारण वे जो गहने, रत्न आदि पहना करते थे वे हिन्दू राजाओं के गहनों के समान

ही थे, जैसे कर्णकुण्डल, बाजूबँध, गले में सुवर्णमाला, अँगूठियाँ इत्यादि। कुछ के नाम भी भारतीय ही होते थे। आयरिश स्त्रियों की केश बाँधने की पद्धति तथा गहने भारतीय स्त्रियों जैसे ही होते थे।

"आयरलैण्ड के Tipperary (त्रिपुरारी) प्रदेश के कलन दलदल (Bog of Cullen) में जो गहने पाए गए वे विद्वानों के निर्णयानुसार भारतीय बनावट के लगते थे। कुछ लोगों का अनुमान था कि श्रीरंगपट्टणम् में टीपू सुल्तान की मृत्यु के पश्चात उसके जनानखाने के गहनों की तथा टीपू के खजाने की जो लूट हुई उनमें से वे गहने होंगे। किन्तु अधिक बारीकी से जाँच करने पर निर्णय हुआ कि वे भारत के बने गहने नहीं थे। तात्पर्य यह है कि प्राचीन आयरिश गहने भारतीय वैदिक परम्परा के ही होते थे।" (पृष्ठ २४७, वेलेन्सी का ग्रन्थ)

देवमन्दिर के जवाहरात

आयरलैण्ड में Athlone गाँव के समीप क्रुस्तपूर्व के समय क मन्दिर तथा सूर्यपूजा के स्थान हैं। भक्तजन निजी सम्पत्ति मन्दिरों में देवमूर्ति पर चढ़ा देते थे। अत: प्राचीन मन्दिरों में आधुनिक बैंकों जैसी भरपूर सम्पत्ति हुआ करती। पुजारीगण भी बैंक कर्मचारियों जैसे ही उस सम्पत्ति के लेन-देन का हिसाब रखा करते थे। ईसाई पादरियों के हमलों के समय मन्दिरों के भक्तगणों द्वारा मन्दिर के परिसर में गाड़ दिए गए सोने के कवचु, मुकुट आदि पाए गए हैं।

आयरलैण्ड का रामदुर्ग और राम पुरोहित

Shell Company's Guide to Irelend नाम की पुस्तक में पृष्ठ २६८ पर एक उपयुक्त लेख है। वह ग्रन्थ Lord Killanin व Michael V. Duignan (Eubury Press, London में सन् १९६७ में छपा) इन दो व्यक्तियों ने लिखा है। उसमें Gorey जिले के विवरण में उल्लेख है कि "Wexford नगर से एक मील उत्तर में एक Ramfort House (रामदुर्ग गृह) है। सन् १७५१ में वह बनाया गया। उस इमारत में दूसरे स्थान से लाया हुआ एक शिलालेख रखा हुआ है। Fern's नगर में Bishop's Palace नाम का जो पुरोहित का महल है, उसका वह शिला-

लेख है। वह महल वयोवृद्ध पुरोहित थॉमस राम (Thomas Ram) ने सन् १६३० में बनवाया। उस पुरोहित महल के निर्माण का वह काव्यमय शिलालेख इस प्रकार है—

This house Ram built for his succeeding brothiers
Thus sheep bear wool not for themselves but others

इसका अनुवाद होगा—

मेरे पश्चात आएँगे जो नर। उनके लिए राम ने रचा यह घर।
जैसे ऊन देते हैं जो भेड़ बिचारे। दूसरों की सन्तानों की शीत निवारे॥

आयरलैण्ड में Killanin, Kilpatric आदि स्थानों के या व्यक्तियों के नाम हैं जो 'किला', 'किलेदार' आदि के द्योतक हैं।

ज्योतिष

वेलेन्सी के ग्रन्थ में पृष्ठ ३१५ पर उल्लेख है कि "आयरिश पंचांग का एक पत्ता मेरे पास है। वह भारतीय तथा अरबी पंचांगों से पूरी तरह से मिलता था।" इस कथन से हमारे इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्त की पूरी तरह से पुष्टि होती है कि ईसापूर्व समय में सारे विश्व में वैदिक सभ्यता ही थी।

ईसाई पन्थ प्रसार से विद्या-प्रणाली खण्डित हुई

लगभग १८वीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी तक पाश्चिमात्य ईसाई यूरोपीय राष्ट्रों का विश्व के बहुत बड़े हिस्से पर प्रभुत्व स्थापित हुआ। तबसे उन्होंने ऐसा प्रचार करना आरम्भ किया कि ईसाई धर्म में ही ऐसा कोई जादू या शक्ति है कि उससे ज्ञान, विद्या, सैनिक शक्ति, साम्राज्य आदि का उत्तरोत्तर अधिकाधिक विस्तार होता रहता है। यह धारणा सर्वथा निराधार है। ईसाई धर्म तथा इस्लाम दोनों छल-बल से लोगों पर थोपे गए। वे किसी विशेष आन्तरिक गुणों के कारण बढ़ते चले गए हों; ऐसी बात नहीं है।

इस सम्बन्ध में वेलेन्सी के ग्रन्थ के पृष्ठ ३१५ पर कही बात विचारणीय है। वे लिखते हैं कि "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आठवीं शताब्दी में आयरलैण्ड के गुरुकुलों में पृथ्वी गोल है ऐसा पढ़ाया जाता था जबकि

यूरोप के अन्य प्रदेशों के लोग विस्मृति या अज्ञानवश इस तथ्य से अपरिचित थे।"

यूरोप में ईसाई धर्म का प्रसार होने से पूर्व ड्रुइड लोगों के चलाए गुरुकुल (महाभारतीय युद्ध के विनाश के पश्चात्) जैसे-तैसे चल रहे थे। किन्तु ईसाई प्रचारकों ने जो तोड़-फोड़ तथा मार-काट मचाई उससे वे ड्रुइडों के चलाए गुरुकुल भी नष्ट हो गए। यूरोप के वे गुरुकुल नष्ट होने पर पृथ्वी गोल है आदि तथ्य लोग भूलकर देखा-देखी पृथ्वी समतल मानने लगे। आयरलैण्ड द्वीप अलग बना रहने से उसमें इसाइयों का दबाव पड़ने में कुछ विलम्ब लगा। अतः वहाँ द्रविड़ों द्वारा चलाए गए गुरुकुल कुछ अधिक अवधि तक चलते रहे। इसी कारण आयरलैण्ड के लोगों को जो वैदिक ज्ञान था, वह यूरोप के अन्य प्रदेशों के लोगों को नहीं रहा।

आजकल विद्यालयों में जो पढ़ाया जाता है कि लगभग ४०० वर्ष पूर्व ही गैलीलियों ने प्रथम बार यह शोध लगाया कि पृथ्वी गोल है और वह सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती रहती है, वह गलत है।

गैलीलियों के समय तक पूरे यूरोप में ईसाई धर्म फैले पाँच सौ वर्ष बीत चुके थे। यदि ईसाई धर्म में ही ज्ञान प्रसार का कोई जादू होता तो यूरोपीय जनों को पृथ्वी के वर्तुल आकार जैसी सामान्य बात इतनी प्रदीर्घ अवधि तक अज्ञात क्यों रही? अतः ऐसे यूरोपीय ईसाई प्रचार के ढंग से लोगों को सावधान रहना चाहिए।

एक ईसाई पादरी ने तो ऐसा आज्ञापत्र निकाला था कि इस पृथ्वीलोक का निर्माण ईसापूर्व वर्ष ४००४ में हुआ जबकि वैदिक पंचांगों के अनुसार उस बात को लगभग दो अरब वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। हिन्दू लोगों के बिखरने के पूर्व ही उनके पुरखों ने वैदिक पंचांग चलाया, वह कोई ग्रीक या अरब लोगों का चलाया नहीं है, ऐसा प्रसिद्ध आंग्ल विद्वान Sir William Jones का निष्कर्ष है। उनका यह कथन पूरी तरह सही है। मानव जाति के निर्माण से ही वह पंचाँग चलाया गया है। तब से वही पंचाँग अखण्ड चलता रहा है। आयरलैण्ड, अर्बस्थान, ग्रीस आदि प्रदेश के लोग वैदिक सभ्यता के भागी होने से उनके व्यवहार भी उसी पंचांग के अनुसार चला करते थे। इसका एक छोटा प्रमाण आयरिश भाषा के reoght शब्द में

पाया जाता है। वह संस्कृत 'रात्रि' शब्द है।

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ २८४ पर वेलेन्सी ने लिखा है कि "खगोल ज्योतिष के प्रसिद्ध ज्ञाता Barrow ब्राह्मणों द्वारा बनाए पंचांग का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दू धर्म सारे विश्व में फैला था, स्टोनहेंज, बौद्ध मन्दिर था तथा खगोल ज्योतिष, फल ज्योतिष, अंकगणित, पर्व तथा त्यौहार, खेल आदि सबका उद्गम हिन्दू धर्म ही है।"

इससे हमारे सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि मानव की निर्मिती के साथ ही वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत भाषा का निर्माण हुआ। अतः सारी विद्या कला, धर्मविधि, ज्ञान आदि का वही एकमात्र स्रोत है। ताश का खेल, शतरंज तथा हितोपदेश, पंचतंत्र आदि जैसे बाल साहित्य का विश्वप्रसार आदि कई छोटे-मोटे प्रमाण भी यही बात सिद्ध करते हैं।

यूरोप में जो बंजारे (gypsie) लोग हैं वे भारत के निवासी थे। उनके कारण यूरोप में भारतीय सभ्यता के कुछ अंश दिखाई देते हैं। यह बात हमारे सिद्धान्त से पूर्णतया भिन्न है। उस घटना का हमारे सिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नहीं। महमूद गजनवी, गौरी आदि मुसलमान आक्रामकों ने पाँच-छः सौ वर्ष भारत में आतंक मचाया। तब जिन-जिन लोगों के घरबार उजड़ गए वे मारे-मारे घूमते-घूमते यूरोप में जीव-रक्षणार्थ चले गए। तथापि वे वहाँ एक पराई जमात के नाते अलग-सा जीवन बसर कर रहे हैं। यूरोपीय उन्हें हीन समझते हैं।

इस प्रकार किसी विपदा के कारण एक प्रदेश के लोगों द्वारा दूसरे प्रदेश में शरण लेने से जो थोड़ा-बहुत जबरदस्ती पड़ौसीपन निर्माण होता है वैसे सम्बन्धों का इस ग्रन्थ में कोई स्थान नहीं है।

इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य पाठकों को यह विदित कराना है कि वेद, वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत भाषा ही विश्व के आरम्भ से सारे मानवों की विरासत रही है।

आंग्लभाषा का संस्कृत स्रोत

भारत पर लगभग २०० वर्ष अंग्रेजों का अधिकार रहने के कारण, भारतीय विद्वानों का अन्य यूरोपीय भाषाओं से कहीं अधिक आंग्लभाषा से परिचय हुआ है। अतः आंग्लभाषा को केवल एक उदाहरण मानकर हम इस अध्याय में यह बता देना चाहते हैं कि आंग्लभाषा भी संस्कृत भाषा का उसी प्रकार का प्राकृत संस्करण है जैसे हिन्दी, बंगाली आदि भारतीय भाषाएँ हैं।

इस अध्याय में दिए विवरण से पाठकों को यह भी जान लेना चाहिए कि अन्य यूरोपीय भाषाएँ ही नहीं अपितु विश्व की कोई भी भाषा संस्कृत की ही पुत्री है, क्योंकि संस्कृत भाषा में लिखे वेद ही मानव का मूल ज्ञान-भण्डार हैं। वेदों के शब्द ही मानव की पहली ध्वनि रही है। अतः संस्कृत ही मानव की सर्वप्रथम देवदत्त भाषा है। अन्य भाषाएँ सारी संस्कृत शब्दों के ही विकृत उच्चारों से बनीं।

इस तथ्य को न जानते हुए आंग्ल, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, अरेमाइक हिब्रू, स्वाहिली, अरबी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं के शब्दकोश तैयार करने वाले विद्वानों ने उनके अपने शब्दों की व्युत्पत्ति कही-सुनी बातों पर अण्ट-सण्ट बताते रहने का रवैया अपनाया है। उसे त्यागकर विविध शब्द-कोषकारों को उनके शब्दों का स्रोत संस्कृत में ही ढूंढ़ना चाहिए। अतः विश्व इतिहास पुनर्लेखन कार्य में सारी भाषाओं के शब्दकोषों का पुनर्गठन कार्य भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं करने से तमिल आदि कुछ भाषाओं के दुरभिमानी जन ऐसा प्रचार करते रहते हैं कि उनकी भाषा संस्कृत से भी पुरानी है। इस प्रकार अपनी-अपनी भाषा का झण्डा लहराते

हुए विश्व की मूल भाषा सम्बन्धी विवाद में कूद पड़ना बुद्धिमानी नहीं कहलाती। उन्हें यह बताना होगा कि उनकी भाषा कब और कैसे निर्माण हुई? वह भाषा बोलने वाला पहला व्यक्ति भाषा कैसे और किससे सीखा ? इत्यादि।

ऐसे प्रश्न पूछे जाने पर संस्कृत ही एकमेव भाषा है जो उन सारे प्रश्नों की कसौटी पर पूरी उतरती है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद, स्थापत्य, स्तोत्र, जप-जाप, मन्त्र-तन्त्र आदि सारी विद्या शाखाओं का प्राचीनतम साहित्य उसी संस्कृत भाषा में होना यही सिद्ध करता है कि संस्कृत ही समस्त मानवजाति की मूल भाषा रही है।

आंग्लभाषा भी संस्कृत की ही एक प्राकृत भाषा है, यह तथ्य आंग्ल शब्दकोशकारों को ज्ञात कराने के लिए आंग्लभाषा के वर्तमान दो प्रमुख शब्दकोशों Webster's तथा Oxford के सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष के नाम मैंने सितम्बर १८, १९७१ को निम्न पत्र लिखा—

"महाशय,

स० न०। आपके शब्दकोष गठन तन्त्र का एक मूलगामी दोष इस पत्र द्वारा आपको विदित कराना चाहता हूँ। शब्दकोश सिद्ध करने वाले आपके जो भाषाविज्ञ हैं, वे एक आवश्यक तत्त्व से अनभिज्ञ हैं। जहाँ तक बन सके प्रत्येक आंग्ल शब्द का उद्‌गम संस्कृत में ढूंढ़ना चाहिए। यह तथ्य उन्हें अज्ञात होने के कारण उनके द्वारा दिए विवरण व्युत्पत्तितन्त्र तथा भाषा-शास्त्र की दृष्टि से गलत सिद्ध होते हैं।

Widower शब्द का उदाहरण लें। आम धारणा यह है कि मूल आंग्ल शब्द Widow को er प्रत्यय लगने से Widower शब्द बनता है। वह धारणा सही नहीं है। वे दोनों 'विधवा' तथा 'विधुर' इन दो संस्कृत शब्दों के आंग्ल अपभ्रंश हैं।

आंग्लभाषा में जहाँ er प्रत्यय लगता है वहाँ 'करने वाला' ऐसा अर्थ होता है। जैसे Labour यानि 'श्रम' अत: Labourer यानि श्रम करने वाला श्रमिक। Murder यानि वध, अत: Murderer यानि वध करने वाला खूनी। अत: Widow (यानि विधवा) शब्द को 'er' प्रत्यय लगकर यदि Widower शब्द बनता तो उसका अर्थ 'विधवा करने वाला' ऐसा

होता । यानि किसी महिला के पति का हत्यारा Widower कहलाता । इस कारण आंग्ल शब्दकोशों को ऐसा विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक है कि 'विगता धवा यस्याः इति विधवा' तथा 'विगता धुराः यस्य सः विधुरः' इस प्रकार विधवा तथा विधुर इन संस्कृत शब्दों के ही आंग्ल उच्चार 'विडो' तथा 'विडोअर' बन गए हैं ।

उसी प्रकार Truth तथा Untruth शब्दों से 'T' अक्षर यदि निकाल दिया जाए तो वे शब्द 'ऋत' (Ruth) तथा अनृत (Unruth) ऐसे शुद्ध संस्कृत ज्यों-के-त्यों बने हुए दिखेंगे ।

'पर' यानि 'अन्य प्रकार का' यह संस्कृत उपपद आंग्ल शब्दों में सर्वत्र लगता है जैसे Para-military forces, Para-medical services ।

कुछ विद्याशाखाओं के नाम देखें 'Dentistry' यह दन्तशास्त्र तथा Trigonometry यह त्रिगुणमात्रा शब्द है ।

'मलिन' अर्थ का 'मल' संस्कृत उपपद तो आंग्लभाषा में सर्वत्र प्रयुक्त होता रहता है, जैसे Maladroit, Malignant, Malfunction, Mal-administration, Mal-adjustment इत्यादि ।

आर्थिक, वैदिक आदि शब्दों का 'इक' अन्त्यपद तथा 'मृतप्राय', 'जल-प्राय' शब्दों जैसा 'प्राय' अन्त्यपद आंग्लभाषा में भी दिखाई देते हैं । Economic, Civic आदि शब्दों में 'इक्' प्रत्यय है । Solidify, exem-plify आदि शब्दों में प्राय अन्त्यपद का आंग्लभाषा में 'फाय' अपभ्रंश हुआ है । ऐसे अगणित उदाहरण दिए जा सकते हैं । अतः आपको आंग्लशब्दों की व्युत्पत्ति ढूंढ़ने के लिए संस्कृत के विद्वानों का सहाय लेना उचित होगा । आपके शब्दकोशों के अगले संस्करणों में यदि ऐसा सुधार हो सके तो अच्छा रहेगा ।

भवदीय
पु० ना० ओक
अध्यक्ष
भारतीय इतिहास पुनर्लेखन मण्डल

उस पर Oxford Dictionary वालों ने दो पंक्तियों के संक्षिप्त उत्तर में कहा कि "डेढ़ सौ वर्षों से शब्दकोश तन्त्र जो हमारा चलता आ रहा है उसमें हम परिवर्तन करना नहीं चाहेंगे।"

Webster's का सितम्बर २६, १९७२ का उत्तर इस प्रकार था—

श्री ओक जी,

आपका सितम्बर १८ का पत्र पाया। आपको हम सन्तोषपूर्वक आश्वस्त करना चाहते हैं कि Mariam-Websters शब्दकोशों में शब्दों की व्युत्पत्ति देने वाले हमारे सम्पादकजन संस्कृत भाषा से भली प्रकार परिचित हैं। हमारे शब्दकोशों में ऐसे कई शब्द हैं जिनका संस्कृत स्रोत हमने माना हुआ है। जैसे अवतार, निर्वाण, सति, स्वस्तिक, योग—ऐसे कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा नहीं लगता कि इससे अधिक मात्रा में आंग्लभाषा के शब्द संस्कृत से लिए गए हों। विशेषत: Widow, Truth, Know आदि शब्द संस्कृत द्वारा आंग्ल भाषा में सम्मिलित होना इसलिए असम्भव-सा लगता है क्योंकि वे शब्द तो आंग्लभाषा में सैकड़ों वर्षों से बने हुए हैं जब एंग्ले-सैक्सन् लोगों को संस्कृत भाषा का नाम भी ज्ञात नहीं था। संस्कृत स्रोत के आंग्लभाषा में सम्मिलित शब्दों के जो नमूने ऊपर दिए हैं वैसे शब्द आंग्लभाषा में १८वीं शताब्दी में या तत्पश्चात् प्रविष्ट हुए। उसी समय यूरोपीय विद्वानों का संस्कृत भाषा से प्रथम बार परिचय हुआ। उससे और प्राचीन कोई भारतीय शब्द अवश्य आंग्लभाषा में घुसे हुए हैं जैसे Lack (लाख), Raj (राज्य), Banyan (बनयान)। ऐसे शब्द सोलहवीं शताब्दी में भारतीय प्रवासियों की हिन्दी द्वारा आंग्लभाषा में सम्मिलित हुए न कि संस्कृत से।

आंग्ल शब्द Widow तथा संस्कृत शब्द 'विधवा' में दिखाई देने वाली समानता के कारण आपको ऐसा भ्रम हुआ है कि संस्कृत आंग्लभाषा की जननी है। उन दो शब्दों का सम्बन्ध अवश्य है किन्तु वह इस कारण कि वे दोनों शब्द (विधवा तथा Widow) Indo-European नाम की एक और प्राचीन भाषा के हैं जिसकी संस्कृत भाषा एक शाखा तथा आंग्लभाषा दूसरी शाखा है। यूरोप की अन्य आधुनिक भाषाएँ भी उसी Indo-European भाषा की शाखाएँ हैं। संस्कृत से कोई शब्द आंग्लभाषा में प्रविष्ट

हुआ है ऐसा आग्रह करने वालों के विरोध में ऐसा भी क्यों नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत ने आंग्लभाषा के कुछ शब्द अपनाए हैं। ऐसे शब्दों को केवल एक-दूसरे के 'सम्बन्धी' कहा जा सकता है। विधवा शब्द के समान दीखनेवाले अन्य भाषाओं के शब्द Webster's third new International Dictionary में Widow शब्द का स्रोत बतलाते हुए दिए गए हैं।

जिन आंग्लशब्दों का उल्लेख आपके पत्र में है उनका स्रोत संस्कृत हो ही नहीं सकता। कई शब्द जैसे Know और That उस प्रकार के संस्कृत शब्दों के सम्बन्धित हैं। यह बात Unabridged Dictionary में हमने मान भी ली है। किन्तु कई अन्य शब्दों में तो जैसा आप समझते हैं वैसा कतई कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ आंग्ल शब्द Debt (यानि कर्जा) यह आपके कहे संस्कृत 'दत्त' (यानि दिया हुआ) इससे जरा भी सम्बन्धित नहीं है।

भवदीय

F. Stuart Crawford

इस पर मेरा अक्तूबर ५, १९७२ का उत्तर नीचे उद्धृत है।

श्री क्रॉफर्ड महाशय,

मेरे १८ तारीख के पत्र पर आपके भेजे सितम्बर २६ के विवरण के लिए धन्यवाद। आपकी और मेरी भाषा-सम्बन्धी धारणाएँ इस कारण भिन्न हैं कि आप जो इतिहास सही मान बैठे हैं वह पूर्णतया गलत है, ऐसा मेरा शोध है।

इसे कोई विवाद न समझते हुए केवल विचारों का एक आदान-प्रदान समझें।

प्रचलित (ऐतिहासिक) धारणाओं के अनुसार Indo-European नाम की किसी प्राचीन भाषा से संस्कृत तथा यूरोप की भाषाएँ निकली हैं और यदि ४०० वर्ष पूर्व यूरोपीय लोग संस्कृत का नाम भी नहीं जानते थे तो उनकी भाषाएँ संस्कृत स्रोत की कैसे हो सकती हैं? आपके ये निष्कर्ष प्रचलित घिसी-पिटी ऐतिहासिक कल्पनाओं पर आधारित हैं। किन्तु हमारे शोधों के अनुसार आपकी वह मूलभूत ऐतिहासिक धारणाएँ ही निराधार हैं।

हमारे ऐतिहासिक शोधों से प्रचलित धारणाओं में आकाश-पाताल जैसा विशाल अन्तर कैसे पड़ा है? इसका यहाँ मैं आपको एक ठोस उदाहरण देना चाहता हूं। आगरा के प्रसिद्ध ताजमहल का नाम आपने सुना ही होगा। गत ३५० वर्षों से विश्व भर के लोग उसे पाँचवे मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा मुमताज के शव पर बनाई कब्र समझते रहे, किन्तु मैंने भरपूर ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि शाहजहाँ से पाँच सौ वर्ष पूर्व बना वह तेजोमहालय नाम का शिव मन्दिर है। इस शोध की मेरी पुस्तक आपको अमेरिका के सारे अग्रगण्य विश्वविद्यालयों के ग्रन्थालयों से प्राप्त हो सकती है। वॉशिंगटन के सचिवालय की ग्रन्थशाला में उसकी प्रति प्राप्य है। मेरे शोध का उल्लेख विविध परीक्षाओं के छात्र तथा विविध ग्रन्थकार, व्याख्याता, वक्ता आदि करते रहे हैं।

प्रचलित ऐतिहासिक कल्पनाओं को सुरंग लगाने वाले मेरे कई 'अन्य भी प्रकाशन हैं जैसे—"Some Blunders of Indian Historical Research", "Agra Redfort is a Hindu Building", "Delhi's Redfort is Hindu Lalkot" तथा 'Some Missing Chapters of World History.

अब जहाँ तक भाषाशास्त्र का सम्बन्ध है उसकी प्रचलित धारणाओं में आमूल परिवर्तन लाने वाले हमारे शोधों की लड़ी इस प्रकार है—प्रचलित विद्वद्वर्ग की धारणा है कि मानवीय इतिहास केवल लगभग ५००० वर्षों का है। इसके विपरीत डॉक्टर ज्वालाप्रसाद सिंघल के The Sphinx Speak पुस्तक में ऐसे कई शास्त्रीय प्रमाण दिए हैं जिनसे वेद लाखों वर्ष प्राचीन सिद्ध होते हैं जबकि आजकल के विद्वान वेदों की निर्मिति केवल ३००० वर्ष पूर्व बतलाते हैं।

मेरी पुस्तक Some Blunders of Indian Historical Research के एक अध्याय में यह दर्शाया गया है कि आर्य उर्फ हिन्दू लोग अन्य देशों से भारत में घुस-पैठ द्वारा बसे इस प्रचलित धारणा के विपरीत विश्व-दिग्विजय करने वाले भारतीय क्षत्रियों ने तथा विद्वानों ने विविध प्रदेशों में 'कृण्वन्तो विश्व आर्यम्' ध्येय से प्रेरित होकर वैदिक बस्तियाँ बसाई तथा समाज का प्रसार किया। उन वैदिक शासकों की भाषा संस्कृत होने

से वही सारे विश्व की भाषा बनी। उसी के प्राकृत-विकृत रूपों से अन्य भाषाएँ बनीं। अतः सितम्बर १८ के मेरे पत्र में यह सुझाव था कि किसी भी भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति सर्वप्रथम संस्कृत में ढूंढ़ना ही विद्वानों का तथा शब्द-कोशकार का लक्ष्य एवं कर्त्तव्य माना जाना चाहिए।

अतः मेरा निवेदन है कि आपके शब्द-कोशों में व्युत्पत्ति करने वाले विद्वानों को उपरोक्त शोधों की जानकारी दें ताकि वे निजी भूमिका पर दुबारा विचार कर सकें।

भवदीय

पु० न० ओक

उपर उद्धृत पत्र-व्यवहार से पाठकों को भाषाशास्त्र के सम्बन्ध में विद्वज्जनों की प्रचलित धारणा और हमारी धारणा का महदन्तर समझ में आ जाएगा।

वे समझ बैठे हैं कि लगभग ४०० वर्ष पूर्व जब ब्रिटिश तथा अन्य यूरोपीय व्यापारी संस्थाओं के लोग भारत में आने लगे तभी से हिन्दी तथा संस्कृत शब्दों का आंग्लभाषा में आयात होने लगा।

चार सौ वर्ष पूर्व जिस संस्कृत भाषा का अस्तित्व यूरोपीय लोगों को प्रथम बार ज्ञात हुआ, उस संस्कृत भाषा के शब्द ४०० वर्ष के पूर्व के समय में आंग्ल या अन्य यूरोपीय भाषाओं में हो ही नहीं सकते, यह यूरोपीय विद्वानों की प्रचलित धारणा सही इतिहास के सम्बन्धी उनके गाढ़े अज्ञान का प्रदर्शन करती है।

जैसा कि इस ग्रन्थ में हम बार-बार बतला चुके हैं कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक सारे विश्व में संस्कृत भाषा तथा वैदिक समाज व्यवस्था का ही प्रचलन था। यह इतिहास वर्तमान विद्वज्जनों को अज्ञात होने के कारण उन्हें अण्ट-सण्ट कपोलकल्पित कल्पनाओं की पतंग उड़ानी पड़ती है, जैसे कि आर्य नाम की कोई जाति रही होगी; वे किसी पश्चिमी प्रदेश में रहे होंगे; उनकी इण्डो-यूरोपियन नाम की कोई भाषा रही होगी। इसी प्रकार इन विद्वानों ने बगैर किन्हीं प्रमाणों के निराधार, कपोलकल्पित मनमानी कल्पनाओं के ढेर-के-ढेर लगा दिए हैं। उन कल्पनाओं का न कई आगा है, न पीछा।

आधुनिक पाश्चात्य लोग संस्कृत के सम्पर्क में भले ही ४०० वर्ष पूर्व आए होंगे। किन्तु संस्कृत-भाषी भारतीय लोग कृतयुग से ईसाई धर्म की निर्मिती तक सारे विश्व में छाए हुए थे। इस तथ्य के अज्ञानवश संस्कृत अन्य भाषाओं की स्रोत नहीं हो सकती ऐसी वर्तमान विद्वज्जनों की धारणा होना स्वाभाविक है।

मध्ययुग में इस्लामी आक्रामक तथा यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों ने भारत पर आक्रमण द्वारा सम्पर्क किया। उसके पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क होते नहीं थे, ऐसी कल्पना कर लेना ठीक नहीं होगा। सिकन्दर के समय ग्रीस से, फॅरोहा शासकों के समय मिस्र से; प्राचीन रोमन् साम्राज्य को भारत द्वारा रेशम आदि वस्तुओं के व्यापार से, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क होते ही रहते थे।

विभिन्न वाहन

यह कल्पना कर लेना कि आजकल की तरह यान्त्रिक नौका, विमान, मोटर-गाड़ियाँ आदि द्रुतगति के वाहन इससे पूर्व के युगों में न होने से विश्व की विभिन्न जमातें एकाकी जीवन बसर करती रही होंगी, योग्य नहीं। विश्व का इतिहास लाखों-करोड़ों वर्षों का है। उसमें से हमें गत ७००-८०० वर्षों का इतिहास ही सीमित रूप में ज्ञात होता है। इसी कारण द्रुतगति के वाहन तथा अन्य सम्पर्क साधन आज की तरह अतीत में भी रहे होंगे, कौन जानता है? क्या रामायण, महाभारत तथा पुराणों में वैसे उल्लेख नहीं हैं? वे झूठ या कपोलकल्पित क्यों माने जाएँ? जब विविध यन्त्र तथा वाहन बनाने सम्बन्धी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध हैं?

अन्य एक तर्क यह है कि घोड़े, ऊँट आदि पर सवार होकर या केवल पैदल चलने वाली सेनाएँ भी कई साहसी सेनानियों के नेतृत्व में दूर-दूर के प्रदेशों में जाती रही हैं। भारतीय राजाओं के आठवीं-दसवीं शताब्दी तक कोरिया तक साम्राज्य बने हुए थे।

कालिदास के रघुवंश में रघु ने ईरान उर्फ पारसिक देश पर जो बड़ी विजय पाई उसका वर्णन लिखते हुए कालिदास कहते हैं "दाढ़ी वाले इतने ईरानी सैनिक धाराशायी हो गए थे कि उन्हें देखकर लगता था जैसे

मधुमक्खियों के छत्ते ही बिखरे पड़े हों।"

अंग्रेजों को ४०० वर्ष पूर्व संस्कृत का अस्तित्व भी ज्ञात न होने से संस्कृत शब्द आंग्लभाषा में होना असम्भव है; यह तर्क भी सही नहीं है। मानो कि मुझे आंग्लदेश का अस्तित्व मेरी १० वर्ष की अवस्था में ज्ञात हुआ। उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन हुए १०० वर्ष हो चुके थे। ऐसी अवस्था में क्या मेरा यह कहना ठीक होगा कि मुझे इंग्लैण्ड की कुछ जानकारी पहली बार सन् १९२७ में हुई। अत: तत्पूर्व मेरे जीवन पर इंग्लैण्ड का किसी तरह का प्रभाव पड़ना असम्भव है?

ऊपर लिखे विवरण से वाचकों ने जान लेना चाहिए कि आधुनिक विद्वानों की ऐसी धारणाएँ असंगत होने के कारण उनकी सारी संशोधन प्रणाली तथा तर्कप्रणाली ही गलत है।

एक मुद्दा यह है कि विश्व की सारी ही जमातें चाहे वे हब्शी, अरब, इराणी, मिस्री, चीनी, यूरोपीय, ऍंग्लो सॅक्सन या और कोई हों, विश्व वैदिक समाज में अन्तर्भूत थीं। उन्हें उनका वह अतीत उस तरह अज्ञात बनकर रह गया है जैसे व्यक्ति निजी आँखों से निजी पीठ को देख नहीं पाता।

आंग्ल शब्दकोश वालों की धारणा कि Indo-European नाम की कोई भाषा थी; इसका भी कोई आधार नहीं है। India तथा Europe आज भी विद्यमान हैं? तो उनकी उस Indo-European भाषा का नाम-निशानी भी क्यों और कैसे मिट गया? उस भाषा का व्याकरण कहाँ है? साहित्य कहाँ है? लिपि कौन-सी थी? कौन-से युग में कितने विस्तृत प्रदेश में वह भाषा बोली या लिखी जाती थी? ऐसे प्रश्नों का यदि पाश्चात्य प्रणाली के विद्वान विचार करते तो उनकी धारणाओं की निरर्थकता तथा अतार्क्किकता ध्यान में आ जाती। अत: इतिहास संशोधन में तेज, धारदार, नीरक्षीर न्याय वाली तर्कशक्ति का बड़ा ही महत्त्व होता है।

मानवों की पहली पीढ़ी से वेदों के साथ ईश्वरदत्त भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का आरम्भ हुआ। इस प्रकार का स्पष्ट तथा निश्चित इतिहास और किसी भाषा का नहीं है। अन्य भाषाएँ कब, कैसे निर्माण हुईं

यह सर्वथा अज्ञात इसलिए है कि अन्य भाषाएँ संस्कृत के बिगड़े रूप हैं। धीरे-धीरे संस्कृत के बिगड़ते-बिछुड़ते रूप अनजाने विभिन्न भाषा कहलाने लगे।

संस्कृत ही अन्य भाषाओं का स्रोत है, इस तथ्य का अज्ञान एक ऐतिहासिक त्रुटि तो है ही किन्तु उससे भाषा-शास्त्र में भी एक बाधा निर्माण होती है। शब्दकोशों में शब्द व्युत्पत्ति के दिए विवरण निराधार सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ आंग्लशब्द Automobile (यानि मोटरगाड़ी) लें। इसका विग्रह auto (यानि स्वयं) और mobile (यानि चलने वाली) ऐसा किया जाता है। वस्तुतः वह automo (यानि आत्म) और bile (यानि 'बल') अर्थात् आत्मबल से चलने वाली गाड़ी इस अर्थ का पूरा ज्यों-का-त्यों संस्कृत शब्द है। फिर भी उसका auto-mobile इस तरह विग्रह करने से उसका संस्कृतत्व नष्ट हो जाता है या अज्ञात रह जाता है। इसी तरह का दूसरा उदाहरण 'मधुबाला' शब्द का दिया जा सकता है। उसका विग्रह 'Madhu-bala' ऐसा करने की बजाय यदि उसे mad-hubala लिखा जाए तो वह बड़ा ही अनर्थकारी होगा। ऐसी गलतियाँ जो पाँचवीं-छठवीं जमात के शिशु को भी शोभा नहीं देंगी, भाषा-शास्त्री का सम्मान पाने वाले शब्द-कोशकार विद्वानों के हाथों की जा रही हैं; फिर भी कोई पूछने वाला नहीं है।

इस प्रकार इतिहास की विकृति अन्य कई विद्याशाखाओं में दोष उत्पन्न करती है क्योंकि इतिहास यह मानवीय जीवन के सारे पहेलुओं की कहानी होती है।

निजी पक्ष के समर्थन में आंग्लशब्द-कोशकार यदि यह बतावें कि auto (यानि 'स्वयं') यह ग्रीक उपपद Autogero, Autoharp, Autograph, Autolysis, Autonomy आदि शब्दों में भी लगता है तो उसके उत्तर में हम कहना चाहेंगे कि वह 'आत्म' शब्द का टूटा-फूटा भाग बनकर ग्रीक शब्द कहलाता है। वस्तुतः वह Automo उर्फ Atma (आत्मा) ही होना चाहिए। उसका वह मूल संस्कृत रूप Automatic (Automa-tic) यानि आत्मतिक, Automobile यानि 'आत्मबल' जैसे शब्दों में दिखाई देता है।

यूरोपीय वैद्यक में Prophylactic कहते हैं जो शब्द 'प्र-फलक्तिक' यानि अच्छा परिणाम बतलाने वाला इस तरह का संस्कृत शब्द है।

और एक भिन्न प्रकार का उदाहरण लें। पेशेण्ट (Patient) शब्द के दो विरोधी अर्थ आंग्लभाषा में रूढ़ हैं। जो व्यक्ति शान्तचित्त हो उसे 'पेशण्ट' कहा जाता है। किन्तु जो रुग्ण, डॉक्टर के कक्ष के बाहर बेचैनी में चिकित्सा की प्रतीक्षा कर रहा हो, उसे भी आंग्लभाषा में पेशण्ट (Patient) ही कहा जाता है। एक ही शब्द के दो विरोधी अर्थ कैसे रूढ़ हुए ? इसका समाधानकारी उत्तर कोई भी आंग्लशास्त्री नहीं दे सकता। किन्तु आंग्ल-भाषा का स्रोत संस्कृत ही होने से इस समस्या का समाधान संस्कृत में अवश्य पाया जाता है। वह विवरण इस प्रकार है—

आंग्लभाषा प्राकृत होने के कारण उसमें जो विविध विकृतियाँ निर्माण हुई उनमें से एक यह है कि कई आंग्लशब्दों के आरम्भ में 'पी' अक्षर फालतू लगा हुआ है। उसका उच्चारण नहीं होता। जैसे Psychology, Psycho-analyst, Psychodelic, pneumonea, Pneumatic, Pfizer इत्यादि। इसी प्रकार Patient शब्द में 'P' अक्षर फालतू लगा हुआ है। संस्कृत शब्द 'शान्त' तथा 'अशान्त' है। इन दोनों के यदि आरम्भ में P अक्षर जोड़ दिया जाए तो P+शान्त और P+अशान्त, दोनों का सन्धि पशान्त उर्फ 'पेशण्ट' ही होगा। इस प्रकार 'पेशण्ट' शब्द के आंग्लभाषा में दो विरोधी अर्थ क्यों हैं ? इस शंका का समाधान संस्कृत के सहाय्य के बिना नहीं हो सकता। ऐसी ही समस्याएँ अन्य भाषाओं में भी अवश्य होंगी। उनका समाधान भी संस्कृत के सहाय्य से पाया जा सकेगा।

ऐतिहासिक उथल-पुथल

आक्रामकों के हमलों से जैसे किले, बाड़े आदि टूट-फूट जाते हैं, उसी प्रकार संस्कृत गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था टूट जाने पर प्रादेशिक अपभ्रंशों से विविध भाषाएँ, उपभाषाएँ आदि निर्माण हुईं। वे भाषाएँ संस्कृत के ही विविध क्षतिग्रस्त रूप हैं।

संस्कृत का 'हस्ति' (यानी हाथी) शब्द लें। उर्दू आदि इस्लामी भाषाओं में 'हस्ती' शब्द 'एक ताकतवर व्यक्तित्व' के रूप में प्रयोग होता

रहता है। आंग्लभाषा में उसका विकृत उच्चार हफ्ती उर्फ 'हेफ्टी' (Hefty) यानि 'ऊँचा-तगड़ा' व्यक्ति के अर्थ से रूढ़ है।

कई आंग्ल शब्दों में 'C' या 'R' अक्षर फालतू लगा पड़ा है। जैसे कोर्ट (Court) शब्द वस्तुत: Cout (कोट) है क्योंकि राजा कोट के अन्दर न्याय किया करता था। उस शब्द में r अक्षर लगकर कोट के स्थान पर 'कोर्ट' शब्द रूढ़ हो गया।

Cottage शब्द को 'c' निकालकर पढ़ें तो 'ओटज' (यानि कुटिया) यह 'संस्कृत' शब्द स्पष्ट है।

आंग्ल Boat शब्द संस्कृत 'पोत' शब्द का अपभ्रंश है। इससे एक नियम ध्यान में आता है कि आंग्ल तथा संस्कृत शब्दों में 'प' तथा 'ब' उच्चार अदल-बदल होते रहते हैं। जैसे 'पुस्तक' शब्द से 'स्त' अक्षर गिर पड़ा और केवल 'पुक' शब्द शेष रहा। तत्पश्चात् 'पुक' का उच्चार 'बुक' (book) यह आंग्ल शब्द पुस्तक के अर्थ से रूढ़ हुआ।

आंग्लभाषा में a···p···e (अपि) अक्षर लिखकर 'एप' उच्चार करते हैं। उस 'अपि' शब्द के आरम्भ के 'क' अक्षर का लोप होने से संस्कृत 'कपि' (यानि बन्दर) शब्द आंग्लभाषा में 'अपि' लिखा जाता है किन्तु बोला जाता है 'एप'।

बंग्लो (Bungalow) शब्द देखें। इसका अर्थ है 'घर'। उसके आरम्भ में B अक्षर फालतू पड़ गया है। उसे निकालकर पढ़ें तो ungalow शब्द वास्तव में 'अंगालय' या अँगना प्रतीत होगा।

संस्कृत शब्द 'धाम' लें। आंग्ल में इसका उच्चारण 'धोम' रूढ़ हुआ। तत्पश्चात् उसमें से 'ध' अक्षर निकलकर 'होम' यानि घर (home) कहा जाने लगा।

कई आंग्लशब्दों के आरम्भ में 'अ' अक्षर फालतू जोड़ा गया है। इसके कुछ उदाहरण हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। पाठक और भी ढूँढ़ें। हिन्दी में भी यह बात कभी-कभी दिखाई देती है। जैसे 'स्नान' को 'अस्नान' कहा जाता है। इसी प्रकार आंग्लभाषा में Able (बलयुक्त), Apple (फल), Abbot (भट), अब्रह्मम् (ब्रह्मा) Assassin (साहसिन्), Apothecary (पथ्यकरी) यानि जड़ी-बूटियाँ आदि बेचने वाला, Aqua (क) यानि

'जल' आदि सारे संस्कृत शब्द ज्यों-के-त्यों हैं। केवल उनके आरम्भ में जोड़े 'अ' अक्षर के साथ उनका उच्चार हो रहा है। Apple में 'pp' अक्षर दो बार इसलिए आते हैं कि वह संस्कृत 'फ' अक्षर को व्यक्त करते हैं। उसी प्रकार Abbot में bb अक्षर द्विवार आकर 'भ' का निर्देश करते हैं।

ऊपर छज्जे में बैठी प्रियतमा का मन नीचे खड़ा प्रीतम वाद्य बजाकर या गीत गाकर जब रिझाता है तो उस क्रिया को आंग्लभाषा में Serenade (सेरिनेड) कहते हैं। Oxford शब्दकोश में उसका ऊटपटांग विवरण यों लिखा है कि प्राचीन फ्रेंच के Serano (सेरॅनो) यानि 'खुली हवा' से Serenade शब्द बना है। उस विवरण में कई दोष हैं। एक तो यह कि प्रियतमा का छज्जा और नीचे खड़े गीत गुनगुनाने वाले या वाद्य बजाने वाले प्रीतम का स्थान दोनों ही एक ऊँची छत के नीचे हों तो 'खुली हवा' वाला विवरण यथार्थ नहीं लगता। और यदि Serane मूल शब्द मान भी लिया जाए तो उसका Serenade (सेरिनेड) रूप कैसे बना ? तीसरा आक्षेप यह है कि उस Serane शब्द में संगीत का तो कोई उल्लेख ही नहीं है। व्युत्पत्ति में ऐसी समस्याएँ जब खड़ी हो जाती हैं तो संस्कृत का सहारा लेना पड़ता है। संस्कृत से पता चलता है कि Serenade वस्तुतः संस्कृत 'स्वरनाद' शब्द है। आंग्ल शब्द-कोशकारों की लिखी व्युत्पत्तियाँ कितनी दोषपूर्ण, बचपनी तथा हास्यास्पद होती हैं, इसके यह कुछ नमूने दिए हैं। ऐसे सैंकड़ों या हजारों उदाहरण निकल सकते हैं।

Snake (स्नेक) यानि साँप। उसी से Sneak (स्नीक) यानि चुपके से छिपे-छिपे प्रवेश करना इस अर्थ का शब्द बना है। वह सर्प शब्द का अपभ्रंश है। संस्कृत 'सर्पत' शब्द ही आंग्लभाषा में Serpent लिखा जाता है। Surreptitious (सरेपटिशस) भी उसी संस्कृत शब्द का एक रूप है। Sneak शब्द में जो भाव है वही Surreptitious से प्रकट होता है।

संस्कृत 'पत्र' शब्द 'पटर' ऐसा लिखा जाने लगा। तत्पश्चात् आदि अक्षर 'प' के स्थान पर 'ले' अक्षर आकर आंग्लभाषा में लेटर (letter) शब्द बना।

ऋत-अनृत संस्कृत शब्द आंग्लभाषा में T जोड़कर Truth, Untruth लिखे जाते हैं, यह हम बता ही चुके हैं। इन्हीं दो शब्दों से आंग्ल-

भाषा के कुछ और भी शब्द बने हैं। जैसे Right (यानि जो उचित या सही हो) और Write(यानि लिखना)। सही या उचित वही होता है जो सत्य होता है। इसी प्रकार लिखा वही जाता है जो सत्य होने से लिखने वाला उससे कभी मुकर नहीं सकता। अतः Write(राईट) और Right (राईट) दोनों ऋत मूलक ही हैं।

आंग्लभाषा में Years यानि 'वर्ष'। उसका उच्चार 'यर्स्' ऐसा किया जाता है। किन्तु पहले अक्षर Y की पूंछ पोंछकर उस शब्द को Vears पढ़े तो वह ज्यों-का-त्यों 'वर्ष' शब्द ही दिखाई देगा। अतः मूल संस्कृत शब्द वर्ष का आंग्लभाषा में 'यर्स्' ऐसा विकृत उच्चार रूढ़ हुआ है।

अब दूसरी प्रकार की विकृति देखें। संस्कृत कर्ण शब्द आंग्लभाषा में Kearn लिखा जाएगा। अब उसका पहला अक्षर K तथा अन्तिम अक्षर n काट दें तो जो बीच के तीन अक्षर ear रह जाते हैं वही (यर) शब्द आंग्लभाषा में 'कर्ण' शब्द का द्योतक है।

मुख शब्द आंग्लभाषा में Mouth (मौथ) कहलाता है। किन्तु इसका प्राकृतिक उच्चार 'मुथ' होगा जो स्पष्टतया 'मुख' शब्द का ही अपभ्रंश है।

संस्कृत में शरीरान्तर्गत ग्रन्थि को ग्लैण्ड (Gland) कहा जाता है। उसी प्रकार दीपस्तम्भ उर्फ दीपस्थान को लॅम्प स्टॅंड कहा जाता है। इससे पता चलता है कि संस्कृत 'अथ' या 'थान-स्थान' आदि उच्चार आंग्लभाषा में 'अँड' बन जाते हैं। इसी कारण अंगुल-स्थान का उच्चार अंगुललैण्ड अर्थात् 'इंग्लैण्ड' बन गया।

संस्कृत 'ल' तथा 'र' अक्षरों के उच्चार भी आंग्ल अपभ्रंश में अदल-बदल हो जाते हैं। जैसे 'फर्टिलिटी' (Fertility) शब्द वस्तुतः संस्कृत 'फलति+इति' शब्द है। यहाँ संस्कृत 'ल' का उच्चार आंग्लभाषा में 'र' हुआ। इससे विपरीत संस्कृत 'र' आंग्ल में 'स' उच्चार होने वाला उदाहरण देखें। आँखों पर लगाए जाने वाले चश्मे को आंग्लभाषा में Spectacles कहते हैं। उसमें 'C' का उच्चार 'क' के बजाय 'स' करके देखें। Specta+cles वस्तुतः 'स्पष्ट+करस्' (यानि धुंधला अक्षर या अन्य दृश्य) 'स्पष्ट करने वाला' ऐसा संस्कृत शब्द है।

अन्तर्ज्ञान, अन्तर्ध्यान, अन्तर्मन आदि संस्कृत शब्दों में 'अन्तर' का जो

अर्थ है वही हिन्दी में 'अन्दर' तथा आंग्लभाषा में under (अण्डर) कहलाता है।

आंग्ल Pleased शब्द संस्कृत 'प्रसीद' है। 'प्रसीदो भव' का आंग्ल रूप Pleased be या be pleased होता है। क्रूर का आंग्ल भाषा में मिलता-जुलता Cruel शब्द है। Camel (कॅमल) संस्कृत क्रमेल: (यानि ऊंट) का अपभ्रंश है। आश्रयम् शब्द आंग्लभाषा में asylum (असायलम्) कहा जाता है। हृत् का हार्ट (heart) अपभ्रंश रूढ़ हुआ है। 'तुमुल' शब्द आंग्ल भाषा में Tumult (ट्युमुल्ट) लिखा जाता है।

अन्य कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

गौ:=Cow (कौ); Curriculum (करिक्युलम्) = अत: गुरुकुलम् entrepreneur=अन्तर्प्रेरितनर; management = मनजमन्त; Co= सह। urge=ऊर्जय। Longevity=लम्ब-जीव-इति। Virginity= वर्ज्य-जननं इति। Navigability=नावि-ग-बल-इति, ऐसे पूरे-के-पूरे संस्कृत समास आंग्लभाषा में जैसे बोले जाते हैं वैसे अन्य यूरोपीय भाषाओं में भी पाए जाते हैं।

'इति श्रीमत् भगवद्गीतासु उपनिषत्सु'''आदि वचनों में 'इति' का 'ऐसा' अर्थ ही आंग्लभाषा में advisibility, gullibility, invalidity आदि शब्दों में अन्तर्भूत है। Conscience=संशस्, wheat (व्हीट), Vitamin, Vitality आदि शब्दों में से आद्य अक्षर 'जी' लुप्त हुआ है। 'जी' अक्षर लगाकर पढ़ने से वे शब्द जीविल, जीवितमान्, जीवितलिति— आदि प्रतीत होंगे। 'अयोध्याखण्ड' आदि शब्दों में जो अन्तिम पद काण्ड है वह आंग्लभाषा में Canto (कण्टो) लिखा जाता है। Poet भाट शब्द का अपभ्रंश होने से poetry (यानि 'काव्य') वस्तुत: 'भाटरी' (यानि भाट के गाए या बनाए गीत) शब्द है। Integrated—अन्तर्गत। Vesture=वस्त्र। Vestry=वस्त्री। I'am=अहम्। you=यूयम्। we= वयम्। She संस्कृत 'सा' है। That-तत्। They=ते। Thou=त्व (म्)। End शब्द को Ent लिखने से वह वास्तव में 'अन्त' शब्द ही प्रतीत होगा। Wicked=विकट (दुष्ट)। yesterday=यस्तनदिन। palace= प्रासाद। Astute=अस्तुत। Vocal=वाचल। Viva-Voce=जीव

वाचा। Vocabulary=वाचाबोलरी। Succinct(सक्सिक्ट)=संक्षिप्त accept=अक्षिप्त। dismay=विस्मय। human=सुमन। Humanity=सु-मन-इति। अश्व शब्द का ही अपभ्रंश ass (यानि 'गधा') बना है। संजीवन=sanguine। 'प्रार-थना' शब्द से अन्त्यपद 'थना' लुप्त होकर आंग्लभाषा में प्रार्थना को केवल 'प्रार' (Prayer=प्रेअर) ही कहा जाता है। yoke(जोतना या जोड़ना)=योग। War=वार(करना) यानि युद्ध। Caligraph=कलाग्रथ। Geography=ज्या+ग्रथ। Geometry=(ज्या+मात्रा)। Trigonometry=त्रिगुणमात्रा= त्रिकोणमात्रा। Vehicle=वाहिकल। Folk=लोक। Norfolk= नरलोक। Folkswagon=लोकवाहन। Rage=राग(क्रोध)। Wrath (राथ)=राग। Synonym=समनाम। Supple=चपल। icon= ईशान्। new=novel=news=nouveau यह सारे शब्द संस्कृत 'नव' अथवा नवीन, नाविन्य आदि के रूप हैं। Newspaper=नवलपत्र। Sweat =स्वेद। Sweater=स्वेदर। Castle=कस्थल(यानि जलपूरित खाई से सुरक्षित किला)। अल्-कोहल(alcohol) आंग्लभाषा में दारू को कहते हैं। उसमें 'अल्' यह अरबी अव्यय है। कोहल् संस्कृत में चावल से बने आसव या मदिरा को कहते हैं। अत: 'अलकोहल' शब्द संस्कृतमूलक है। वैसे संस्कृत का प्रत्यक्ष 'मदिरा' शब्द भी आंग्लभाषा में Madeira लिखा जाता है। यह धवल दारू अटलांटिक महासागर के एक विशिष्ट द्वीप में बनती है। उसे भी उसी दारू के कारण 'मदीरा'(द्वीप) ही कहते हैं। स्वयं उस सागर का 'अतलांतिक' नाम भी संस्कृत 'अ-तल-अंतिक' यानि जिसके तल का कोई अन्त ही नहीं—इस अर्थ से पड़ा हुआ है। मदिरा तथा अतल-अंतिक यह नाम उस समय के हैं जब यूरोप पर संस्कृत भाषा बोलने वाले दैत्यों का अधिकार था। वे जिस द्वीप में मदिरा तैयार कराते उस द्वीप का अभी भी वही नाम है।

Man='मानव' शब्द है। Door=द्वार। adore=आदर। Saint=सन्त। Preacher=प्रचारक। Priest=पुरोहित। Bachelor=ब्रह्मचारी। underling=अन्तरलिंग। Rome=राम। Cinerama, panoramo आदि मनोरमी जैसे ही शब्द हैं। nose=नास।

Come=आगम में आरम्भ का 'आ' अक्षर निकल गया है और 'ग' का उच्चार 'क' बनकर 'आगमन' को आंग्लभाषा में 'Come' कहते हैं। 'मन' शब्द आंग्लभाषा में mind लिखा जाता है। कोट को Coat या Cote लिखा जाता है। Bridge=ब्रज उर्फ ब्रज शब्द है। pedestal= पादस्थाल। Podium=पादीयम्। Stadium=स्थडिलम्। Cycle शब्द को यदि Chcle लिखा जाए तो वह चक्र उर्फ चवल शब्द प्रतीत होता है। मृत्यु से ही morgue, mortuary, mortal, immortal आदि शब्द बने हैं। Primogeniture=प्रथम-जन्म-चर यानि ज्येष्ठतम सन्तान का विशेष अधिकार। Progenitor=प्रजनेतारः। Tree=तरु:। Cot-erie=कोठड़ी=कोटर=कोटरी। water=वारि। son=सुनु:= sonny। Daughter=दुहितर। Television=तलवीक्षण। night= नक्तम्। upper=ऊपरि। fruit=फल जो वस्तुत: ful लिखते-लिखते fut उर्फ fruit लिखा जाने लगा। 'पश्य' शब्द का अद्याक्षर 'प' निकलकर आंग्लभाषा में 'see' यानि देखना। संस्कृत 'अ' का उच्चार आंग्लभाषा में 'ओ' होता है। जैसे रायल का रॉयल। तैल=ऑइल। अत: पाद शब्द का परिवर्तन आंग्लभाषा में foot कैसे हुआ यह देखना उद्‌बोधक होगा। 'पितर' का फादर उच्चार होता है, अत: पाद का फाद (faad) हुआ। अ का 'ओ' उच्चार होता है अत: faad के स्थान पर food हुआ। दन्त को Tooth भी कहते हैं, यानि 'द' का उच्चार 'ट' भी होता है अत: foot शब्द बना। इस प्रकार आंग्लभाषा की प्राकृत प्रणाली स्पष्ट हो जाती है। Royalty=रायलइति। regality=राजलइति। Majesty महा (रा) ज अस्ति। Sovereignty—स्वराजन्इति=Suzereinty। radio= रव+द्यु। रशियन (ऋषीय) दारू का नाम Vodka (व्होदका) है जिसमें 'उदक' यह संस्कृत शब्द है। अग्नि से ignition, ignite आदि शब्द बने हैं। Case=कोश। Cucoon=कौषून। paramount= परमअन्त। permanent—परम+अनन्त। window=वातायन। wind=वात। Sport=स्पर्ध। miscellaneous=मिश्रितम। missile=मूसल। molecule=मूलकणानां कुलम्। Chain को Shain लिखकर देखें तो वह श्रृंखला शब्द का टूटा अवशेष प्रतीत होगा। C को S

लिखना आवश्यक इस कारण होता है कि आंग्ल वर्णमाला C अक्षर के कम से कम चार उच्चार रूढ़ हैं C=स-श-ष तथा 'क'। जैसे Committee शब्द में 'c' अक्षर का 'स' उच्चार करें तो 'समिति' शब्द एकदम ध्यान में आ जाएगा। Sportsman यह स्पर्धमान या स्पर्धमानव शब्द है। अँगुली को आंग्लभाषा में finger लिखते हैं। इसमें आरम्भ का 'f' अक्षर भूल जाएँ तो inger जो शेष रहता है वह 'अंगुल' शब्द का 'इंगर' अपभ्रंश दिखाई देगा। Erotic शब्द से 'e' निकालकर पढ़ें तो वह 'रतिक' शब्द दिखेगा। 'सर्व' के अर्थ से आंग्लभाषा में all शब्द है जो पाणिनी के 'अल्' सूत्र से बना है क्योंकि सारे स्वर तथा व्यंजनों का निर्देश 'अल्' सूत्र से होता है। इससे पता लगता है कि जब संस्कृत विश्वभाषा थी तब पाणिनी का व्याकरण ही सर्वत्र लागू था और सारे पढ़े-लिखे लोग उससे परिचित थे। सर में जो जुएँ होती हैं उन्हें संस्कृत में ल्यूका: कहते हैं। उसी से आंग्ल भाषा में lice शब्द बना है। उसका उच्चार 'लाइस' किया जाता है जब कि 'c' का उच्चार वहाँ यदि 'क' करा जाए तो 'लाइक' यानि 'ल्यूका:' शब्द ही दिखेगा। Supreme=सुपरम शब्द है। जनन् शब्द आंग्लभाषा के genesis, genetic, genital आदि कई शब्दों का स्रोत है। उसी प्रकार संस्कृत का 'नामशेष' शब्द आंग्लभाषा में nemesis लिखा जाता है। 'स्थबल' शब्द से आंग्लभाषा में table, stable आदि शब्द बने हैं। संस्कृत 'स्तेन' (यानि चोर) आंग्लभाषा में Sthein ऐसा लिखें। उसमें से आरम्भ का 'S' अक्षर छोड़ दें और अन्त में n को 'f' में बदल दें तो स्तेन शब्द Thief कैसे बना इसका पता लगेगा।

आंग्लभाषा में शब्दकोश को dictionary कहते हैं। इसमें एक T अक्षर अधिक डालकर उस शब्द को dictiontary लिखकर पढ़ें तो वह 'दीक्षांत्तरी' शब्द दिखाई देगा। दी गई दीक्षा में यदि कोई शब्द समझ में न आए तो उसका विवरण जिसके अन्दर प्राप्त हो सकता है। वह ग्रन्थ 'दीक्षांतरी' के बजाय टेढ़ा-मेढ़ा 'डिक्शनरी' बनकर रह गया है। अंग्रेजी का diction वास्तव में संस्कृत 'दीक्षण' शब्द है, यह अन्य प्रमाणों से भी प्रतीत होगा। जैसे disciple। इसे dicsiple लिखकर पढ़ें तो वह 'दीक्षा-पाल' शब्द दीखता है। इसी प्रकार discipline शब्द को dicsipline

लिखकर पढ़ें तो वह "दीक्षापालन" शब्द दिखेगा। आंग्ल क्रियापद to sleep,, to eat स्वपितुम, स्वादितुम् आदि संस्कृत शब्दों को तोड़-मोड़ कर बने हैं।

संस्कृत व्याकरण लागू

संस्कृत व्याकरण का 'तर-तम भाव' आंग्लभाषा में भी पाया जाता है, जैसे lesser, better, brighter, harder तथा maximum, optimum आदि। संस्कृत के संधि के नियम भी आंग्लभाषा में लागू हैं, जैसे जगत्+नाथ में 'त' बदलकर अगला अक्षर 'न' दुगना होकर 'जगन्नाथ' शब्द बनता है वैसे ही आंग्लभाषा में भी in-limitable=illimitable, in-legal=illegal आदि रूप होते हैं। मूक, मौन आदि से mute, mummy बने हैं।

Rabies शब्द संस्कृत रमस् है। Drug संस्कृत द्रव्य शब्द है। आयुर्वेद में औषधि को द्रव्य कहते हैं।

आंग्लभाषा में पोप को God-father कहते हैं जो 'देवस् पितर' का अनुवाद है। संस्कृत 'द' या 'ध' अक्षर का अन्य भाषाओं में कई बार 'ज' या 'झ' उच्चार होता है। इसका उदाहरण देवस्-पितर का Zeuspitar=Zupiter उर्फ Jupetar शब्द में मिलता है।

Bombast का अर्थ है बड़ी-बड़ी खोखली बातें करना जो बोंब+अस्ति की सन्धि है। क्योंकि हिन्दी, मराठी आदि भाषा में 'बोंब मारना' कहते ही हैं।

ऊपर उद्धृत उदाहरणों से पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि आंग्लभाषा तथा लॅटिन, ग्रीक आदि अन्य भाषाएँ पूरी तरह से संस्कृत भाषा के विविध प्राकृत रूप हैं।

Comparative Philology का बुलबुला

भारत में जब अंग्रेजों का शासन था तब उन्होंने Comparative philology, Comparative religion, Comparative mythology आदि अण्ट-सण्ट नाम देकर विद्वानों की कई पीढ़ियों को प्रभावित तथा गुमराह किया कि Indo-European नाम के किसी अज्ञात स्रोत से सारी

पौराणिक कथाएँ तथा भाषाएँ, सभ्यता, धर्म आदि बने हैं। यह कहकर उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से विद्वज्जगत् की ऐसी धारणा बना दी कि ग्रीस-रोम आदि में किसी यूरोपीय स्रोत से ही मानवीय सभ्यता के सारे सूत्र पाए जाते हैं। भारतीय विद्वान भी वही रटते-रटाते रहे। ऐसे गुमराह विद्वानों को हम कहना चाहते हैं कि मानवीय सभ्यता का एकमेव स्रोत जो उन्हें दीखता है वह संस्कृत और वैदिक था। अब भारतीय विद्वानों के द्वारा इस ग्रन्थ के सहाय्य से आजतक की उस उल्टी गंगावादी विचारधारा को पलट देने की आवश्यकता है।

आंग्ल शब्दकोश के प्रणेता H. G. Fowler ने Concise Oxford Dictionary की प्रस्तावना में बड़ी नम्रतापूर्वक यह कह रखा है कि "शब्दकोशकार कोई सर्वज्ञानी तो होता नहीं। कई बातों का उसे अनुमान ही लगाना पड़ता है। अतः उसके बनाए शब्दकोश की त्रुटियाँ, प्रमाद आदि प्रकाशन के बाद ही शनैः-शनैः ज्ञात होते रहना अनिवार्य है।

किन्तु Fowler साहब को हम यह जताना चाहेंगे कि आंग्ल शब्दकोश के गठन में हमने जो दोष पाया है वह कोई इधर-उधर के एकाध शब्द की व्युत्पत्ति की बात नहीं!

हमारा निष्कर्ष तो बड़ा मूलग्राही है। उसका एक आधार ऐतिहासिक है तो दूसरा भाषाशास्त्र का है। ऐतिहासिक दृष्टि से हम यह कहेंगे कि मानव का इतिहास वेदों के संस्कृत शब्दभण्डार से ही आरम्भ हुआ। अतः वाणी, वाचा, शब्द आदि का मूलस्रोत वेद ही हैं। शब्द को आंग्लभाषा में word कहते हैं। उसका 'r' अक्षर प्रक्षिप्त समझकर छोड़ दें तो 'wod' यह 'वद' और एक तरह से 'वेद' शब्द भी है यह जान पड़ेगा। वैदिक परम्परा में भी यह वचन प्रसिद्ध है कि मानव का सोचना, बोलना आदि वेदों से ही प्रारम्भ हुआ।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से हम पहले बता चुके हैं कि जंगली अवस्था के मानव ने पशुपक्षियों की आवाज की नकल करते-करते निजी भाषा बना ली। यह यूरोपीय विद्वानों का अनुमान सर्वथा निराधार है। वैदिक परम्परा के अनुसार मानवीय सभ्यता जीवन के हर क्षेत्र में पूर्ण ज्ञानी अवस्था से आरम्भ हुई। अतएव मानव को आरम्भ से ही विश्वनियन्ता की तरफ से

ज्ञानभण्डार वेद तथा उनकी भाषा संस्कृत विरासत में प्राप्त हुई।

माता-पिता जैसे शिशु को लिखा-पढ़ाकर प्रौढ़ जीवन के लिए तैयार कर देते हैं वैसे ही परमात्मा ने मानव की पहली पीढ़ी शिक्षित कराकर यह जीवन चक्र चला दिया।

संस्कृत के आधार पर आंग्ल शब्दकोश बनाने का कार्य

आंग्ल शब्दों के संस्कृत स्रोत कैसे ढूंढ़े जा सकते हैं इसके कुछ मार्ग दर्शक नमूने हमने ऊपर उद्धृत किए हैं। इस सूत्र से प्रेरणा पाकर अब कुछ विद्वानों को संस्कृत व्युत्पत्तियाँ देने वाला आंग्ल शब्दकोश करने का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। उसका प्रथम संस्करण चाहे कितना भी छोटा हो, एक बार यदि इस कार्य की नींव डाल दी जाए तो कई विद्वान उस दृष्टि से विचार करने के कार्य में जुट जाएँगे और कोश शुक्लेन्दु जैसा विस्तृत होता रहेगा।

इस दृष्टि से मैंने पुणे नगरी में स्थित Deccan College के शब्द-कोश विभाग को पत्र द्वारा सूचित किया था कि पचास भागों का आंग्ल-संस्कृत शब्दकोश संकलित करने की उनकी योजना में आंग्ल शब्दों की संस्कृत व्युत्पत्ति भी देने का कार्य साथ-साथ होता रहा तो यह नया ध्येय अधिक किसी द्रव्यराशि के बिना अपने आप सम्पन्न होता रहेगा और उससे उस शब्दकोश की उपयुक्तता तथा महत्ता बढ़ेगी।

तथापि मुझे निराश होना पड़ा। बड़ी-बड़ी पदवियाँ धारण किए हुए विद्वान लकीर के फकीर ही होते हैं। एक मामूली मजदूर की तरह सरकारी स्तर का कार्य घिसी-पिटी प्रणाली की चारदीवारी में सीमित रखने में ही इस इतिकर्त्तव्यता का अनुभव करते हैं। 'विक्रमार्जित सत्वस्य स्वयमेव मृगेंद्रता' न्याय के अनुसार किसी विशेष योजना या बुद्धिमानी की चमक-दमक दिखाने की क्षमता या आकांक्षा उनमें होती ही नहीं।

Deccan College से मुझे उत्तर यह मिला कि चित्रे नाम के जो विद्वान कोशविभाग के प्रमुख थे वे अमेरिका में रममाण हो गए हैं। उनका पद जो संभालेंगे उनके सामने मेरा प्रस्ताव रखा जाएगा। बस वही अन्तिम पत्र था। अगले विद्वान जो भी उस पद पर आए हों उन्होंने मेरे सुझाव की

कोई दखल ली नहीं और बात वहीं समाप्त हो गई। इस प्रकार की गैर जिम्मेदारी से पचास खण्डों के आंग्ल-संस्कृत शब्दकोश जैसे पुण्यकार्य को निभाना एक बड़ा पाप तो है ही, साथ ही जनता के अपार धन का एक तरह से अपव्यय भी हैं। ऐसी बेदरकार, बेछूट, लापरवाही प्रवृत्ति की जितनी कड़ी निन्दा की जाए, कम ही रहेगी।

विश्व के विद्वानों का कर्त्तव्य

संस्कृत ही सारे मानवीय शब्दब्रह्माण्ड या शब्द सृष्टि का स्रोत होने के कारण सारे विश्व के विद्वानों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने-अपने देश में संस्कृत का प्रसार करें तथा संस्कृत से निजी भाषाओं का नाता ढूंढकर जनता को उससे परिचित एवं शिक्षित कराएं।

ऐसा नाता प्रस्थापित कैसे किया जा सकता है इसके हम नीचे कुछ उदाहरण दे रहे हैं। संस्कृत का 'क्षण' शब्द लें। आंग्लभाषा में उसका समानार्थी शब्द second है। उसी को यदि cson ऐसा लिखा जाए तो Second यह शब्द 'क्षण' का ही टेढ़ा-मेढ़ा रूप है; यह बात ध्यान में आएगी।

Minute शब्द से n अक्षर निकालकर 'मित' उच्चार करने से 'छोटा नपा-तुला, समय का भाग' ऐसा उसका संस्कृत अर्थ प्रतीत होगा।

Caution शब्द लें। वर्णमाला में C का उच्चार 'स' है यह ध्यान में रखकर Caution शब्द को Saution लिखें। अब यह भी स्मरण रहे कि आंग्लभाषा में dent (दन्त) को Tooth भी कहते हैं। यानि द और ट अदल-बदल जाते हैं। अत: Saution शब्द को Saudion ऐसा लिखें। वैसा लिखते ही वह संस्कृत 'सावधान' शब्द प्रतीत होता है। अब विचार करें कि कहाँ संस्कृत का 'सावधान' उच्चार और कहाँ अंग्रेजी का 'कॉशन्' उच्चार। कहाँ संस्कृत का 'पाद' और अंग्रेजी का foot। तथापि भाषिक शल्यचिकित्सा द्वारा आंग्ल की तोड़-फोड़ संस्कृत से जोड़ने की विधि के कुछ नमूने हम इस अध्याय में प्रस्तुत कर रहे हैं। यह एक तरह का भाषा का लोहारकार्य उर्फ smithy है।

Car शब्द देखें। उसमें 'c' का 'स' उच्चार करें तो वह संस्कृत 'सर'

शब्द प्रतीत होगा ।

बिजली का Current शब्द लें। उसमें भी 'c' अक्षर का 'स' उच्चार करें तो वह संस्कृत 'सरन्त' शब्द सिद्ध होता है। सरिता, स्रोत आदि शब्दों का वही तो अर्थ है।

अंग्रेजी महाविद्यालयों में Physics, Chemistry, Technology आदि भौतिक शास्त्र के विषय छोड़कर logic, philosophy, economics, history आदि को humanities कहा जाता है।क्यों? Humanity यानि तो मानवीय समाज। तो क्या लोहार, बढ़ई, कुम्हार, इन्जीनियर, डॉक्टर आदि जो विद्या सीखते हैं वे मानव के लिए उपयोगी नहीं हैं? दैनंदिन जीवन में तो उनकी बनी वस्तुओं के बगैर एक क्षण भी रहा नहीं जा सकता। तो उन्हें humanities में शामिल क्यों नहीं किया जाता। उसका विवरण संस्कृत के सहारे से ही प्राप्त होता है। 'स' का उच्चार 'ह' होता है, यह ध्यान में रखकर humanities शब्द को Sumanities लिखकर देखें तो वह सु-मन-इति ऐसा शब्द प्रतीत होगा। यानि जो विषय पढ़कर मन को सुविचारी बनाया जा सकता है, उनका अन्तर्भाव humanities विभाग में होता है। लोहार, बढ़ई आदि क्रोध में आकर निजी औजार दूसरे के सिर पर मारकर उसका वध भी कर सकते हैं किंतु humanities वाले history, psychology, economics, metaphysics आदि विषय उसे मानवता की शिक्षा देते हैं।

चित्र को आंग्लभाषा में picture कहते हैं। उसमें भी 'pi' अक्षर फालतू समझकर उड़ा दें। अब शेष शब्द cture को पढ़ें तो उसमें संस्कृत 'चित्र' शब्द ही छिपा पाया जाएगा। Chequered भी उसी अर्थ का शब्द है।

चरित्र या चारित्र्य का आंग्ल शब्द character कितना मिलता-जुलता है।

Usurpation शब्द 'उत्पाटासन' यानि किसी के आसन को उखाड़कर हड़पकर लेना ऐसा संस्कृत का ही अपभ्रंश है।

Champion शब्द में 'C' का उच्चार S करें तो Shampion यानि सम्पन्न (अर्थात 'प्रवीण') अर्थ होता है।

गुप्तचर को आंग्लभाषा में Spy कहते हैं। उन्हीं तीन अक्षरों को यदि psy ऐसा लिखा जाए तो वह संस्कृत 'पश्य' (यानि बारीकी से या ध्यान देकर देखना) शब्द दीखता है। Physics शब्द उसी पश्य शब्द का टेढ़ा-मेढ़ा रूप है।

संस्कृत का 'अंगार' शब्द ही अंग्रेजी में anger (यानि क्रोध) कहलाता है। क्योंकि क्रोध आने पर चक्षु अंगार जैसे होकर 'ज्वालाकुल' दिखाई देते हैं और मस्तिष्क तप जाता है।

ज्योतिषीय परिभाषा

अब ज्योतिषीय परिभाषा देखें। Sun यह सूर्यन् (Suryan) शब्द का संक्षिप्त रूप है। Moon शब्द को Mun लिखें और उसका आंग्लपद्धति से 'मन' ऐसा उच्चार करें क्योंकि moonday (यानि सोम उर्फ चन्द्र का वार) का उच्चार आंग्लभाषा में monday ही किया जाता है। फल-ज्योतिष में चन्द्रमा मानवीय मन का ही प्रतीक है। सागर के ज्वारभाटा का नियन्त्रण जैसे 'चन्द्रमा' करता है वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति के मन का उतार-चढ़ाव भी चन्द्र की स्थिति के अनुसार होता है। अतः आंग्लभाषा में चन्द्र को 'मन' ही कहा है। किन्तु उसका उच्चार थोड़ा विकृत करके 'मून' ऐसा किया जाता है। मंगल के लिए आंग्लभाषा में Mars शब्द है जो वस्तुतः 'मारेशः' इस अर्थ का है क्योंकि 'मंगल' देवों का सेनापति माना गया है। Mercury (यानि बुध) को Mersury लिख कर देखें तो वह महर्षि शब्द दिखाई देगा। फलज्योतिष में बुध को विद्यामहर्षि का ही कारकत्व है। Jupiter (यानि बृहस्पति) 'देवस् पितर्' नाम है। इसका हम विवरण दे चुके हैं। Venus (यानि शुक्र) यह 'वेनस्' ऐसा संस्कृत नाम ही है। Saturn (यानि शनि) शब्द से 'r' अक्षर निकालकर देखें। उसे अब Satun पढ़ें तो सत्+ना उर्फ शैतान शब्द वहीं से आया दिखेगा। फल-ज्योतिष में शैतानी ही शनि का गुण है। अब T अक्षर भी निकालकर पढ़ें तो Saun नाम रह जाएगा जो 'शनि' का ही विकृत उच्चार है।

और एक विशेषता देखें—वेदांगज्योतिष में शनि को सूर्यपुत्र कहा है।

सूर्य को आंग्लभाषा में Sun कहते हैं तथा पुत्र को son लिखते हैं, यानि शनि sun का son है। ठीक वही भाव 'Soun' उर्फ शनि इस नाम में ग्रथित है।

आंग्ल Hour शब्द संस्कृत 'होरा' का विकृत उच्चार है। इसी अर्थ से प्रवीण ज्योतिषी को होराभूषण कहा जाता है।

कई नक्षत्रों के नाम या तो स्वयं संस्कृत हैं या उनके अनुवाद रूप हैं। जैसे Great bear और Litter bear नक्षत्र पुंजों का अर्थ है 'बड़ा रीछ' और 'छोटा रीछ', क्योंकि उनकी आकृति वैसी दीखती है। संस्कृत वेदांग ज्योतिष में उन्हें ठीक ऋक्षा: ही कहा गया है।

वेदांग ज्योतिष ने एक नक्षत्रपुंज का नाम ज्येष्ठा रखा है। ज्येष्ठा का अर्थ है आयु में, वय में दूसरे नक्षत्रों से बड़ा। वह नाम अनादिकाल से प्रचलित है। जब लोग जंगली अवस्था में रहते थे और उनके पास दूरबीन आदि आधुनिक उपकरण नहीं थे, ऐसा अविचारी भ्रम वर्तमान शिक्षित लोगों के मुख से सुनाई देता है।

अब देखें उसी ज्येष्ठा नक्षत्र के सम्बन्ध से Patrick Moore द्वारा लिखित "The Story of Astronomy" ग्रंथ का उल्लेख है कि Antares (ज्येष्ठा) is a typical Red giant, far from being youthful it is approaching stellar senility यानि ज्येष्ठा यह एक विशाल लाल नक्षत्र है जो केवल प्रौढ़ या युवा अवस्था से बहुत आगे बढ़कर वयोवृद्ध होता जा रहा है। तेज या ज्योति उर्फ प्रकाश की मात्रा में ज्येष्ठा का क्रम १७वां है। ज्येष्ठा से अगस्त्य, स्वाँति, चित्रा, व्याध आदि अधिक तेजस्वी हैं।

आधुनिक शास्त्रीय उपकरणों के आडम्बर भी प्राचीन वेदांग ज्योतिष के निष्कर्षों की ही पुष्टि करते हैं। इसमें वैदिक विद्याओं के दैवी स्रोत का प्रमाण मिलता है।

Canis Major a Canis Minor नाम के जो दो नक्षत्रपुंज हैं उन नामों में 'C' के स्थान पर 'S' लिखकर Samis यानि 'श्वानस्' ऐसा उच्चार करें तो वेदांग ज्योतिष के ही नाम प्रतीत होंगे। कुत्तों जैसी उनकी आकृति दिखाई देने से उन्हें 'श्वान' कहा जाता है।

यूरोपीय लोगों में भी किंवदंती है कि चन्द्रमा पर ऐसी आकृति दीखती है जैसे एक मनुष्य हाथ में शशक (खरगोश) को पकड़े खड़ा है। इस कल्पना को man wiih the hare on the moon कहते हैं। वह वेदांग ज्योतिष की ही कल्पना है। भारतीय पुराणों में शशक ही चन्द्रमा का वाहन माना जाता है। शशांक नाम चन्द्रमा का इसी कारण पड़ा है। चन्द्रमा ही मानवीय मन का द्योतक है। मन भी शशक जैसा ही चंचल और भयभीत-सा रहता है।

राहू, केतु को यूरोपीय भाषाओं में Nodes of the Moon कहते हैं जो 'नाद' उर्फ निनाद का द्योतक है।

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक यह कि वैदिक ज्योतिष शास्त्र ही सारे विश्व की मूल विद्याओं में से एक रहा है और दूसरी बात यह कि ज्योतिष विद्या के विश्व-प्रसार से प्राचीन संस्कृत दशग्रंथी गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली ही विश्व में प्रचलित थी इसका यह एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

ऋषीय (रशिया) देश के शिबिरीय प्रदेश में किसी व्यक्ति के जीवित रहने की आशा जब कम हो जाती है तो कुटुम्बी जन आयुदेवता की पूजा कर उसकी आयु के लिए आशीष माँगते हैं। आयुदेवता की मूर्ति इण्टर-नेशनल अकादमी आफ इण्डियन कल्चर, डी-२२ हौजखास, नई दिल्ली-१६ में प्रदर्शित है।

अनेक वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मंगोलिया देश की राजधानी 'उलनबाटोर' तथा अन्य नगरों के बाजारों में विपुल मात्रा में बिकती हैं।

ईसापूर्व विश्व में स्थान-स्थान पर ऐसी वैदिक मूर्तियों का पूजन होना प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक सभ्यता का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

ठाणे से प्रकाशित 'इतिहास पत्रिका' त्रैमासिक सितम्बर ३०, १९८३ के अंक के मुखपृष्ठ पर छपा चित्र (पृष्ठ २६६) चीन, जापान में पाए जाने वाले आलिंगन मुद्रा के गणेश युगल की मूर्ति का चित्र है। ग्रीस देश में पीठ-से-पीठ जुड़े हुए दो गणेश इकट्ठे बनाने की प्रथा थी।

चीन तथा जापान में पाई जाने वाली वैदिक मूर्तियों से यह सिद्ध होता है कि उन देशों में आगे चलकर बौद्धमत का प्रसार इसी कारण हुआ कि

वहाँ आरम्भ से ही सर्वत्र वैदिक धर्म दृढ़मूल था।



(गणेशजी की जुड़ी हुई प्रतिमा)

चीनी तथा जापानी लोग गणेश को 'शोतेन' कहते हैं जो 'शिवतनय'

का अपभ्रंश है। चीनी तथा जापानियों की बोल-चाल में वैदिक शब्द, वाक्य-प्रचार आदि का पता लगाने का इसी प्रकार यत्न होना चाहिए। साधारणतया चीनी भाषा की लुंग-फुंग आदि विशिष्ट उच्चार पद्धति के कारण उनकी भाषा का संस्कृत से कोई सम्बन्ध ही नहीं है ऐसी सामान्य लोगों की धारणा होती है। ऐसे लोगों को हम सावधान करना चाहते हैं कि उच्चारशैली पर न जाएँ। उनके प्रत्येक शब्द के मूल अक्षर क्या हैं ? उनका सीधा-सादा उच्चार क्या होगा ? आदि बातों का बारीकी से विचार करने पर उनके शब्दों का संस्कृत उद्‌गम ढूंढना सरल होगा।

शोतेन को वे कांगितेन भी कहते हैं। इसी प्रकार चीनी दर्शनशास्त्र या अध्यात्मविद्या को Taoism कहते हैं। वहाँ Tao यह 'देव' शब्द का अपभ्रंश है। Theology, Divinity आदि यूरोपीय शब्द भी देवलगी (विद्या) तथा देवनीति आदि संस्कृत 'देवमूलक' ही दिखाई देंगे।

आंग्ल कप (cup) शब्द और जापानी 'कषु' शब्द दोनों संस्कृत 'कुप्पी' शब्द के ही रूप हैं। एक जापानी विद्वान हाजीम नाकापुरा अन्य सामान्य जापानियों की भाँति यह समझे बैठे हैं कि चीन और जापान में बौद्ध धर्म के साथ-साथ वैदिक संस्कृति भी चली आई। इस तरह के निष्कर्ष आधुनिक विद्वानों की सदोष तर्कपद्धति के लक्षण हैं। उस विचार-प्रणाली का एक दोष यह है कि चीन, जापान निजी इतिहास केवल २४०० वर्ष का ही मानते हैं। बौद्धधर्म यदि चीन, जापान आदि देशों में २४०० वर्षों से रूढ़ है तो उससे पहले लाखों वर्ष वहाँ कौन-सी सभ्यता थी ? और चीन, जापान आदि दूर देशों में बौद्ध धर्म फैला ही क्यों ? यदि भारत के बौद्ध राजाओं ने चीन-जापान आदि देशों पर सैनिकी आक्रमण किया होता तब ही वहाँ बौद्ध धर्म फैल सकता था। इस्लाम व ईसाई धर्म ऐसे ही छल-बल द्वारा फैलाए गए। अशोक आदि भारत का कोई भी ऐसा आक्रामक बौद्ध राजा नहीं दिखाई देता जिसने चीन और जापान पर निजी अधिकार जमाकर बौद्धधर्म फैलाया हो। ऐसी अवस्था में चीन जैसे भारत से भी विस्तीर्ण देश में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ कैसे ? क्या यह अपने-आप में एक ऐतिहासिक चमत्कार नहीं है ? आज तक इतिहासज्ञों ने ऐसे मूलभूत प्रश्नों पर कभी विचार ही नहीं किया। बौद्धमत का चीन तथा जापान में इस कारण

चुपचाप प्रसार होता गया कि उन देशों में सर्वत्र वैदिक धर्म के आश्रम, केन्द्र, मठ, मन्दिर, गुरुकुल आदि धर्मरत थे ही। उन्हीं केन्द्रों द्वारा बुद्ध का बोलबाला उस समय होने लगा जब बुद्ध का नाम भारत में बड़ा प्रसिद्ध हुआ। राजा होते हुए भी सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने आध्यात्मिक साहस और सर्वसंगपरित्याग का जो मार्ग अपनाया, उससे तत्कालीन जनता बुद्ध को देवावतार मानने लगी। अत: विश्वभर में सनातन आर्य, वैदिक, हिन्दू धर्म के जो केन्द्र, मठआदि थे उनमें उत्कृष्ट भक्तिभाव से यदा-कदा, उठते-बैठते बुद्ध की ही चर्चा होने लगी। होते-होते वही प्राचीन वैदिक आदेश दुबारा बुद्ध के नाम से बार-बार दोहराए जाने लगे। ऐसा करते-करते घर-घर की वेदी पर वैदिक देवताओं की मूर्तियाँ तो टिकी रहीं किन्तु लोगों के मन में बुद्ध ही इन देवताओं का नया आविष्कार बनकर रह गया। इस प्रकार वैदिक धर्मप्रणाली कायम रहते हुए भी उसे लोग बौद्धमत प्रणाली समझने लगे। विश्व में महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि शिक्षा केन्द्रों में जो विद्वान बौद्धमत को एक अदृश्य धर्म-प्रणाली कहकर प्रस्तुत करते रहे हैं, वे स्वयं बड़ी भूल कर रहे हैं और दूसरों को भी गुमराह कर रहे हैं। बौद्ध, जैन, वैदिक आदि सारे एक ही तत्त्वप्रणाली के विभिन्न पहलू हैं।

वैदिक धर्म को ब्राह्मणी प्रणाली कहना अयोग्य है

पाश्चात्य विद्वान भी दूसरा एक भ्रम फैला रहे हैं। आर्य, सनातन, वैदिक हिन्दू प्रणाली को वे ब्राह्मणधर्म कहते आ रहे हैं जो सरासर गलत है। वैदिक धर्म की चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम पद्धति है जिसमें एक रथ के पहियों की तरह चारों वर्णों का समान महत्व है। त्यागी, अपरिगृह वृत्ति तथा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते—के न्याय से ब्राह्मण को समाज का आदर प्राप्त था किन्तु वैदिक समाज में चारों वर्णों का समान महत्व था। अत: वैदिक सभ्यता को ब्राह्मण प्रणाली कहना सर्वथा अयोग्य है। उदाहरणार्थ आजकल पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली में अध्यापक, परीक्षक, अधीक्षक, विभाग प्रमुख आदि सारे 'प्रोफेसर' होते हैं। तो क्या वर्तमान पाश्चात्य विद्या-प्रणाली को प्रोफेसरी (professorial) प्रणाली कहना ठीक रहेगा?

चीन में सैंकड़ों भग्न वैदिक मन्दिर पाए जाते हैं। जापान में तो हजारों मन्दिरों में बुद्ध मूर्तियों के साथ शिव, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि की मूर्तियां प्रस्थापित हैं।

चित्र में बताए गए गणेश मूर्त्तियों के सिर पर अरब पद्धति का डोर से बँधा कपड़ा दीखता है। इससे यह अनुमान निकलता है कि मोहम्मद पूर्व अरब में भी इस प्रकार की गणेश मूर्तियाँ होती थीं।

जापान के राजप्रासाद में जुलाई-अगस्त मासों के आसपास आनेवाले गणेश चतुर्थी के दिन गणेश का पूजन जापानी राजघरानों में होता था। आजकल भी जापान की जनता विशिष्ट प्रसंगों पर ईश्वर की कृपायाचना करते समय गणेश पूजन करती है। गणेश से वे यश और विघ्नहरण की अपेक्षा करते हैं। नारा की इकोमाई पहाड़ी पर शेशनजी मन्दिर में कांसाई नगर की व्यापारी जमात शोतेन (शिवतनय) गणेश को पूजती हैं। ओसाका नगर में जापान का सबसे बड़ा गणेश मन्दिर है। वहाँ एक पुजारी गणेशजी की सेवा में सदा उपस्थित रहता है।

चीन में Tun Huang में तथा Kung-hsein मन्दिर में चट्टानों की गुफाओं में गणेश प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। गणेश के दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे सूर्य, चन्द्र, मदन, ग्रहदेवता तथा कुछ अन्य वैदिक देव भी दिग्दर्शित हैं।

दक्षिण चीन में सागर तट पर Quanzhou नाम का नगर है। वहाँ उत्खनन में शिव, विष्णु आदि वैदिक देवताओं की मूर्त्तियाँ तथा दीवारों पर खुदे अनेक दृश्य पाए गए हैं। वहाँ के एक प्राचीन हिन्दू देवस्थान में किए उत्खनन में कृष्ण, हनुमान, लक्ष्मी, गरुड़, आदि के चित्र भी पाए गए हैं। वे वहाँ के Museum of Overseas Communications में प्रदर्शित हैं। यह उत्खनन सन् १९३४ में प्रारम्भ हुआ, जब प्रथम बार यकायक एक चार फुट ऊँची विष्णु मूर्ति Janjiachoang नाम के स्थान पर प्राप्त हुई। भारतीय शैली की ही वह विष्णुमूर्त्ति थी। नरसिंह अवतार की तो ७३ मूर्त्तियाँ वहाँ पाई गई हैं। गजेन्द्र मोक्ष आदि विष्णु-पुराण की कथाएँ भी वहाँ उत्कीर्ण हैं। कैलाश पर्वत पर यौगिक मुद्रा में पार्वती सहित बैठे त्रिशूलधारी भगवान शिव भी वहाँ दिग्दर्शित हैं। उनके समक्ष नन्दी, हाथी

आदि कई प्राणी नतमस्तक बनाए गए हैं। वे मूर्तियाँ Yuan घराने के शासन में बनीं। उस राजघराने के अन्त के समय जो गृहयुद्ध छिड़ा उसमें वह वैदिक मन्दिर भग्न हो गया।

वहाँ के वास्तुसंग्रहालय (museum) के अधिकारी Mr. Yang Quinzhang के अनुसार वहाँ का एक मन्दिर मदुराई के मीनाक्षी मन्दिर की शैली का बना हुआ है।

Quanzhou के भित्तिचित्रों में कुबेर के दो पुत्र यमुना में सात कन्याओं सहित जलक्रीड़ा करते हुए, नागराज उन पर आक्रमण करते हैं; तब भगवान कृष्ण नागराज का दमन कर उनको अभय देते है, ऐसा दृश्य खुदा है। दूसरे चित्र में कृष्ण और गरुड़ का युद्ध बताया गया है।

उन्हीं खण्डहरों में प्रस्तर के बने एक द्वार पर हनुमान की आकृति खुदी है। अत: प्राचीनकाल में वह राम मन्दिर रहा है? प्राचीन चीनी साहित्य में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद आदि का पता अवश्य लगाना चाहिए।

सुनहरे गरुड़ की वहाँ अनेक आकृतियाँ बनी हैं। उनमें से एक में गरुड़ पर आरूढ़ विष्णु गजेन्द्र को बचाने के लिए जा रहे हैं, ऐसा दिग्दर्शित है।

Quanzhou चीन के ईशान्य के सागरतटवर्ती Fujiyan प्रान्त में है। Quanzhou के एक भग्न मन्दिर में पाए गए एक १४½ फुट ऊँचे शिवलिंग के ऊपर कई तमिल शिलालेख खुदे हैं। नि:सन्तान चीनी स्त्रियाँ सन् १९४० तक उस मन्दिर में जाकर भगवान को भोग लगाकर सन्तान प्राप्त करने का आशीर्वाद माँगती थीं।

वहाँ चट्टानों में जो चित्रकारी उत्कीर्ण है उसमें एक हाथी निजी शुण्डा से कमल का फूल बड़े भक्तिभाव से शिवलिंग पर चढ़ाता दिखाया गया है। एक गौ निजी स्तनों से शिवलिंग के ऊपर दूध सींचती बताई गई है। नरसिंह अवतार में विष्णु हिरण्यकश्यपु का पेट फाड़ता बताया गया है। गरुड़ पर आरूढ़ विष्णु, मुरली बजाते हुए कृष्ण, तालाब में उतरी गोपियों के वस्त्र दूर रख देने वाला बालकृष्ण, कालिया मर्दन, गंगावतरण, हनुमान का लंका में प्रवेश आदि अनेक उत्तमोत्तम पौराणिक प्रसंगों के खुदे दृश्य

यहाँ देखे जा सकते हैं। चीन जैसे विशाल देश में अतीत की वैदिक सभ्यता के ऐसे कितने ही बड़े प्रेक्षणीय प्रमाण छिपे पड़े होंगे जो भाषा भिन्नता, राजनयिक कटुता, वहाँ की कम्युनिस्ट सरकार की धार्मिक लापरवाही आदि कारणों से अज्ञात रह गए हैं।

इस प्रकार चीन से इंग्लैण्ड तक की पहाड़ियों में खुदी इनं गुफाओं में वेदपठन तथा गुरुकुल शिक्षा आदि सम्पन्न होती रहती थी। अब ऐसे सारे स्थान बौद्ध, ईसाई, इस्लामी आदि अन्य धर्मी लोगों के हाथों में पड़ जाने के कारण नष्ट तथा अज्ञात होते जा रहे हैं।

अफ्रीका खण्ड का वैदिक अतीत

अफ्रीका एक विशाल भू-खण्ड है जिसमें कई देश हैं। इसके उत्तर में लीबिया, ईजिप्त, मोरक्को, अल्जीरिया आदि देश हैं। जिनमें सहारा जैसे विस्तीर्ण मरुस्थल हैं जहाँ तेज लू में रेत एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ने से देखते-ही-देखते बड़े टीले से बनते, घटते या मिटते रहते हैं। समय-समय पर बनने या मिटने वाले उस भू-जंजाल में कितने ही ऐतिहासिक रहस्य पृथ्वी की तह में दबकर नष्ट हो गए होंगे या छिपे होंगे।

मध्य अफ्रीका में कई स्थानों पर इतना घना जंगल है कि उसके अन्दर क्या-क्या रहस्य छिपे होंगे ? कितने ही मन्दिर या महल नष्ट हुए पड़े होंगे? किसी को कुछ पता ही नहीं।

दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों ने निजी धाक जमाते समय प्राचीन स्थानीय सभ्यता के अवशेषों को चुपचाप नष्ट कर दिया हो तो उसमें कोई बड़ी बात नहीं।

उत्तरी अफ्रीका में मुसलमान बने अरबों ने इस्लामपूर्व सभ्यता को दीमक और टिड्डियों की तरह पूरी तरह नष्ट करना निजी धर्म ही मान लिया था। फिर भी पिरामिड बड़े सौभाग्य से इसलिए बच पाए कि राक्षसी इस्लामी शक्ति पिरामिड की विशालता तथा मजबूती देखकर ढीली पड़ गई। पिरामिडों के अन्दर समय-समय पर धरी हुई सम्पत्ति लूटने में ही अरबी मुसलमानों को समाधान मानना पड़ा।

इसके अतिरिक्त यूरोपीय क्रुस्ती तथा अरबी मुसलमानों ने अफ्रीका को मानवीय शिकार तथा लूट की जागीर समझकर अफ्रीका में जहाँ-तहाँ

छापे मारकर स्थानीय दरिद्र, अनपढ़, भयभीत हब्शी स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों को पकड़-पकड़कर लूटकर, मारकर और उन पर बलात्कार कर गुलाम बनाकर नावों में भर-भरकर विश्व की अनेक मण्डियों में बेचना आरम्भ कर दिया।

गोरे ईसाइयों के हाथों गुलाम बना हब्शी ईसाई कहलाया तथा अरबी मुसलमानों के पंजों में फँसे हब्शी मुसलमान कहलाए। इनमें से कई मुसलमान बनाए गए हब्शी मुसलमान अरब लुटेरों के साथ विश्व की विभिन्न मण्डियों में गुलाम बनकर बिकते-बिकते, चलते, भटकते, भारत में विभिन्न सुल्तान, बादशाहों की नौकरी करते-करते मलिकंबर जैसे वजीर या कोंकण के जंजीरा नगर में सिद्दी सुल्तान भी बन गए। तात्पर्य यह है कि इतिहास की ऐसी उथल-पुथल, लूटमार, शिक्षा का अभाव, अफ्रीका में बार-बार पड़ने वाला अकाल, इस्लामी तथा ईसाइयों द्वारा मचाई तबाही तथा घने जंगल और विशाल मरुस्थल इनके जंजाल में, यदि अफ्रीका खण्ड वर्तमान इतिहास में एक अँधेरा महाद्वीप (dark continent) कहलाता हो, तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

आधुनिक विद्वज्जगत् में स्थूल रूप से यह मान्यता है कि जंगलों के अतिरिक्त अफ्रीका में ऐतिहासिक अवशेष या प्राचीन प्रगत सभ्यताओं के अन्य कोई चिह्न हो ही नहीं सकते।

हम उस विचारधारा से सहमत नहीं हैं। ऐसे निष्कर्ष निकाले जाने का मुख्य कारण है यूरोपीय गोरे विद्वानों का संकुचित दृष्टिकोण। वे यह मान बैठे हैं कि विश्व का इतिहास लगभग दो-ढाई हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं हो सकता। उससे पूर्व के मानव नगण्य जंगली अवस्था में होंगे। और वर्तमान हब्शी लोग जब अनाड़ी, अशिक्षित, दरिद्री तथा पिछड़े हुए हैं तो दो हजार वर्ष पूर्व तो वे और भी पिछड़े हुए रहे होंगे। अतः अफ्रीका खण्ड में कुछ ऐतिहासिक खण्डहर होना असम्भव है।

हम इस प्रश्न का दूसरी तरह से विचार करते हैं। हमारा कहना यह है कि एशिया तथा यूरोप में यदि ऐतिहासिक खण्डहर पाए जाते हैं तो अफ्रीका जैसे विशाल खण्ड में प्रगत मानवों की पीढ़ियाँ क्यों न रही होंगी?

इस दृष्टि से विचार करते-करते अतीत के अफ्रीका के इतिहास के कुछ

मौलिक चिह्न हमारे हाथ लगते हैं। जैसे कि प्राचीन भारतीय साहित्य में कुशद्वीप, शंखद्वीप आदि के जो उल्लेख हैं वे अफ्रीका खण्ड का निर्देश करते हैं। क्योंकि अफ्रीका का आकार शंख जैसा है और उसके लम्बे-चौड़े प्रदेश पर कुश कहलाने वाली लम्बी घास उगती है।

अफ्रीका खण्ड का रामायणिक सम्बन्ध

हम पिछले भाग में देख ही चुके हैं कि उत्तरी अफ्रीका का एक देश अजपति राम के नाम से Aegypt (इजिप्त) कहलाता है। उसकी पौराणिक कथाओं में दशरथ का नाम आता है तथा उसके राजा लोग रामईशस् प्रथम, रामेशस् द्वितीय इत्यादि कहलाते थे।

कुश तथा माली-सुमाली

सारे अफ्रीका के लोग Cushites (कुशाइत) यानि राम सुत कुश के प्रजाजन कहलाते हैं। अफ्रीका में राम की ख्याति इसलिए फैली कि अफ्रीका खण्ड रावण के कब्जे में था। रावण के भाईबन्द माली, सुमाली के नाम से अफ्रीका खण्ड में आज भी वी विस्तीर्ण प्रदेशों के नाम Mali तथा Somali हैं ही।

लोहित सागर

लंका की शोध में वानर पथकों ने पृथ्वी के विभिन्न भागों पर उड़ान करते समय लोहित सागर (यानि Red Sea) का उल्लेख किया है। वह लोहित सागर अफ्रीका खण्ड के समीप है। हो सकता है कि पिरामिड रामायणकालीन दैत्यों के मरुस्थल स्थित किले तथा महल रहे हों। वे जीते जाने के पश्चात् उनके आगे राम विजय के चिह्न के रूप में रामसिंह के The Sphinx नाम की प्रतिमा बना दी गई हो।

कन्या

अफ्रीका में जो Kenya नाम का देश है वह कन्याकुमारी जैसा कन्या शब्द है। हो सकता है कन्या नाम की उस प्रदेश की प्रमुख देवी रही हो।

विशाल मन्दिर

दारेसलाम नाम का जो सागर तट का प्रमुख नगर अफ्रीका में है,

वह स्पष्टतया द्वारेशालयम् (द्वार-ईशालयम्) संस्कृत नाम है। उसका अभिप्राय यह है कि उस नगर में कोई विशाल शिव मन्दिर, कृष्ण मन्दिर, राम मन्दिर, विष्णु मन्दिर या गणेश मन्दिर रहा हो। सागर तट के पास ही उस नगर में या समीप के जंगल में उस मन्दिर के खण्डहर या कम-से-कम भूमिगत नींव बारीकी से ढूंढ़ने पर तो मिल सकती है। उस मन्दिर के खण्डहर दिखाई देना; इसलिए शक्य नहीं क्योंकि कट्टर अरब मुसलमानों के द्वारा वह मन्दिर पूरी तरह से नष्ट कर उसका मल्बा सागर में बिखेर दिया गया हो या आसपास के निर्धन हब्शी लोग एक-एक करके उस ध्वस्त मन्दिर के पत्थर, इंटें आदि उठा ले गए हों।

ब्रिटिश वास्तु-संग्रहालय में प्रदर्शित जानकारी

सितम्बर ६, १९८६ को लण्डन नगर का ब्रिटिश म्युजियम देखते समय वहाँ के जीने की मध्यवर्ती दीवार पर एक प्रदर्शित चित्र के नीचे लिखा ब्यौरा मैंने पढ़ा, वह इस प्रकार था—

The Kingdom of Benin in Nigeria is famous for its brass castings, The finest dating from 15th and 16th centuries.

First European contacts with the kingdom were made by Portuguese explorers.

Traditional state religion centered on the king or the Oba who lived in a huge palace compound in Benim city—whose wellbeing was associated with that of the whole city.

At one period brass plaques of this kind were used to cover the wooden pillars of his palace. Brass goods were a royal prerogative in Benin···Apart from one or two that show signs of warfare the plagues depieet officials and retainers engaged in the complex ritual of courtly life.

इसका अनुवाद इस प्रकार है—"नाइजीरिआ का बेनिम राज्य पीतल

की ढली वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है। उस प्रकार की पीतल की उत्तमोत्तम वस्तुएँ पन्दहवीं या सोलहवीं शताब्दी से प्राप्य हैं। यूरोपीय लोगों में सर्व-प्रथम पुर्तगाल के लोगों ने अफ्रीका (नाइजीरिया) से सम्पर्क स्थापित किया।

"वहाँ का (हब्शी) राजा 'ओबा' कहलाता था। वही सारी प्रजा तथा राज्य का केन्द्र माना जाता था। बेनिम नगर में एक विशाल परिसर में उसका महल था। राजा सुखी हो तो ही प्रजा सुखी हो सकती है; ऐसी वहाँ की धारणा है।"

"राजप्रासाद के लकड़ी के स्तम्भों को प्राचीनकाल में चित्रकारी वाले पीतल के पतरे मढ़ दिए जाते। अन्य पीतल की वस्तुएँ भी राजमहल का विशिष्ट गौरव मानी जाती थीं।"

वास्तुसंग्रहालय में इस प्रकार की जो पीतल की पट्टियाँ प्रदर्शित थीं उन पर या तो युद्ध के दृश्य अंकित थे या राजदरबार, राजपरिवार आदि के दृश्य थे।

अन्य एक चित्र में राजद्वार के बाहर खड़े कुछ सेवक दिखाई देते थे। साथ ही एक मीनार बताई गई थी जिसके शिखर पर पीतल का एक गरुड़ (पंजे में) साँप को पकड़े हुए बताया गया था।

वहीं पीतल की बनी बड़ी सुराहियाँ, चीते के आकार की बनी प्रदर्शित थीं। दरबार में (नित्य) होने वाली धार्मिक विधियों में उन सुराहियों का और साथ ही धरे हुए पत्थर के परशुओं का प्रयोग होता था।

महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्ष

ऊपर दिए वर्णन से कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्ष निकलते हैं। एक तो यह कि पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी से यदि पीतल की बनी वस्तुओं पर चित्रकारी पायी जाती है तो अफ्रीका में अतिप्राचीन काल से धातु खोजना, उन्हें शुद्ध करना, पिघलाना, मिलाना और उनके ऊपर चित्रकारी करना आदि व्यवसाय बड़े प्रगत अवस्था में रहे होंगे। दूसरा निष्कर्ष यह है कि अफ्रीका खण्ड में सोने के विपुल भण्डार हैं। तो हो सकता है कि प्राचीन काल में वहाँ जब प्रगत दैत्यों का अधिकार था तब वहाँ के राजपरिवार रईस आदि सोने की वस्तुएँ ही बनाते रहे हों। किन्तु जब से अफ्रीका में

यूरोप के पुर्तगाल, स्पेन आदि देशों के ईसाई लुटेरे तथा आगे चलकर अरब मुसलमान लुटेरे घुसे तब से उन्होंने सारा सोना लूटा, हब्शियों का प्रगत समाज हताहत तथा दुर्बल छोड़ा और तब से सारा अफ्रीका खण्ड एक पिछड़ा प्रदेश और एक अंधेरा खण्ड बन गया।

हृत् देश

अफ्रीका के एक प्रदेश का नाम रोडेशिया (Rhodesia) है। एक Rhodes Island नाम का द्वीप भी है। Sir Cecil Rhodes नाम के एक अंग्रेज के कारण Rhodesia, Rhodes आदि नाम प्रचलित हुआ ऐसी सामान्य धारणा है। किन्तु होडस्, होडेशिया आदि नाम हृत् (यानि हृदय) हृद्देशीय (यानि heartland) अर्थात् हृदयप्रदेश या हार्दिक प्रदेश इस अर्थ का संस्कृत नाम है।

Sir Cecil यह मूलतः श्री सुशील नाम है।

टाँगानीका नाम का एक अफ्रीकी प्रदेश है जो तुंगनायक यानि 'श्रेष्ठ नेता' इस अर्थ का नाम है।

झंझिबार नाम कांचीपुर का अपभ्रंश है। टाँगानीका तथा झंझीबार इन दो प्रदेशों का सम्मिलित राज्य आजकल 'टँझानिया' (Tanzania) कहलाता है। द्वारेशालयम् उसी प्रदेश का एक सागरतटवर्ती नगर है।

अफ्रीकी-अरबी आदि संस्कृतोभद्व भाषाएँ हैं

अफ्रीका की स्वाहिली भाषा, अन्य प्रादेशिक बोलियाँ तथा अरबी भाषा, सभी संस्कृत के टूटे-फूटे रूप हैं। जैसे स्वाहिली में सिब यानि 'सिंह' तथा कटाम्बर यानि कटा हुआ अम्बर अर्थात् एक छोटा तौलिया या हाथ पोंछने का रूमाल।

इथिओपिया उर्फ अबिसीनिया की आठवीं दसवीं की इतिहास-पुस्तकों में अफ्रीकी लोग कुशाइत यानि कुश के प्रजाजन हैं ऐसा उल्लेख है।

वहाँ के क्रुस्ती, हब्शी सम्राट् स्वर्गीय हेल सलासी को भारत के एक स्वामी कृष्णानन्द ने एक अनोखी पवित्र वस्तु कहकर जब रामायण की प्रति भेंट की तो हेल सलासी ने यह कहकर कृष्णानन्द को चकित किया कि "हम

अफ्रीकी लोगों को राम की जानकारी कोई नई बात थोड़े ही है। क्योंकि हम सारे कुशाईत हैं। उस भेंट के पश्चात् स्वामी कृष्णानन्द ने बाजार से शालेय इतिहास की कुछ पुस्तकें खरीदकर उन्हें बड़ी उत्कण्ठा से पढ़ा तो उनमें स्पष्ट लिखा था कि अफ्रीकी लोग कुशाईत हैं।

अफ्रीका का भारत से भाषिक सम्बन्ध

भारत तथा अफ्रीकी भाषाओं का सम्बन्ध दर्शाते हुए John Reinhold Forster लिखते हैं–(A Voyage to the East Indies, by Tra-Povlino Da San Bartholomeo; प्रकाशक G. Davis, Chancery Lane, London, M. D. CCC, पृष्ठ ३१४ से ३१८ पर दी टिप्पणी का उल्लेख देखें) "कई प्राच्य भाषाओं की यह विशिष्टता है कि उनके मूल धातु में उच्चारण में इधर-उधर थोड़ा फेरफार करने से कई नए शब्द बन जाते हैं। इथिओपिया की वर्णमाला में भी वही प्रथा पाई जाती है। उस वर्णमाला के अक्षर तो केवल २६ हैं। किन्तु उस प्रत्येक अक्षर को सात स्वर चिह्न जोड़कर उसी अक्षर के भिन्न-भिन्न उच्चार सम्पन्न होते हैं। जो अक्षरों के २० प्रकार हैं। इस तरह कुल २०२ अक्षर बनाए जाते हैं। पेगू तथा आवा के ब्रह्मी लोगों की वर्णमाला के लगभग सभी अक्षर Gheez तथा Ambher के इथिओपीय वर्णमाला में ज्यों-के-त्यों पाए जाते हैं। उनके उच्चार तथा अक्षर जोड़ने की पद्धति एक समान है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तो पक्की बात है कि पेगू के ब्रह्मी लोगों की वर्णमाला भारत के संस्कृत लेखों से ली गई थी। ऐसा लगता है कि नील नदी के समीप एक पहाड़ी पर Appolonius के समय जिन भारतीय ऋषि-मुनियों का आश्रम था, उन्होंने इथिओपिया को वह वर्णमाला सिखाई। हो सकता है इथिओपीय, इराणी, तिब्बती, पेगुई आदि लोगों ने भारत से ही वर्णमाला सीखकर उसे निजी प्रदेशों में प्रस्तुत किया। पादरी Poas ने एक बार कहा था कि "प्रलय के पूर्व भी संस्कृत भाषा थी। Ptolemy, Arrian, Strabo आदि प्राचीन ग्रीक लेखकों ने भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। अतः शकुन्तला नाटक के यूरोपीय संस्करण के लिए लिखी प्रस्तावना में George Forster ने जो अनुमान व्यक्त किया है कि ग्रीक लोगों की संस्कृत भाषा

अवगत नहीं थी और भारत में भी ईसवी सन् के आरम्भ से पूर्व संस्कृत भाषा अस्तित्व में नहीं थी" सरासर गलत है।

दोनों Forster बन्धुओं के अनुभवों में कितना अन्तर है। John Forster मानते हैं कि प्रलय के पूर्व से ही संस्कृत भाषा अस्तित्व में है तो उधर जार्ज फार्स्टर समझते हैं कि ईसवी सन आरम्भ हुआ लगभग उसी समय संस्कृत भाषा का आरम्भ हुआ।

जार्ज फार्स्टर जैसे संकुचित दृष्टि के यूरोपीय विद्वानों की तर्क पद्धति में एक महान् दोष यह है कि वे ऐतिहासिक तथ्यों की अनदेखी कर जातिगत विद्वेष से मूल्यांकन करते हैं। ईसवी सन् प्रारम्भ हुआ तभी संस्कृत का निर्माण यकायक कैसे हुआ? क्या वह आसमान से टपक पड़ी?

उसके विरुद्ध जॉन फॉर्स्टर जो कहते हैं, वह बिल्कुल सही है कि संस्कृत तो प्रलय से पूर्व भी थी। क्योंकि वेदों की भाषा संस्कृत ४४ मन्वन्तरों की भाषा है। वह सृष्टि की उत्पत्ति के समय से लगातार मन्वन्तरों में कायम रही है।

किन्तु जॉन फॉर्स्टर के कथन का रहस्य भी इस ग्रन्थ में कहे हमारे सिद्धान्त से ही सुलझ जाता है। वह यह है कि कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक सारे विश्व में संस्कृत भाषा और वैदिक संस्कृति ही विद्यमान थी। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् ईसाई तथा इस्लामी पन्थ का स्थापन होने तक वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत भाषा टूटी-फूटी अवस्था में विद्यमान रही। अत: किसी भी भाषा या वर्णमाला का स्रोत संस्कृत ही है।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की भाषा

अनपढ़-से-अनपढ़ भारतीय प्रभु रामचन्द्र आदि अवतारों को 'त्रैलोक्य नाथ' तथा परमात्मा को 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' कहता रहा है।

आधुनिकतम पाश्चात्य वैज्ञानिक भी अब मानने लगे हैं कि पृथ्वी जैसे अन्य अनगिनत ग्रहों पर विविध प्रकार के जीव अवश्य रहते होंगे। तदनुसार अमेरिकी तथा अन्य देशों के दूरदर्शन पर Star Trek Unidentified Flying Objects जैसे धारावाहिक उपन्यास, से अन्य ग्रहों पर कैसे जीव रहते होंगे? उसके काल्पनिक दृश्य दिखाए जाते हैं। उनमें अन्य ग्रहों के

लोग भी अमेरीकी शैली की आंग्लभाषा बोलते बताए जाते हैं तथा पृथ्वी पर भी अन्य ग्रहों से यान आते रहे हैं ऐसी आशंकाएँ समय-समय पर प्रकट की जा रही हैं।

यदि अन्य ग्रहों पर मानवों सदृश्य कोई प्राणी हुए भी तो उनसे कौन सी भाषा में बातचीत की जा सकती है यह उलझन भी कई लोगों के मन में खटकती रहती है।

अमेरिका आदि कई पाश्चात्य देशों के शास्त्रज्ञ निजी अनुसन्धान-शालाओं से खगोलीय (रेडियो) सन्देश (या केवल विविध प्रकार की ध्वनि लहरी) अन्तरिक्ष में इस उद्देश्य से निनादित करते रहते हैं कि योगायोग से अन्य ग्रहों पर यदि मानव या देव बस्ती हो तो वे उन्हें सुनकर पृथ्वी पर वैसे ही सन्देश भेजकर सम्पर्क स्थापित करें।

प्रश्न यह उठता है कि क्या वे रेडियो सन्देश केवल रेल इंजन की सीटी की तरह 'पी पी...टी टी' ऐसी निरर्थक आवाज ही होते हैं या उनके द्वारा कोई शाब्दिक सन्देश भेजे जाते हैं ?

यदि शाब्दिक-भाषिक सन्देश भेजे जाते हों तो दूसरे ग्रहों के लोग अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, उर्दू, फारसी तो समझेंगे नहीं।

यदि पृथ्वी की कोई भाषा अन्य ग्रहों पर समझी जा सकेगी तो वह केवल संस्कृत ही हो सकती है। क्योंकि वह देवभाषा है। देव अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक हैं। वेदों को देवों के मुखसे निकले शब्द कहे जाते हैं। तो संस्कृत यदि देववाणी हो तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में जहाँ भी मानव या देवकोटि के व्यक्ति हों, अन्य कोई भी भाषा उन्हें समझ नहीं आएगी किन्तु संस्कृत अवश्य समझ आएगी।

पृथ्वी पर भी अमेरिकी शास्त्रज्ञों को कम्प्युटर के लिए संस्कृत ही योग्य भाषा दीखती है। अन्तरिक्ष से जो व्यवहार किए जाते हैं वे सारे कम्प्युटर द्वारा ही किए जाते हैं। अत: अन्तरिक्ष के ब्रह्माडों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए संस्कृत ही सदा प्रयोग की जाए तो उसे अन्य ग्रहों के विद्वज्जन अवश्य समझेंगे।

एक ग्रह से दूसरे ग्रहों पर भ्रमण करने वाले नारद सबसे संस्कृत में ही बात करते थे। पृथ्वी पर हर २००-४०० मील पर जैसी भाषा बदलती

रहती है वैसी कठिनाई विविध ग्रहों पर भ्रमण करने वाले नारद जी को या अर्जुन, इन्द्र आदि को कभी नहीं आई क्योंकि वे संस्कृत बोलना जानते थे।

स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रभाषा क्या होगी ? जब ऐसा प्रश्न उठा तो कांग्रेस के नेताओं ने संस्कृत को तो ढकेल ही दिया। केवल लोक-लज्जा के भय से हिन्दी को कागजी मान्यता दी। किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में हिन्दी की व्याख्या अरबी-फारसी मिश्रित खिचड़ी हिन्दुस्तानी ऐसी कर दी। ऐसे दोगलेपन में शासक की मानसिक दुर्बलता और दासता प्रकट होती है। इनके दिखाने के दाँत और चबाने के दाँत भिन्न रहे हैं। दिखावा कुछ करते हैं और कृति कुछ भिन्न ही करते हैं। ऐसे शासक, जिनके बोल कुछ होते हैं और कृति भिन्न होती है, वे तुरन्त पदभ्रष्ट करा दिए जाने चाहिएं। उनके हाथों में देश की बागडोर रखना अयोग्य है।

इथिओपिया के नरेश की सिंह उपाधि

इथिओपिया के स्वर्गीय नरेश हेल सलासी को Lion of Judah कहते थे। इसका अर्थ था यदु प्रान्त के या यदु जाति के सिंह। क्षत्रियों को सिंह कहना वैदिक-प्रथा है। अतः इथिओपिया की राज-प्रणाली भी वैदिक मूलक है।

इथिओपिया को अबिसीनिया भी कहते हैं। अबुसीनिय, 'आप-सिन्धु' उर्फ सिन्धु जल का वाचक शब्द है। सिन्धु तीर के लोग Ethiopia में जा बसे अतः उस देश का आपसिन्धीय उर्फ अबुसीनीय ऐसा नाम पड़ा।

मारिशस्

दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी किनारे के पास मारिशस (Mauritius) द्वीप है। राम के बाण उर्फ रॉकेट ने मारीच को वहाँ गिराया था अतः उस द्वीप का नाम मारीचस् उर्फ मारिशस् पड़ा। हो सकता है कि राम के हमले से मारीच ने पलायन कर उस द्वीप में शरण ली जिससे उसका मारिचस नाम पड़ा।

कुश के पिता Ham (हाम) थे ऐसा इथिओपिया की पाठ्य-पुस्तकों में लिखा है। वह इस कारण कि वैदिक हाँ···हीं आदि संस्कृत भगवान

स्वरूप बीजाक्षर मन्त्र हैं। इथिओपिया में महाभारतीय युद्ध के पश्चात् जैसे-जैसे सनातन धर्म की शिक्षा, प्रवचन इत्यादि बन्द हो गए तो लोगों के मन में राम तथा 'हाँ' का घोटाला होते-होते कुश का पिता राम के बजाय Rham कहा गया। तत्पश्चात् 'हा' का 'र' निकलकर 'हाम' ही कुश का पिता कहा जाने लगा।

नागचिह्न

लन्दन नगर स्थित ब्रिटिश म्यूजियम में रखे एक ईजिप्त के नरेश फरोहा के मुखौटे के ललाट पर फन ऊपर उठाए हुए नाग अंकित है। ठेठ उसी प्रकार का नाग भारत के पण्ढरपुर नगर में विठ्ठल रखुमाई की देव-मूर्तियों के सिर पर भी विद्यमान है। वह देवत्व का लक्षण है। नाग जैसे विषैले प्राणी ने भी क्रूर स्वभाव त्यागकर निजी फण की छाया किसी व्यक्ति पर करना, उस व्यक्ति की दैवी शक्ति का द्योतक होता है। अनजान लेटे हुए जिस व्यक्ति को बगैर काटे नाग निजी फण उस व्यक्ति के सिर पर फहरा दे, वह व्यक्ति आगे चलकर बड़ा भाग्यशाली सिद्ध होता है। वैसे भी नाग एक दिव्यशक्ति का प्रतीक है। मानवीय शरीरस्थ कुंडलिनी नागशक्ति ही होती है। पीठ की रीढ़ जहाँ भेजे में मिलती है वहाँ उसका आकार नागफणा जैसा ही होता है। यह ब्रह्माण्ड आकाश के अवकाश में एक विशाल अजगर की तरह लपेटी लिए फैला हुआ है। सारे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड सर्पगति से ही आगे-आगे सरक रहे हैं। अतः वैदिक संस्कृति नाग दैवीशक्ति का एक प्रतीक बन गई है।

प्रक्षालन

ईजिप्त देश की धार्मिक विधियों में स्थान शुद्धि तथा शरीर शुद्धि का बड़ा महत्व था। प्रत्येक धार्मिक विधि से पूर्व पुरोहित को ऐसी शुद्धि करनी पड़ती थी। धूप स्नान से, सुगन्ध से, धूप जलाकर तथा उपवास आदि शुद्धि के विभिन्न प्रकार होते थे।

पिरामिडस् पर वेदवचन खुदे थे

The Oriental Religions in Roman Paganism नाम का ग्रन्थ

Franz Cumont ने लिखा है। उसके पृष्ठ ९१ पर प्राचीन ईजिप्त की धार्मिक विधियों में शुद्धि का महत्त्व वर्णित है। उसी ग्रन्थ में पृष्ठ ९४ पर उल्लेख है कि "The sacred books of the great Roman period are a faithful reproduction of the texts that were engraved upon the walls of the pyramids at the dawn of history, notwithstanding the centuries that had passed. Even under the Caesers the ancient ceremonies dating hack to the first ages of Egypt were scrupulously performed because the smallest word and the least gesture had their importance."

इसका अनुवाद इस प्रकार होगा "इतिहास के आरम्भ में पिरामिडों की दीवारों पर वे धार्मिक संहिताएँ उत्कीर्ण थीं जो ग्रीस और रोम के लोगों के ग्रन्थों में अन्तर्भूत थीं। उन दोनों में बड़ा लम्बा समय बीता था। तब भी रोमन सम्राटों के शासनकाल में उन ग्रन्थों के अनुसार ही सारे क्रियाकर्म किए जाते थे। वे विधियाँ-ईजिप्त में आदियुगों से बारीकी से बराबर ज्यों-की-त्यों की जाती थीं क्योंकि उनके करने में कोई क्रिया या अक्षर इधर का उधर होना ठीक नहीं समझा जाता।"

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनतम पिरामिडों के ऊपर वेदों की संहिताएँ उत्कीर्ण थीं। क्या वे अभी भी हैं? कौन-सी लिपि में हैं? पिरामिडस् सम्बन्धी संशोधन करने वाले मुसलमान तो कभी वेदों के भित्ती लेखों की बात करेंगे ही नहीं। क्योंकि प्रत्यक्ष काबा के मन्दिर में अन्दर की दीवारों पर जो शिलालेख हैं उनका वे किसी को पता नहीं लगने देते।

जिन गोरे यूरोपीय लोगों ने पिरामिडस् सम्बन्धी अन्वेषण किया है क्या उन्हें पता है कि पिरामिडस् पर वेद खुदे हैं? या पता लग कर भी उन्होंने वह बात गुप्त रखी। या वे उन्हें गडरियों के निरर्थक आलाप प्रलाप समझते रहे? कुछ भी हो भारतीयों और विशेषत: वेद तथा संस्कृत भाषा में श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अब से सारे विश्व के पुरातत्व में तथा प्राचीन इतिहास में अधिक ध्यान देना आवश्यक है। गोरे यूरोपीय लोगों को भी हम सावधान करना चाहेंगे कि उन्होंने ईसापूर्व काल का जहाँ भी संशोधन-अध्ययन किया वह सारा शुष्क तथा निरर्थक रहा। क्योंकि ईसा

पूर्व समय में सारे विश्व में वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा ही थी यह मूल बात ही उन्हें अज्ञात रही।

प्राचीन रोम तथा ईजिप्त के वैदिक पुरोहित

प्राचीन ग्रीस, रोम तथा ईजिप्त में पुरोहितों की श्रेणियाँ होती थीं और उन सबका एक प्रमुख पुरोहित होता था। वे सबके सब जब कृस्ती बनाए गए तब वही श्रेणियाँ ईसाई पादरी संघटन में भी कायम रहीं। वे प्राचीन पुरोहित मूर्त्तियों को वस्त्र अलंकार आदि पहनाकर सजाया करते। ध्वज, चामर आदि सहित मूर्त्तियों का समय-समय पर जुलूस निकाला जाता। पुरोहितों के सिर मुड़े होने से वे सामान्य लोगों से भिन्न दिखाई देते। उनकी पोशाक भी अलग प्रकार की होती थी। गणेश, दुर्गा आदि की मूर्त्तियाँ सीमित पूजा अर्चा के पश्चात् डुबा दी जाती हैं। वही प्रथा उन देशों में भी थी। ईजिप्त की पूजाविधि अनादिकाल की चली आ रही थी। मूर्त्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करना दीर्घकाल तक बन्द रहा। मन्दिर खोलने की विशिष्ट धार्मिक विधि होती थी। उसका नाम था apertio। सूर्योदय के समय मन्दिर सार्वजनिक दर्शन के लिए खोल दिए जाते। पुरोहित लोग यज्ञ की अग्नि प्रज्ज्वलित कर उसमें आहुति डालते। Nile (यानि नील गंगा उर्फ नील सरस्वती) का पवित्र जाल पूजा में प्रयोग हुआ करता। बांसुरी आदि वाद्यों की ध्वनि से भजन आदि गाए जाते। मूर्त्तियों पर वस्त्र, अलंकार, कवच-कुण्डल, मुकुट आदि चढ़ा दिए जाते। स्पेन के सागर तटवर्ती Cadiz नगर में ईशस (Isis) देवता पर कौन से आभूषण चढ़ाए जाते थे, इसके सम्बन्ध में एक शिलालेख भी है। दोपहर को भगवान के आराम के समय मन्दिर बन्द रखा जाता था। दिन में दो बार (सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय) पूजा-आरती आदि बड़े धूमधाम से होती। हेरोडोटस ने लिखा है कि ईजिप्त के लोग सबसे अधिक भावुक, श्रद्धालु तथा कर्मठ थे।

ईजिप्त की एक प्राचीन धार्मिक विधि

"मार्च ५ को शरद् के अन्त में जब नौकागमन, पुनः आरम्भ होता,

तब सजे-धजे लोग जुलूस में सागर तट पर जाकर खलासियों के रक्षणकर्त्री देवता Isis के नाम से एक नौका सागर में छोड़ी जाती। उस जुलूस में चित्र-विचित्र पोशाक पहने तथा कुछ लोग मुखौटे पहने आगे चलते हैं। उनके पीछे-पीछे फूल बिखेरती हुई धवल वस्त्र धारण किए हुए स्त्रियाँ चली आतीं। कुछ सेवक मूर्ति को पंखे से हवा करने, दूसरे मशाल या चिराग जलाकर जुलूस के साथ चलते रहते। उनके पीछे भजनमण्डली आती। उनके गीतों के साथ अलग-अलग वाद्य भी बजाए जाते। उनके पीछे भक्तगण और अन्त में मुड़े सिर वाले और विशिष्ट धवल वस्त्र पहने हुए पुरोहित लोग चलते। पुरोहितों के हाथों में पशुमुख वाली देवमूर्ति होती थीं और कुछ अन्य विचित्र उपकरण होते थे जैसे नील (गंगा) के जल से भरा सुवर्ण का कुम्भ (फ्रेंझ क्यूमार की पुस्तक के पृष्ठ ६७ पर ऊपर लिखा ब्योरा प्राप्य है)।

पशुमुख देवताओं का ऊपर जो उल्लेख है वह हैं गणेश (जिनके हाथी का मुख लगा होता है) एवं हनुमान (जिन्हें बानर का मुख बताया जाता है)

प्राचीन ईजिप्त का सर्पियम्

प्राचीन ईजिप्त में जो देवी-देवता होते थे उनके नाम संस्कृत में होते थे। जैसे Isis यानि ईशस्, Osiris यानि ईश्वरस्, Serapium यानि सर्पियम्। यूरोपीय विद्वानों ने इन्हें भिन्न-भिन्न पन्थों के देवता माना है, जो बड़ी भारी भूल है। हो सकता है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक प्रवचन बन्द होकर समाज बिखर जाने के कारण लोग स्वयं एक-एक देवता का निजी पन्थ दूसरों से भिन्न समझने लगे हों या यूरोपीय लोगों की समझ में भूल हुई हो, या कृस्ती बने यूरोपीय विद्वानों ने जानबूझकर ऐसा भ्रम फैला दिया हो कि अनाड़ी लोग अनेक पन्थों में बंटकर ऊटपटांग देवताओं की पूजा करने में जब मग्न थे तब कृस्ती धर्म ने उन्हें (सबको) एक सही मार्ग दिखलाया। जैसा भी हो, हम यूरोपीय विद्वानों के उस भ्रम को मिटाकर यह बताना चाहते हैं कि ईजिप्त में अलक्ष्येन्द्र (Alexandria) नाम का एक बड़ा प्राचीन

चला आ रहा है। उसमें Serapium यानि सर्पियम् नाम का शेषशायी

विष्णु का एक विशाल मन्दिर था। वैदिक संस्कृति में नागपंचमी के दिन नागों की पूजा होती है। नागराजों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। अनन्त नाग, वासुकी, तक्षक, कालिया आदि पुराणों में प्रसिद्ध हैं। पाताललोक नागों का निवास स्थान समझा जाता है। यूरोपीय विद्वान इस उलझन में पड़े हुए हैं कि ग्रीक तथा रोम और ईजिप्त इनकी सभ्यता में जो समानता दीखती है वह कैसे निर्मित हुई। मूल स्रोत कौन से देश में है। उन तीनों में से किसने किसका अनुकरण किया। हमारे सिद्धान्त से वे सारे प्रश्न निरर्थक बन जाते हैं। सारे मानवों की मूल एक ही सभ्यता थी। कौरव-पाण्डवों के युद्ध के पश्चात् वह चकनाचूर होकर उसके टुकड़े बिखर गए।

कुछ विद्वान यह कहते आ रहे हैं कि ईजिप्त, रोम, ग्रीस आदि के राजघरानों में जब विवाह होते थे तो कभी वहू अपने मायके से देश से कोई नया देवता लाकर ससुराल देश में कोई नया धर्म या नया पन्थ चालू कर देती थी।

यह बड़ा अनाड़ी सा सिद्धान्त है। यूरोपीय विद्वानों की ऐसे ही नासमझी और अज्ञान के कारण प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कई भ्रम फैल गए हैं।

वैदिक सभ्यता में कई देवता होते हैं। उनका रूप भले ही भिन्न हो। प्रत्येक देवता या मूर्ति पूरी ईश्वरीय शक्ति की प्रतीक होती है। अतः एक देवता की पूजा करने वाले का पन्थ भिन्न प्रकार की मूर्त्ति पूजने वाले से अलग नहीं होता। मूर्त्ति भले ही भिन्न हो सबका वैदिक धर्म ही होता है।

क्यूमॉट ने आगे लिखा है कि "A composit religion founded by the Logides (in Egypt) became a combination of the old creed of the Pharoahs and the Greek mysteries." यानि "ईजिप्त में लॉजाइड्स का स्थापित किया हुआ धर्म, फेरोहा राजाओं की प्राचीन प्रथाएँ तथा ग्रीस तन्त्र रहस्य आदि का मिश्रण था।"

यूरोपीय विद्वानों को विश्व के आरम्भ से इतिहास का अखण्ड कथा-सूत्र अज्ञात होने के कारण उनके मन में ईसवी सन् पूर्व इतिहास सम्बन्धी बड़ा घोटाला है। उन्हें जो विभिन्न टुकड़े दिखाई देते हैं उनकी संगति जोड़

न पाने के कारण वे किस प्रकार के उल्टे-सीधे विवरण देते रहते हैं, वह हम इस ग्रन्थ में बार-बार बता रहे हैं।

पिरामिड्स

हम पहले भी कह चुके हैं कि ईजिप्त में जो अनेक Pyramids हैं उन्हें कब्र समझने में इतिहासकारों की बड़ी भूल रही है। वे मरुस्थल के बाड़े तथा किले रहे हैं। उन अनेक Pyramids में से ८० को Royal यानि रायल (राजा के या राजशाही) कहा जाता है। तीन सबसे विशाल Pyramids काहिरा नगर के समीप गीझा में हैं। उनमें से सबसे प्राचीन और बड़ा पिरॉमिड Chepos उर्फ Khufru में है। उसकी लम्बाई २३० मीटर है। कुल १३ एकड़ भूमि पर वह बना हुआ है। अन्य दो Pyramids के Khafre और Manoure (यानि 'मनोहर' यह संस्कृत शब्द है) नाम हैं।

चन्द Pyramids में ही मृत व्यक्तियों के पार्थिव देह दफनाए हुए हैं। अन्य सारे रिक्त हैं। क्या यह प्रमाण नहीं है कि पिरॉमिड्स मकबरे के हेतु से कभी बनाए ही नहीं जाते थे। इसी कारण विविध देशों में विशाल महलों में या कक्षों में किसी की कब्र बनी हो तो वह इमारत ही मृतक के शव के लिए बनाई गई, यह तर्क निराधार है।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुमानानुसार जलाशयों की सुरक्षा या ज्योतिषीय वेधशाला या कोई गुप्त गणितीय हिसाब का पर्वतप्राय, प्रतीक या विश्व के भविष्य का गुप्त आलेख या वेदभवन आदि विविध उद्देश्यों से पिरॉमिड्स बनाए गए होंगे।

नील गंगा

ईजिप्त में जो नील (इसका उच्चार 'नाईल' ऐसा किया जाता है) नदी है वह विश्व की प्रमुख नदियों में से एक गिनी जाती है। प्राचीन वैदिक परम्परा के अनुसार वह बड़ी पवित्र भी मानी जाती है। नील विशेषण दैवी गुणों का द्योतक है। संस्कृत से सम्पर्क टूटने के पश्चात् लोग 'नील' का अर्थ भूलकर उसे Blue Nile यानि नीली नील कहते आए हैं, जो बड़ा हास्यास्पद सा है।

नील नदी का उद्‌गम कहाँ से है यह आधुनिक यूरोपीय शास्त्रज्ञों के लिए एक बड़ी समस्या बन गई थी। पता ही नहीं लगता था। किन्तु अन्त में प्राचीन संस्कृत पुराणों से वह समस्या हल हो गई। भारत में East India Company की सेना में Colonel John Speke एक अधिकारी थे। उन्होंने लिखा है कि "Colonel Pigdy ने उन्हें एक कागज पर लिखा विवरण और उसके साथ जोड़ा हुआ एक नक्शा दिया जो बड़ा ही रोचक सिद्ध हुआ। क्योंकि चन्द्रगिरी पहाड़ियों से प्रकट होने वाली नील सरिता का उसमें उल्लेख था। वह Lt. Wilford द्वारा उतारा गया पुराणों का एक उल्लेख था। नील नदी के उद्‌गम का नाम भारतीयों का रखा हुआ था यह बड़े आश्चर्य की बात थी। इससे स्पष्ट है कि अफ्रीका खण्ड के विभिन्न भागों से भारतीयों का प्राचीनकाल से सम्बन्ध रहा है। इस प्रदेश के जल स्रोतों की बाबत प्राचीन भारतीयों को पूरा ज्ञान था। अतः आज तक जिन-जिन व्यक्तियों ने नील नदी का स्रोत ढूंढ़ निकालने का दावा किया, वे सारे झूठे साबित हुए।" (पृष्ठ १३ Journal of the Discovery of the source of the Nile, by Col. John Speke)।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि प्राचीन इतिहास में जहाँ देखो वहाँ विद्वानों को भारत का सम्बन्ध दिखाई दिया है तथापि किसी को यह नहीं सूझा कि वह सारे प्रमाण प्राचीन हिन्दू वैदिक विश्व साम्राज्य के लक्षण थे। उस साम्राज्य में वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि सारे प्राचीन विश्व का संयुक्त साहित्य था। इसी कारण उस सारे साहित्य का विश्व में दुबारा प्रसार, अनुशीलन, अध्ययन आदि आरम्भ कराने हेतु एक जागतिक वैदिक संस्कृति विश्वविद्यालय स्थापन करना बड़ा आवश्यक है।

Lt.Gen. Charles Vallancey के ग्रन्थ में पृष्ठ ६९ पर उल्लेख है कि "ईजिप्त एक तरह से भारतीयों की बस्ती का ही देश है क्योंकि भारतीय ही सर्वप्रथम ईजिप्त में आ बसे।"

Pococke के ग्रन्थ में पृष्ठ १७८ पर लिखा है कि "ईजिप्त की परम्परा के अनुसार Menes उस देश का सर्वप्रथम सूर्यवंशी नरेश था।" भारतीय परम्परा भी तो वैवस्वत (यानि सूर्यपुत्र) मनु से ही सूर्यवंशी राजाओं का आरम्भ मानती है। जापानी सम्राट् भी सूर्यवंशी ही कहलाता है।

उसी ग्रन्थ में पृष्ठ २०५ पर Pococke लिखते हैं कि "Philostratus ने ब्राह्मण Iarcus के वचन का उल्लेख किया है। निजी बहीखाता रखने वाले कर्मचारी से Iarcus ने कहा था कि Ethiopia के लोग मूलतः भारतीय थे। किसी राजा के मारे जाने पर उन लोगों को भारत से निकलना पड़ा। एक ईजिप्त निवासी के पिता कहा करते थे कि भारतीय लोग बड़े बुद्धिमान होते हैं और इथिओपियन लोग भारतीय कुल के होने के कारण उन्होंने वही बुद्धिमत्ता और भारतीय परम्परा चलाए रखी है। वह परम्परा अति प्राचीन है। आगे चलकर Julius Africanus ने वही बात कही है। उसी के उल्लेख Eusebius तथा Syncallus ने भी दोहराए हैं। उदाहरण Eusebius ने लिखा है कि सिन्धु प्रदेश के लोग ही आकर ईजिप्त के आस-पास बस गए।

इसी कारण Kenya, (कन्या) दारेसलाम् (द्वारेशालयम्) Rhodesia, (रुद्रदेश) Nile, (नील) ईजिप्त (अजपति), Cairo (कौरव), अल अझर (यानि अल ईश्वर) विश्वविद्यालय आदि सारे संस्कृत नाम अफ्रीका खण्ड से जुड़े हुए हैं।

अमेरिका खण्डों की वैदिक सभ्यता

पृथ्वी के गोले में हिन्दुस्थान के ठीक दूसरी तरफ उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका खण्ड हैं। कहते हैं कि भारत से यदि पृथ्वीतल में ८० मील नीचे आर-पार गड्ढा खोद दिया जाए तो वह अमेरिका में निकल आएगा।

अतः अमेरिका का उल्लेख पुराणों में समय-समय पर पाताललोक, नागलोक आदि कहकर होता रहा है। उस भूमि का पता कोलम्बस से पहले किसी को था ही नहीं, ऐसी धौंस यूरोप के विद्वानों ने रूढ़ की है। उसी प्रकार विद्या के क्षेत्र में भी बिजली, तार, टेलिफोन आदि विभिन्न शास्त्रीय शोध और प्रगति सारी कोपरनिकस, गैलीलियो, न्यूटन, फैरॉडे, मार्कोनी, थॉमस वैट आदि यूरोपीयों के नाम ही मढ़ दी गई है।

इस अनादि जीवनचक्र में वर्तमान आश्चर्यकारी शास्त्रीय प्रगति रामायण, महाभारत जैसे प्राचीन युगों में भी हुई थी। इतिहास की उथल-पुथल में उस प्रगति की जानकारी लुप्त हो जाती है। अतः प्रत्येक नए युग में अप्रगत अवस्था से मानव प्रथम बार ही कुछ प्रगति कर पा रहा है ऐसा आभास निर्माण होता रहता है।

वर्तमान युग में जैसे द्रुतगति विमानों से विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक कुछ घण्टों में ही जाया जा सकता है उसी प्रकार के उल्लेख प्राचीन संस्कृत साहित्य में विपुल होते हुए उन्हें झूठ कैसे कहा जा सकता है?

भूगोल शब्द से ही पृथ्वी के गोल आकार की पूरी कल्पना प्राचीन भारतीयों को थी ऐसा स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है।

अब अमेरिका के विविध भागों के नाम देखें। Canada प्रदेश का नाम प्राचीन शास्त्रज्ञ 'कणाद' मुनि से पड़ा है, ऐसा डोरोथी चॅपलीन का अनुमान उसके ग्रन्थ में उद्धृत है।

कनाडा के उत्तर में जो Alaska प्रदेश है वह अलका (Alaka) का अपभ्रंश है। वैदिक परम्परानुसार कुबेर उत्तर दिशा का स्वामी है। कुबेर की राजधानी अलका नगरी या अलका प्रदेश थी। उसी का वर्तमान उच्चार अलका है।

अमेरिका में शिव, गणेश आदि देवताओं की मूर्तियां तथा शिला-लेख आदि जो सामग्री प्राप्त होती है, उससे वहाँ की प्राचीन वैदिक सभ्यता की पुष्टि होती है। इसका ब्योरा भिक्षु चमनलाल द्वारा लिखित Hindu America (प्रकाशक–भारतीय विद्याभवन, चौपाटी, मुम्बई-४००००७) पुस्तक में चित्रों सहित उपलब्ध है।

Mexico एक प्रदेश है। उसका नाम 'माक्षिक' (यानि चांदी) इस संस्कृत शब्द से पड़ा है। वहाँ चाँदी की खानें हैं। आयुर्वेद में सुवर्ण माक्षिक भस्म होता है। वहाँ के लोग भारतीय वंश के हैं। वे भारतीयों जैसी रोटी थापते हैं, पान, चूना, तमाखू आदि चबाते हैं। नववधू को ससुराल भेजते समय की उनकी प्रथाएँ, दन्तकथाएँ, उपदेश आदि भारतीयों जैसे ही होते हैं।

दक्षिण अमेरिका में Uruguay प्रदेश विष्णु के उरुगाव: नाम से है। Guatamala नाम का दूसरा प्रदेश गौतमालय का अपभ्रंश है। Beunos Aires नगर का उच्चार 'ब्यूनस आयरिश' किया जाता है जो वास्तव में प्राचीन भुवनेश्वर नाम है। Argentina नाम का अन्य एक देश है जो अर्जुनस्थान का अपभ्रंश है।

वैदिक नरेश जब विश्व सम्राट् थे, तब के यह सारे नाम पड़े हैं। पाण्डवों का स्थपति था 'मय'। उसी के द्वारा बने या उसी की प्रणाली के जो प्राचीन विशाल खण्डहर अमेरिका खण्डों में पाए जाते हैं वे अभी तक मय सभ्यता के अवशेष कहे जाते हैं।

उस मय सभ्यता का जो प्राचीनतम धर्मग्रन्थ है उसका नमा है Popal Vuh। उसमें सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व की जो स्थिति वर्णित है, वह वेदों में

दिए संस्कृत वर्णन का ही पूरा अनुवाद है। वह इस प्रकार है।

"सर्वत्र निश्चल स्तब्धता थी। वायु या ध्वनि कुछ नहीं था। अन्तरिक्ष सारा रिक्त था। मानव, पशु या अन्य कोई भी जीव नहीं था। पक्षी, मछलियाँ, शंख, पेड़, पत्थर, गुफा, खाई, घास, जंगल आदि कुछ नहीं था। केवल आकाश—अवकाश था। उसमें केवल एक क्षीरसागर (Sweet Sea) था। कुछ वस्तुएँ, पदार्थ आदि जुटाए नहीं गए थे। कहीं से किसी प्रकार की ध्वनि भी नहीं थी। एकदम एक सन्नाटा-सा था। कहीं कुछ गतिमान था ही नहीं। आकाश का सन्नाटा भंग करने वाली अल्प-सी भी ध्वनि कहीं थी नहीं। कोई वस्तु खड़ी नहीं थी। केवल एक क्षीरसागर ही था—वह भी एकदम शान्त तथा सुनसान। सर्वत्र निश्चल अँधेरा ही अँधेरा था। तब विधाता ने आज्ञा दी, "यह अवकाश भर दिया जाए। जल दूर हो ताकि पृथ्वी निकल सके और जीवमात्र के लिए आधार निर्माण हो।"

उसी Popal Vuh ग्रन्थ में अरण्यवासी (राक्षस) यानि असुरों से देवों के संघर्ष का वर्णन उसी प्रकार का है जैसे भारत में है।

अमेरिका में नरसिंह प्रतिमाएँ

Petar Kolosimo के ग्रन्थ में पृष्ठ १६५ पर उल्लेख है, "It is thought by some that the statues of cat men spread all over central and southern America represent an ancient race"। यानि "मध्य तथा दक्षिण अमेरिका में जो विपुल नरसिंह प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं, वे किसी प्राचीन जमात की होंगी, ऐसा कुछ लोगों का अनुमान है।" हमारा मत तो यह है कि वहाँ नरसिंह अवतार का बड़ा महत्त्व रहा होगा, तभी इतनी प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं।

रामनगर की वेदवाटिका

यूरोप खण्ड में इटली देश की राजधानी रोम रामनगर था यह हम कह चुके हैं। उस रामनगर में Vatican (वॅटिकन्) नाम का विस्तीर्ण स्वतन्त्र धर्मप्रदेश है, जहाँ लगभग सन् ३१२ ईसवी से (Papa उर्फ Pope) पापह उर्फ पोप यह ईसाई धर्मगुरु सर्वाधिकारी है।

ईसाई बनाए जाने से पूर्व वह यूरोप के शंकराचार्य का वैदिक धर्मपीठ था। इस शोध से भारत के इतिहास की त्रुटियाँ सुधारने का भी योगायोग से अवसर प्राप्त होता है।

वर्तमान धारणा यह है कि आद्य शंकराचार्य ने केवल भारत में चार शंकराचार्य पीठ प्रथम बार चार दिशाओं में स्थापन किए। किन्तु स्वयं उन आद्य शंकराचार्य के काल के सम्बन्ध में बड़ा घोटाला है। आंग्ल प्रणाली के सारे विद्वान यह मानते चले आ रहे हैं कि शंकराचार्य ईसाई सन् के ८वीं शताब्दी में हुए, यानि आज से लगभग १२०० वर्ष पूर्व।

किन्तु अंग्रेजों ने भारत के इतिहास से बड़ा कुछ खिलवाड़ करके भारतीय सभ्यता को कम प्राचीन बताना चाहा। उस यत्न में उन्होंने विक्रम तथा शालिवाहन राजाओं को काल्पनिक कहकर इतिहास से उड़ा दिया। उधर बुद्ध और आद्य शंकराचार्य जी के कालों में १३०० वर्षों की कटौती की। "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" नाम के हमारे ग्रन्थ में हमने उन बातों का स्वतन्त्र और विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। हम यहाँ केवल इतना बता देना चाहते हैं कि उन १३०० वर्षों का इतिहास अज्ञात है। अतः भारत में जैसे शंकराचार्य धर्मपीठ हैं, वैसे ही सारे विश्व

में स्थान-स्थान पर थे। किन्तु भारत परतन्त्र होने के कारण तथा अन्य प्रदेशों में ईसाई और इस्लाम दबाव पड़ने के कारण प्राचीन इतिहास या तो मिटा दिया गया या विकृत कर दिया गया।

तो यह हो सकता है कि आद्य शंकराचार्य ने जैसे भारत में चार पीठ स्थापन किए वैसे काबा, रोम, कँटरबरी, जेरुसलेम आदि प्रदेशों में भी दूर-दूर तक वैदिक शंकराचार्य पीठ उन्होंने ही स्थापित किए। या ऐसा हो सकता है कि सारे विश्व में शांकर धर्मपीठ चलाने की बड़ी प्राचीन प्रथा पहले से ही रही हो, जिसमें आद्य शंकराचार्य का समावेश किया जा सकता है। आद्य शंकराचार्य ने जिनसे विद्या ग्रहण की, वे भी शांकर पीठ ही चलाते रहे हों।

प्राचीन विश्व में शिव पूजा का बड़ा महत्व था। इसका अर्थ ऐसा नहीं लगाना चाहिए कि लोग विष्णु की अवहेलना करते थे, या शिव और वैष्णव पंथों में कुछ स्पर्द्धा या वैमनस्य रहता था। एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति—यह तत्व यहाँ लागू है।

विष्णु की नाभि से ब्रह्मा और अन्य जीव जुड़े हुए हैं। विष्णु सारे विश्व के मूलाधार बनकर आधारभूत लेटे हुए हैं। किन्तु लोगों का क्षात्रतेज बढ़ाना तथा प्रत्येक जीव के जन्म से मृत्यु तक की बोलचाल पर कड़ा नियन्त्रण करना शिवजी का कार्य है। अत: कर्मदेवता तथा युद्ध देवता के नाते शिवपूजन सारे विश्व में प्रचलित था।

इसी कारण विश्व में कई स्थानों पर प्रसिद्ध शिव क्षेत्र बने हुए थे और उन-उन स्थानों पर वैदिक समाज का नियन्त्रण तथा मार्गदर्शन करने वाले शंकराचार्य विराजमान थे। कँटरबरी के शंकराचार्य पीठ का हम वर्णन कर ही चुके हैं, अब इस अध्याय में हम इटली के रामनगर में प्रतिष्ठापित शंकराचार्य धर्मपीठ का ब्योरा देंगे।

पहले हम Pope उर्फ Papa शब्द का ही विवरण देखें। आंग्लभाषा में ही 'पोप' (Pope) एकमात्र शब्द है किन्तु लॅटिन, फ्रेंच, जर्मन आदि अन्य यूरोपीय भाषाओं में Papa (पाप उर्फ पापा) ही लिखा जाता है और आंग्लभाषा में भी (Papal) 'पापल' उर्फ 'पेपल' तथा (Popocy) 'पापसी' यानि 'पोपसम्बन्धी' ऐसे जो अन्य धातुसाधित शब्द बनते हैं उनसे पता

लगता है कि आंग्ल भाषा में भी मूल शब्द 'पापा' ही है।

वह 'पापा' उच्चार वास्तव में 'पाप-ह्' इस संस्कृत शब्द का विकृत उच्चार है। 'पाप+ह' यानि 'पापहर्ता' उर्फ 'पापहंता' यानि पाप को समाप्त करने वाला। और Pope आदि जो ईसाई धर्मगुरु शृंखला है उसका प्रमुख कार्य ही समाज को (आध्यात्मिक मार्गदर्शन द्वारा) पापमुक्त कराना है। वह शब्द तो संस्कृत है ही, किन्तु पृथ्वी पर जन्म पाया मानव पापों से आवृत्त होता है और उन पापों से मुक्ति पाना हीं उसका लक्ष्य होना चाहिए, यह वैदिक सनातन धर्म की धारणा है। अतः कर्मठ लोग स्नान करते समय कहते हैं "पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभव। त्राहिमां कृपया गंगे सर्वपापहराभव।" अतः उस पाप के हरण के लिए वैदिक (सनातन आर्य हिन्दू) धर्म में शुद्धाचरणी, निस्वार्थी, सन्यस्त शंकराचार्यों के पीठ स्थापन किए गए थे। उसी व्यवस्था के अन्तर्गत रोम उर्फ रामनगर के (वेद) वाटिका (Vatican) में (पापहर्ता, पापहंता) पापह यूरोप खण्ड के सारे आध्यात्मिक धार्मिक शंकराचार्य पीठों का प्रमुख था।

पाप+ह (Papa) को ईसाई परिभाषा में Pontifex Maximus यानि 'पन्तः महत्तमः' अर्थात सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरु भी कहते हैं। उसी का Pontiff यानि 'पन्तः' यह संक्षिप्त प्रचलित रूप है।

कृस्ती पन्थ का आरम्भ

ईसवी सन् के आरम्भ में यूरोप के अनेक टूटे-फूटे वैदिक पन्थों में अपनी सत्ता बढ़ाने की और अधिक-से-अधिक अनुयायी समेटने की होड़ सी लगी थी। उसमें एक कृष्ण पंथ भी था। उस कृष्ण पंथ में पीटर और पॉप नाम के दो क्रोधी नेता थे। उन्होंने लोगों को भड़काने वाले भाषण देते-देते अन्य कृष्णपंथियों से अपने-आपको कृस्ती कहकर अलग कर लिया और वे तत्कालीन समाज तथा सरकारी अधिकारियों को उसी प्रकार डराने, धमकाने और मारने लगे जैसे भारत में सिखों की आतंकवादी शाखा ने करना आरम्भ किया है।

वह कृस्ती गुट भगवद्‌गीता पर हर रविवार को चर्चा करने इकट्ठा होते थे क्योंकि वैदिक परम्परा के रोमन शासन में रविवार छुट्टी का दिन

होता है। अतः उनके धर्मचर्चा स्थान का नाम 'चर्च' पड़ा और शासकीय सुविधानुसार रविवार उनका साप्ताहिक धर्मप्रचलन का दिन माना जाने लगा।

योगायोग से सन् ३१२ के लगभग उस गुट को किसी प्रभावशाली व्यक्ति ने तत्कालीन रोमन सम्राट कंस-दैत्यन् (Constantine) के नाम एक परिचय-पत्र दिया। वह पत्र लेकर इस कृस्ती गुट के लोग सम्राट के पास पहुँचे और उन्होंने अपने साप्ताहिक रविवारीय धार्मिक सत्संग में भाग लेने का सम्राट् को निमन्त्रण दिया। उस विनती को स्वीकार कर कॉंस्टंटाइन कृस्ती गुट की साप्ताहिक बैठकों में भाग लेने लगा। धनी और शक्तिमान सम्राट् की उपस्थिति से प्रभावित होकर कृस्ती गुट ने कंसदैत्यन् सम्राट् को ही कृस्ती गुट का सर्वाधिकारी अध्यक्ष बना डाला। कृस्ती गुट को सेनाशक्ति प्राप्त हो गई और कंसदैत्यन् सम्राट् को धार्मिक आधिपत्य की प्राप्ति हो गई। तब से रोमन सेना द्वारा यूरोप पर छल-बल से सबको कृस्ती बनाना आरम्भ हो गया और ७००-८०० वर्षों में सारा यूरोप जबरन ईसाई बना दिया गया। सवा तीन सौ वर्ष पश्चात् इस्लाम ने भी उसी प्रकार के छल-बल और आतंक से निजी पन्थ का प्रसार किया।

वैदिक शंकराचार्य की हत्या

उस समय रामनगर की वेद वाटिका का पापहा (Papa) शंकराचार्य यूरोप में सर्वश्रेष्ठ वैदिक धर्मगुरु होता था। सारे यूरोप के वैदिक समाज पर उस पापहा शंकराचार्य का बड़ा आध्यात्मिक प्रभाव था। उस वैदिक धर्मपीठ वाटिका की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः सम्राट् कंसदैत्यन् ने यकायक उसी प्राचीन वैदिक धर्मपीठ पर सैनिकी छापा मारकर, उस समय जो वैदिक शंकराचार्य थे उनकी हत्या कर दी और अपने-आपको कृस्ती कहलाने वाले जो मुट्ठीभर ईसाई थे, उन्हीं का प्रार्थना-प्रमुख जो Bishop of Rome कहलाता था उसे उसी प्रसिद्ध प्राचीन उच्चप्रतिष्ठा प्राप्त वेद वाटिका में स्थापन्न कराकर, उसी को ईसाई परमगुरु पापहा घोषित कर दिया।

उस समय जो कत्ल, लूट तथा भगदड़ मची उससे उस वेद वाटिका में

जो संस्कृत-प्राकृत वेदोपनिषद् रामायण, महाभारत, अष्टांग आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष आदि के ग्रन्थ थे वे या तो जला दिए गए, लूट लिए गए, छिपा दिए गए या दूर कहीं भिजवा दिए गए।

यीशू, कृस्त, जीझस्, क्राइस्ट, ईसामसीह आदि नामों की भिन्नता ही देखिए। एक ही नाम के इतने भिन्न उच्चार क्यों ? वास्तव में उस नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं। अपार ईर्ष्या, सत्ता लालसा, अहंकार और आतंक इनके सहाय्य से एक काल्पनिक कृस्ती पन्थ की स्थापना हुई और रोमन् सैनिकों द्वारा वह पन्थ लोगों पर जबरदस्ती थोपा गया। किन्तु सारे विश्व में अब कृस्ती पन्थ इतना बलशाली और धनवान हो बैठा है कि उसकी आध्यात्मिक नींव खोखली है या जीझस् क्राइस्ट एक कपोलकल्पित व्यक्ति है इत्यादि मूलगामी बातों पर विचार करने वाला कोई सत्यान्वेषी दीखता ही नहीं। अधिकांश लोग वर्तमान स्वार्थ से शाश्वत सत्यों को दबाने में जरा भी हिचकिचाते नहीं।

ऐसी निराश परिस्थिति की मैंने जब इंग्लैण्ड में नवम्बर ९, १९८६ को डॉक्टर रामलाल गोयल जी से बात की तो उन्होंने स्वयं पोप उर्फ 'पाप हा' को १० नवम्बर, १९८६ को आंग्लभाषा में एक पत्र लिखा। उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

श्री श्री१०८ धर्मभास्कर पाप-ह दिनांक १० नवम्बर, १९८६

John Paul द्वितीय

धर्म वाटिका, रामनगर, इटली

धर्ममार्तंड जी,

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान (एन-१२८ ग्रेटर कैलाश-१, नई दिल्ली-११००४८, भारत)के अध्यक्ष पु. ना. ओक के महत्वपूर्ण आधुनिक शोधों के अनुसार 'पाप हा' ईसापूर्व वैदिक धर्मपद है। पाप हा यानि पाप को समाप्त करने वाला, यह संस्कृत शब्द है।

वॅटिकन् भी वाटिका संस्कृत शब्द है। अतः आपकी धर्मवाटिका वास्तव में वेदवाटिका है।

जिस Sistine Chappel में नए पोप का चयन Cardinals का संसद करता है वह 'शिवस्थान चापल' यानि प्राचीन शिवमन्दिर है।

उस पीठ के वैदिक धर्मगुरु जिन शिवलिंगों की तथा शिवमूर्तियों की पूजा करते थे वे अब मन्दिरों में से पदभ्रष्ट अवस्था में आपके Etruscan Museum में प्रदर्शित हैं।

जिस रोम नगर में आपकी धर्मवाटिका है वह भगवान राम के नाम का नगर है।

इटली में जो पुराने घर पाए गए हैं उनमें रामायण प्रसंग चित्रित हैं। रावेन्ना नाम का जो नगर है वह रावण के नाम से है। Verona नगर का नाम वरुण से है।

Divinity शब्द संस्कृत 'देवनीति' है।

विवाह-विच्छेद तथा गर्भपात का समय-समय पर कड़ा निषेध करने वाले आपके वक्तव्य भी आपके धर्मपीठ की वैदिक परम्परा से व्युत्पन्न हैं। कृस्ती सामाजिक जीवन में तो हर प्रकार का स्वैराचार वैध हो गया है।

श्री पु०ना० ओक के शोधों से पता चला है कि नए ईसाई बने सम्राट् कंसदैत्यन् (Constantine) ने सन् ३१२ के लगभग वॅटिकन पर धावा बोलकर तत्कालीन वैदिक पापहर्ता धर्मगुरु को कत्ल कर उनके स्थान पर रोमनगर के नगण्य ईसाई बिशप की स्थापना कर दी। तब से वह ईसाई धर्मपीठ बना हुआ है।

मेरा विश्वास है कि आप और आपके अनुयायियों को आपकी दीर्घ-लुप्त, नवज्ञात वैदिक परम्परा की बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी।

अतः मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप कृपया आपके धर्मपीठ के पूरे इतिहास का शोधकार्य आरम्भ करा दें।

प्रसिद्ध इतिहास संशोधक पु० ना० ओक इन दिनों लन्दन नगर में ही अपनी अनेक ऐतिहासिक शोधों पर व्याख्यान देने के लिए ठहरे हुए हैं।

उनके १२०० पृष्ठों के World Vedic Hetitage ग्रन्थ में ईसापूर्व काल में विविध प्रदेशों में भिन्न-भिन्न जमानों में वैदिक परम्परा का विवरण प्रस्तुत है।

मुझे आशा है कि सारे मानव वैदिक परम्परा में एक समान संघटित वैदिक समाज के सदस्य थे। इस शोध से आप स्वयं तथा सारी मानवजाति लाभान्वित होगी।

भवदीय
डॉ० रामलाल गोयल
दूरभाष ०२६८ २१०३५

15 Furrow Felde
Basildon, Essex SS 16 5H B
England.

प्रचलित सामान्य धारणा यह है कि यूरोप, अमेरिका आदि प्रगत देशों के लोग बड़े विद्याप्रेमी, ज्ञान के उत्सुक तथा सत्यान्वेषी होते हैं। मेरा अनुभव इससे पूर्णतया विपरीत है। वे भी उतने ही ढोंगी और मक्कार होते हैं जितने अन्य देशों के लोग।

यूरोप में रामायण था, पोप का पीठ वैदिक धर्मपीठ था, ताजमहल हिन्दू इमारत है आदि अनेक नए-नए तथ्य मैं गत २०-२५ वर्षों से लेख, ग्रन्थ, भाषण आदि द्वारा लोगों को कथन कर रहा हूँ, फिर भी सारे लोग चाहे अध्यापक हों या अधिकारी, ऐसा ढोंग कर रहे हैं कि जैसे वे शोध उन्होंने कभी सुने ही नहीं, फिर स्वयं उसमें अधिक अन्वेषण करना तो दूर ही रहा।

अब ऊपर उद्धृत किया पत्र ही देखिए। पोप महाशय ने क्या किया ! चुप हो गए। उनके स्वयं के धर्मपीठ की बाबत ऐतिहासिक तथा पुरातत्वीय संशोधन करना क्या उनका कर्त्तव्य नहीं ? उनके पास धन तथा विद्वानों की कोई कमी भी नहीं। जो निजी पीठ की बाबत भी संशोधन करने के लिए सिद्ध नहीं उनसे और क्या आशा की जा सकती है ?

आदिष्ट

पोप के आदेश उर्फ धर्माज्ञा को 'एडिक्ट' (edict) जाता है। उस शब्द में 'C' का उच्चार 'स' करने से वह 'आदिष्ट' ऐसा संस्कृत शब्द है।

नन्दी बैल

पोप की धर्माज्ञा को bull भी कहते हैं। वह स्वयं "बैल" ऐसा संस्कृत शब्द है। बैल क्यों ? इसलिए कि पोप शकराचार्य थे। शिवशकर का वाहन

नन्दी है। तो पोप उर्फ पापहर्ता (पाप ह) वैदिक धर्मगुरु की आज्ञा नन्दी ही वहन करेगा। किसी को पापमुक्त घोषित करना या बहिष्कृत करना या सन्त की उपाधि प्रदान करना आदि पोप महाशय की धर्माज्ञाएँ होती थीं।

धर्म संसद

वैदिक यूरोप में जो धर्म संसद होती थी, उसके सदस्य धर्मशार्दूल कहलाते थे, ऐसा अनुमान ईसाई Cardinal शब्द से लगाया जा सकता है। Cardinal शब्द में 'C' का उच्चार यदि 'स' किया जाए तो वह शार्दूल-नल उर्फ शार्दूलनर यानि शार्दूलनर ऐसा वैदिक प्रणाली का दीखता है।

पोप के बाद के द्वितीय श्रेणी के वरिष्ठ धर्मगुरुओं को कार्डिनल्स (Cardinals) कहते हैं। उन्हीं में से नए पोप का चुनाव होता है। उस संसद को College of Cardinals कहते हैं। College शब्द संस्कृत 'शाल-ज' है यह हम अन्यत्र बता चुके हैं। 'शालज' इसलिए कि वे सारे उच्चतम धार्मिक ग्रन्थों के चिन्तन, मनन आदि में मग्न रहने वाले अध्ययनशील ज्ञानी धर्मात्मा होते थे।

पापहर्ता की वैदिक धर्मवाटिका में ईसापूर्व समय में विभिन्न वैदिक देवताओं के कई मन्दिर होते थे। उन्हें ईसाई प्रचारकों ने उसी प्रकार नष्ट किया जैसे मक्का के काबा प्रांगण के मन्दिरों को अरबी मुसलमानों ने नष्ट किया।

म्यूझियम में प्रदर्शित शिवलिंग

उन मन्दिरों से उखाड़ फेंके शिवलिंग तथा शिवमूर्तियाँ आदि Vatican के Etruscan Museum में प्रदर्शित हैं।

एट्रुस्कन् सभ्यता

ब्रिटिश ज्ञानकोश (Encyclopaedia Britannica) में Etruscan या Etrusia शीर्षक निकाल कर पढ़ें तो उसमें यह जानकारी मिलती है कि लगभग तीन-चौथाई उत्तरी इटली देश में ईसापूर्व ७वीं शताब्दि तक जो सभ्यता पाई जाती है उसे एट्रुस्कन (Etruscan) सभ्यता कहते हैं। हो सकता है वह अत्रि ऋषि का कार्यक्षेत्र रहा हो। क्योंकि इटली का पूर्वी

सीमा पर जो सागर है उसे भी एड्रियाटिक सागर (Adriatic) कहते हैं जो अत्रि का अद्रि अपभ्रंश बना।

ब्रिटिश ज्ञानकोश में एट्रुस्कन् संस्कृति के कुछ शब्द दिए हैं जो संस्कृत के ही लगते हैं। इटली में खुदाई के दौरान स्थान-स्थान पर कई शिवलिंग प्राप्त होते हैं। ज्ञानकोश वाले ईसाई विद्वानों ने उनको सीधे शिवलिंग कहने की बजाय घुमा-फिराकर कहा है कि "वे नक्काशी वाले वेदी पर प्रस्थापित उल्का शिलाएँ हैं।"

उन शिवलिंगों के अतिरिक्त इतालवी जीवन पर शिवजी की इतनी गहरी छाप है कि ईसाई बनने पर भी इटली के लोग चौराहों के फव्वारों पर ऊँची त्रिशूलधारी शिवप्रतिमाएँ खड़ी कर देते हैं। शिवजी के गले में नाग लिपटे होते हैं, हाथ में त्रिशूल होता है। फिर भी शिव, शंकर, त्र्यंबक आदि नाम बदलकर ग्रीस तथा रोम के ईसाई बने लोगों ने धीरे-धीरे शिवजी को 'मेघ देवता', 'सागर देवता' आदि कहकर जनमानस से शिवजी की स्मृति मिटाने का प्रयास किया।

नन्दी के साथ शिबजी की ईसापूर्व सारे यूरोप में पूजा होती थी। यूरोप के ईसाई लोगों में शिवजी की स्मृति Father God यानि पितृदेव तथा भवानी, अम्बा की स्मृति Mother Goddess यानि मातृदेवी के नाम से रही है।

वरुण भी यूरोप के देव थे। इटली का वेरोना (Verona) नगर वरुण के नाम से ही पड़ा है। मध्य यूरोप के देशों में कई पुरुषों का नाम 'परुण' होता है जो वरुण का अपभ्रंश है।

इंग्लैण्ड में Oxford, Uxbridge आदि नाम 'उक्षस्' (Ox) संस्कृत से पड़े हैं। संस्कृत में उक्षस् यानि बैल। उन स्थानों पर शिव तथा नन्दी की पूजा होती थी।

संस्कृत पुरोहित शब्द ही यूरोप में 'प्रीस्ट' (priest) तथा भट (Abhot, अभट) कहलाता है। संस्कृत सन्त शब्द ही यूरोप में सेंट (Saint) कहा जाता है।

ईसाई परिभाषा में Apostle शब्द है। उसका पूरा उच्चार 'आप-स्थल' होगा। 'आपस्थल' यानि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाला

प्रचारक, सन्त, वैरागी आदि। ईसाई परिभाषा में इस शब्द का ठेठ वही अर्थ है। किन्तु उच्चार 'ॲपॉसल' करते हैं।

वेदवाटिका में छिपाए गए दस्तावेज

रोमनगर की वेदवाटिका पर यकायक ईसाई बने सम्राट् कंस दैत्यन् ने सन् ३१२ ईसवी के लगभग जब आक्रमण किया तब वहाँ बड़ी भगदड़ मची। बहुत-सा वैदिक साहित्य जला दिया गया, कुछ लूट लिया गया, कुछ फाड़ दिया गया, कुछ दबा दिया गया तो कुछ अन्यत्र ले जाकर छिपाया गया। इसका उल्लेख The Secret Doctrines of Jesus नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ ५०६-६१० पर उसके लेखक H. Spencer Lewis ने किया है। वे स्वयं अमेरिका निवासी ईसाई हैं।

उस ग्रन्थ में वे लिखते हैं कि यीशू क्रुस्त के स्वयं के आदेश और उस समय के कुछ दस्तावेज पोप महाशय की वेदवाटिका में छिपाए गए हैं। भला पोप क्रुस्त के आदेश क्यों छिपाने लगे ? उन्हें क्या पड़ी है ? क्रुस्त के समय के, क्रुस्त के लिखे या क्रुस्त के उल्लेख के, कुछ दस्तावेज होते तो वे तो पोप महाशय बड़े गर्व से जहाँ-तहाँ सबको बताते फिरते। विशेषत: वर्तमान युग में जब क्रुस्त एक काल्पनिक व्यक्ति होने की शक्यता प्रकट की जा रही है।

पोप महाशय को प्राचीन दस्तावेज छिपाने की आवश्यकता इसी कारण पड़ी कि वे ईसवी सन् के पूर्व के वैदिक धर्म की साक्ष्य देते थे। ईसा नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं अत: स्वयं ईसा के कुछ आदेश कहीं हो ही नहीं सकते।

स्पष्टीकरण के अनुसार पोप की वाटिका ३१२ ईसवी से पूर्व ईसाई थी नहीं। ईसाई परम्परा के अनुसार ईसामसीह उससे ३१२ वर्ष पूर्व जन्मे थे। तो सन् ३१२ ईसवी के पूर्व के वेदवाटिका के दस्तावेज कहाँ हैं ?

अत: हमारा स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि पोप की वाटिका में खोज करने पर गुप्तस्थलों में छिपाए वैदिक धर्मग्रन्थ, दस्तावेज आदि अभी भी मिल सकते हैं। किन्तु दु:ख की तथा पीड़ा की बात यह है कि पवित्र धर्मस्थल

कहलाने वाले इस्लामी तथा ईसाई अड्डे भी इतिहास छिपाने में या इतिहास की हेरा-फेरी करने में ही इतिकर्त्तव्यत्ता मानते रहे हैं।

ईसापूर्व चिह्न वैदिक परम्परा में शामिल

Godfrey Higgins के "The Celtic Druids" नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ १२६-३१ पर लिखा है कि "वॅटिकन् की दीवारों पर प्रदर्शित अनेक वस्तुएँ यद्यपि ईसाई समझी जातीं हैं किन्तु वे सारी ईसापूर्व की हैं। उदाहरणार्थ क्रूस आजकल ईसाई चिह्न समझा जाता है, किन्तु ब्रिटेन में ऐसे कई अतिप्राचीन ईसवी सन् पूर्व के स्थल हैं, जहाँ क्रूस अंकित है।

ईसापूर्व यहूदी लोग वह क्रूस लगाया करते थे। मिस्र के लोग भी क्रूस को पवित्र माना करते थे। ताबीजों पर क्रूस अंकित होता था। शनि ग्रह का यूरोप में जो चिह्न है उसमें क्रूस और भेड़ का सींग होता है। बृहस्पति के चिह्न में भी ये दो वस्तुएँ सम्मिलित हैं। डेसियस राजा, जो ईसाइयों का बड़ा विरोधी था, उसके सिक्कों पर भी क्रूस अंकित है। Rev. Maurice का एक वचन Indian Antiquities भाग २, पृष्ठ ३६१ पर उद्धृत है। वे स्वयं पादरी होते हुए भी कहते हैं कि ईसाइयों को इस बात से रुष्ट नहीं होना चाहिए कि मिस्र तथा भारत के प्राचीन धार्मिक प्रतीकों में क्रूस का अन्तर्भाव था। उसके दण्ड चारों दिशा का निर्देश करते थे। मुंबई के किनारे से कुछ दूर जो हाथी गुफा (Elephanta Caves) हैं उसके मुख्य देवता के सिर पर भी क्रूस अंकित है। भारत के दो प्रसिद्ध देवस्थान, वाराणसी के विश्वनाथ और मथुरा का कृष्ण जन्मभूमि मन्दिर दोनों, क्रूस के आकार के बने हैं, ऐसा पादरी मॉरिस बताते हैं, जो बड़ी आश्चर्य की बात है। ईसा से पूर्व कई प्रदेशों में क्रूस चिह्न का प्रयोग होता रहा। Dr. Maccllody बताते हैं कि यूरोप के देश भी ईसाई बनाए जाने से पूर्व क्रूस का चिह्न लगाते थे। Mexico में Palanque नगर के पास एक प्राचीन भग्न स्थल में कई इमारतों की दीवारों पर प्रदर्शित चिह्नों में क्रूस है। किन्तु उसमें से एक तो विशेष प्रेक्षणीय है क्योंकि उसमें क्रूस पर एक देवमूर्ति विराजमान है"। (Description of an Ancient city of Mexico, by Felix Cabrara, published by Berthoud, 65 Regent's Quadrant.)

क्रूस का कुंकुम

भारत में कुमारी या विवाहित हिन्दू स्त्रियाँ ललाट पर जो सौभाग्य कुंकुम लगाती हैं वह कई बार क्रूस के आकार का होता है। इन सब बातों से ईसाइयों ने क्रूस वैदिक परम्परा से अपनाया, यह स्पष्ट दिखाई देता है। यह हो भी क्यों नहीं जबकि उनका परम धर्मगुरु पोप उर्फ पापह स्वयं वैदिक धर्मगुरु था।

बायबल का यथार्थ स्वरूप

Bible शब्द का अर्थ केवल पुस्तक है। उसका अर्थ धर्मग्रन्थ नहीं है और न ही उसमें ईसाइयों के सम्बन्ध का कोई निर्देश है। ईसापूर्व समय के कृष्णपन्थ के प्रवचनों में भगवद्गीता का ही Bible यानि पुस्तक उर्फ धर्मपुस्तक के अर्थ से उल्लेख होता रहता था। बायबल न तो ईसा ने लिखी है ना ही उसके आदेश से किसी अन्य ने लिखी, न ही ईसा के समय में लिखी गई। बायबल में ईसा के प्रवचन भी नहीं हैं। बायबल तो विविध प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य की खिचड़ी है। उसका प्राचीन विभाग तो ईसा-पूर्व यहूदियों का है, उत्तरी भाग जॉन ल्यूक, मैथ्यु आदि चार व्यक्तियों ने अलग-अलग नगरों में अलग-अलग समय पर लिखा था। अतः उनके ब्यौरे में परस्पर असंगत या विरोधी बातें आदि बड़े दोष स्थल हैं। इसके अतिरिक्त पॉल के लिखे कुछ पत्र भी Bible में शामिल हैं। Apoerypha नाम का प्रक्षिप्त माना गया साहित्य भी Bible में अन्तर्भूत है। बायबल के इस खिचड़ी रूप से भी ईसाई पन्थ प्राचीन टुकड़े-टाकड़े जैसे मिले वैसे टेढ़े-मेढ़े जोड़कर एक कृत्रिम धर्म खड़ा किया हुआ स्पष्ट दिखाई देता है।

पोप के वार्षिक धर्माचार में बाल ब्रह्मचारी तथा सन्त-महात्माओं के पैर धोने की विधि विहित है जो स्पष्टतया वैदिक विधि है। इस चर्चा के पश्चात् यदि कोई आपको पूछे कि फिर ईसाइयों का अपना क्या योगदान है तो दुर्भाग्यवश उत्तर यह देना पड़ता है कि उनका निजी योगदान शून्य है।

विवाह में वेदमन्त्रोच्चार आवश्यक

स्त्री-पुरुषों के विवाह की वैदिक विधि केवल ईश्वरीय प्रजनन योजना चलाने के हेतु विहित है। अतः जो विवाह (चाहे किसी पन्थ के हों) वेद-मन्त्रोच्चारों के बिना सम्पन्न किए जाते हैं वे ईश्वरीय दृष्टि से वैध नहीं होते। वेद स्वयं देववाणी हैं, अतः स्त्री-पुरुष सम्बन्ध केवल वेदों के आधार पर ही विहित हो सकता है। जहाँ प्रजनन और गृहस्थी जीवन का हेतु प्रधान नहीं है, किन्तु केवल विषय लालसा से ही स्त्री-पुरुष का सहजीवन होता है, वह वैदिक दृष्टि से व्यभिचार है।

केवल "तलाक···तलाक···तलाक" ऐसा तीन बार कहने से कोई भी मुसलमान निजी पत्नी को क्षण भर में त्याग दे सकता है। ऐसे एक तरफा-गैरजिम्मेदार-मनमाने तलाक का वैदिक व्यवहार में कोई स्थान नहीं है। विवाह-बन्धन तो वैदिक परम्परा में पूरे जन्म का नाता होता है। वह एक संस्कार है। संस्कार को उलटाया नहीं जा सकता। तथापि तीन बार कहने



पर ही कोई बात पक्की होती है। मुहम्मदपूर्व अरबों की वैदिक परम्परा की ऐसी छोटी-छोटी बातें इस्लामी व्यवहार में कहीं-कहीं, कभी-कभी अचानक दिखाई देती हैं।



रोम उर्फ रामनगर में स्थित पोप के वॅटिकन में जो एट्रुस्कन अजायबघर (Etruscan Museum) है उसमें ऐसे अनेक शिवलिंग प्रदर्शित हैं। कुछ शिवमूर्तियाँ भी हैं। अनेक मूर्तियाँ तथा शिवलिंग उस अजायबघर के भण्डार में बन्द, अप्रदर्शित भी पड़े रहते हैं।

ईसापूर्व समय में सारे यूरोप में वैदिक सभ्यता थी, तब स्थान-स्थान पर शिव मन्दिर थे। अतः इटली तथा यूरोप के अन्य देशों में बारम्बार शिवलिंग तथा शिवमूर्तियाँ पाई जाती हैं। क्योंकि मुसलमानों की तरह ईसाइयों ने भी छल-बल से अन्य लोगों पर निजी पन्थ थोपने के लिए उनके

वैदिक देवताओं के मन्दिर छिन्न-भिन्न कर दिए थे।

पापहर्ता, पापहन्ता वैदिक शंकराचार्य 'पाप-ह' उर्फ पापह (यानि पोप) सारे यूरोप का वैदिक धर्मगुरु था। सन् ३१२ में जो वैदिक शंकराचार्य थे उनकी रोमन् सम्राट् कंस दैत्यन् ने हत्या कर एक ईसाई को उस पवित्र वेदवाटिका में उच्चतम ईसाई धर्मगुरु घोषित कराकर बैठा दिया। अत: ईसाई पापा, ईसामसीह द्वारा नियुक्त न होकर एक अत्याचारी सम्राट् के हुक्म से वैदिक धर्मपीठ पर आरोपित एक कृत्रिम कलम है।

वॅटिकन् के एट्रुस्कन् अजायबघर में प्रदर्शित एक और शिवलिंग पृष्ठ ३०६ पर देखें। यूरोप में ऐसे अनेक शिवलिंग पाए जाते हैं, किन्तु ईसाई बने यूरोप के विद्वान जान-बूझकर या अज्ञानवश ऐसे शिवलिंगों को कुछ जंगली, अनाड़ी लोगों की भद्दी लिंगपूजा का प्रतीक कहकर उन्हें निरर्थक बतलाने का प्रयास करते रहते हैं।

ईसाई पन्थ के वैदिक स्रोत

वर्तमान समय में भले ही ईसाई धर्म को मानने वाले बीसों देश और करोड़ों लोग हों फिर भी ईसाई पन्थ का जन्म किसी व्यवस्थित, योजनाबद्ध तत्वप्रणाली से नहीं हुआ, अपितु जंगल में कौन-सा वृक्ष कहाँ, कैसे और क्यों उगा है ? या उसकी ऊँचाई तथा घेरा कितना है ? आदि बारीकियां योगायोग पर निर्भर करती हैं। ईसाई पन्थ का भी वही हाल है।

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक साम्राज्य, वैदिक समाज तथा संस्कृत गुरुकुल शिक्षा छिन्न-भिन्न हो गई। उसके खण्डहर के रूप में विविध देवी-देवता तथा दर्शन शाखा आदि के अनुसार अनगिनत पन्थ निर्माण होते गए।

उनकी एक झलक ग्रीक पन्थों के नामों में देखने को मिलती है, जैसे एसेनीज (Essenese) 'ईशानी' (यानि शिवभक्त) थे। स्टोइक्स (Stoics) 'स्तविक' यानि स्तवन करने वाले थे। सॅडूशियन्स (Sadducеans) साधुजन थे। फिलिस्तीन्स (Philistines) पुलस्त्य ऋषि के अनुयायी थे। सॅमॅरीटन्स (Samaritans) स्मार्त लोग थे। मॅलेन्शियन्स (Malencians) म्लेच्छ लोग थे, इत्यादि इत्यादि। आजतक किसी ने यह सोचा ही नहीं था कि ये नाम क्यों पड़े ?

उन्हीं में कृश्चन् यानि कृष्णन् एक पन्थ था। वे सारे पन्थ दिशाहीनता के कारण भटकते-भटकते वैदिक संस्कृति से बिछुड़ गए थे। क्योंकि इन सबको एक वैदिक सूत्र में पिरोए रखने वाले वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि के प्रवचन की प्रथा टूट गई थी। अत: वैदिक सभ्यता के

वे सारे टुकड़े निजी पन्थ का ही ढोल पीटते-पीटते अन्य पन्थों के प्रति शत्रु-भाव से देखने लगे। अत: उनकी आपस में होड़-सी लग गई। विविध पन्थों के लड़ाकू, आलसी नेतागण अन्य पन्थों को कुचलकर निजी पन्थ की ही शान, सत्ता, जनमान्यता, सम्पत्ति, अधिकार, अनुयायी गण इत्यादि बढ़ाते रहने की इच्छा रखते थे।

उस स्पर्द्धा में कृष्णन् पन्थ का एक विभाग बाजी मार ले गया। उस विभाग का नेतृत्व पीटर और पॉल यह दो व्यक्ति करते थे। वे बड़े संलापी, क्रोधी व्यक्ति थे। उस समय ईशस कृष्ण का जीझस् क्रुस्त अपभ्रंश प्रचलित था। प्रत्येक पन्थ भी छोटी-मोटी बातों में मतभेद प्रकट करते हुए कई शाखाओं और विभागों में बंट गया था। अत: कृष्णपन्थ की भी कई शाखाएँ हो गई थीं। कोई केवल पूजा या जाप करते, कोई भगवद्गीता की चर्चा करते, कोई रास रचाते। उनमें एक शाखा के कुछ क्रोधी और महत्त्वाकांक्षी नेता भी थे।

पॉल का नाम गोपाल था। वर्तमान पंजाब में जिस प्रकार किसी का नाम सन्तपाल हो तो वह अपना नाम S. Pal लिखता है, और कोई तो अंग्रेजी नाम की नकल करते हुए S. Paul लिखने लगता है ताकि अंग्रेज या ईसाई व्यक्तियों को भी उस नाम से स्नेह हो और व्यापार आदि में उनका सहाय्य हो।

आगे चलकर जब ईसाई पन्थ की शान और बोलबाला बढ़ गया तब ईसाइयों ने पीटर, पॉल, थॉमस आदि के नाम के पीछे 'सन्त' ऐसा विशेषण जोड़ दिया। वास्तव में वे सन्त नहीं थे। वे अपने समय के दहशतवादी थे। कई लोग उनसे घृणा करते थे। अधिकारियों से डरकर तथा छिपकर उन्हें रहना पड़ता था। कई लोगों से उनकी शत्रुता थी। उदाहरणार्थ Timothy को लिखा पॉल का जो दूसरा पत्र विद्यमान है, उसमें पॉल ने लिखा था "तांबे के कारीगर अलेक्झेंडर ने मुझसे बहुत दुर्व्यवहार किया। उससे तुम भी सावधान रहना क्योंकि वह हमारा कहना नहीं मानता।"

पॉल के क्रोधी भाषणों से प्रभावित होकर उसे कुछ सिरफिरे साथी भी मिलने लगे। इस तरह से कॉरिंथ, जेरूसलेम, रोम आदि नगरों में कोई दस-बीस-पचास लोग अपने आपको ईशस् कृष्ण उर्फ जीझस क्रुस्त का

अनुयायी कहलाते रहे। ईसवी सन् ३१२ तक यही हालत रही।

३१२ ई० के लगभग इस शाखा का भाग्य चमक उठा। किसी ने सम्राट् कंसदैत्यन् से इनका परिचय करा दिया। वह इनकी साप्ताहिक चर्चा में भाग लेने लगा। बस फिर सारी रोमन सेना ही इस पन्थ के प्रसार में लग गई। लोगों को जुल्म-जबर्दस्ती से कृस्ती बनाया जाने लगा और किसी बाढ़ में जैसे घर, खेत आदि सारे डूब जाते हैं उसी प्रकार स्तविक, स्मार्त, ईशानी आदि सारे पन्थ नष्ट कर दिए गए और सर्वत्र लोग अपने आपको ईसाई घोषित करने में ही सुरक्षा तथा सहयोग का अनुभव करने लगे।

यह है ईसाई पन्थ के निर्माण तथा प्रसार की सत्य कथा। इस पन्थ का निर्माता न तो कोई ईसामसीह था और न ही कोई इस पन्थ का नया तत्व या दर्शन सिद्धान्त था। इस पन्थ के संघटक थे पीटर तथा पॉल और सेनापति स्वयं सम्राट् कंस दैत्यन्। बाकी जो इनका दर्शनशास्त्र पादरियों की श्रेणी, त्योहार, पूजाविधि आदि हैं वह तो ज्यों-की-त्यों वैदिक परम्परा की विरासत है।

बायबल

बायबल का विवरण हम पहले दे ही चुके हैं कि वह मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन की लिखी काल्पनिक बातें हैं। इन चारों में से किसी ने भी जीझस क्राइस्ट को देखा तक नहीं था। देखते भी कैसे? क्योंकि ईसामसीह एक काल्पनिक व्यक्ति है।

कहते हैं बायबल सर्वप्रथम अरेमाइक (Aramaic) भाषा में लिखा गया। उससे ग्रीक भाषा में अनुवाद हुआ, ग्रीक से लैटिन, लैटिन से फ्रेंच, जर्मन, आंग्ल आदि अनुवाद उस समय किए गए जब रोमन सैनिकों की दहशत से भिन्न-भिन्न देशों के लोग निजी सुरक्षा की खातिर ईसाई कहलाने पर बाध्य हो गए।

विविध भाषाओं में Aramaic संस्करण से अनुवाद करते समय अनुवादकारों ने मूल भाष्य में मनचाहा फेरफार किया। इतना ही नहीं अपितु उस समय विविध देशों में ईसाई प्रचार तेजी से हो इस हेतु जिस

अनुवादक ने जो आवश्यक समझा वह तफसील वह व्यक्ति बायबल में घुसाता गया। प्राचीनकाल में मुद्रण कला तो थी नहीं, सारी प्रतियाँ हस्तलिखित ही होती थीं। अत: लिपिक जो चाहे उसमें लिख मारता। अतः विविध भाषाओं में लिखे प्राचीन बायबलों की यदि तुलना की जाए तो उनके ब्यौरे में बड़ा अन्तर मिलेगा।

आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन में छपा जो बायबल है, उसकी प्रस्तावना में लिखा है कि यहूदियों का Old Testament ग्रन्थ Hebrew (हब्रु) भाषा में था। उसके अनुवाद ग्रीक भाषा में हुए। वे ग्रीक अनुवाद स्पष्ट नहीं थे। उनमें कई घोटाले थे। उन ग्रीक अनुवादों से कई प्रकार के लैटिन अनुवाद हुए। वे तो और भी भद्दे थे। कुछ का कहना था कि Lucian और Nesyehuis ने Old Testament का अनुवाद करते समय उसमें कई फालतू बातें जोड़ दी थीं। अत: उनके अनुवादों से St. Hirome तथा St. Chrysostome ने कुछ ब्यौरा निकाल छोड़ा। इस प्रकार बायबल का जो वर्तमान रूप है वह विविध व्यक्तियों की अपार हेराफेरी का फल है। ऐसे ग्रन्थ को धर्मग्रन्थ का दर्जा देना ही अपने आप में महापाप है।

योगायोग से यदि ईसापूर्व २००० वर्ष के ग्रीक या हब्रू ग्रन्थ प्राप्त हो जाएँ तो उनमें निश्चित ही कृष्ण, हरि, वासुदेव, केशव आदि नाम मिलेंगे। किन्तु वे नाम हब्रू से अरेमाइक, अरेमाइक से ग्रीक, ग्रीक से लैटिन, लैटिन से फ्रेंच और फ्रेंच से जर्मन, आंग्ल आदि भाषा में लिखते-लिखाते उनके उच्चार 'जयराम' का Jerome या Jeromy, कृष्ण का क्रूस्त, केशव का जिहोवा, हरिकुल ईश का हर्क्युलिस या हेराक्लिस, महेश का मोझेस, गणेश का जेनस्, बल्लाल का बैल्लिओल, हरि का हेनरी तथा Harry ऐसे बदलते-बदलते वैदिक सभ्यता का एक ईसाई भूत तैयार हो गया।

प्राचीन हस्तलिखित बायबल पढ़ते-पढ़ते कई पाठक विविध पृष्ठों पर निजी विचार या अनुभव लिख मारते। वैसे किसी हस्तलिखित प्रति से अनुवाद करने वाले व्यक्ति उन अन्य पाठकों के लिखे विचार भी सम्मिलित कर बायबल की एक नई प्रति बना छोड़ते। इतना ही नहीं उस नए संस्करण में वे अपने स्वयं के मनचाहे वचन ईसामसीह के नाम से या ल्यूक, जान, मैथ्यू या मार्क के नाम से ठूस देते।

घर या मन्दिरों के बाहर जूते उतारना

प्राचीन यूरोप में घर या मन्दिर में प्रवेश करते समय जूते उतारने की प्रथा थी, इसके उल्लेख मिलते हैं। वह तभी हो सकता है, जब वहाँ वैदिक सभ्यता हो। बायबल के Exodus विभाग का तीसरा अध्याय पढ़ें। उसमें लिखा है "एक झाड़ी में यकायक एक ज्वाला भड़क उठी और उसमें से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। वह बोला "मोझेस···मोझेस तुम अपने जूते उतार दो, क्योंकि तुम जहाँ खड़े हो वह पवित्र भूमि है।"

बायबल का एक अन्य उद्धरण देखें।

ईश्वर ने मोझेस से कहा "I am that" यानि "सोऽहम्"।

'बपतिस्मा' व्रतबन्ध था

ईसाइयों में शिशुओं का Baptism कराया जाता है। Baptism यह 'बाष्पितस्म' इस संस्कृत वचन का अपभ्रंश है। बाष्प यानि जल उससे अभिसिचित् यानि स्नात। John the Baptist ने ईसामसीह का बपतिस्मा कराया था इसका जो (कपोलकल्पित) वर्णन है उसमें यह कहा है कि जॉन ईसामसीह को नदी के किनारे ले गया। वहाँ जॉन ने ईसामसीह से कहा कि "कपड़े उतारो और नदी में डुबकी लगा आओ।" प्राचीन भारत में भी व्रतबन्ध इसी प्रकार नदी के किनारे ही कराए जाते थे।

उस समय के यूरोपवासियों के जो चित्र हैं उनमें जनेऊ और धोती पहनी हुई बताई जाती है। ललाट पर चन्दन, हल्दी आदि के तिलक भी होते थे।

जॉन यह युवान् शब्द का अपभ्रंश है। जॉन ब्राह्मण था, तभी तो उसने मन्त्रोच्चार के साथ ईसामसीह का Baptisma (बाष्पितस्म) कराया। जब ईसाई धर्म स्थापन भी नहीं हुआ था, ईसामसीह एक छोटा शिशु था, तब भी बपतिस्मा का रिवाज था। अत: बपतिस्मा कोई ईसाई विधि नहीं है। वह ईसापूर्व व्रतबन्ध उर्फ मौजीबन्धन का वैदिक संस्कार था।

इसी ग्रन्थ में अन्यत्र हमने यह भी बतला दिया है कि ईसाई विवाह-विधि पूरी तरह से वैदिक पाणिग्रहण संस्कार ही होता है। केवल उसमें

वेदमन्त्रों की बजाय बायबल पढ़ी जाती है। किन्तु अन्य परिभाषा, विधि आदि सारी वैदिक विवाह की ही है।

कृष्णमास पर्व

ईसाइयों में क्रस्मास् (दीपावली की भाँति) दिसम्बर २५ से ३१ तक बड़ी घूमधाम से मनाया जाता है। वास्तव में वह कृष्णमास का वैदिक उत्सव है।

प्रत्येक चर्च में एक घण्टा इसलिए टँगा होता है कि पूर्वकाल में वे कृष्णमन्दिर होते थे। आंग्लभाषा में घण्टी को 'बेल' कहते हैं। वह 'बल' शब्द का अपभ्रंश है। घण्टानाद से प्रार्थना को बल प्राप्त होता है। पाठशाला में भी घण्टा बजते ही हलचल आरम्भ हो जाती है।

किसी विधि को पूरी तैयारी से निभाने को With bell, book and candle ऐसा यूरोप का मुहावरा है। यानि घण्टा, पुस्तक और (आरती) के दीपों सहित। वैदिक पूजाविधि की यही तो तीन मुख्य वस्तुएँ हैं। पुस्तक थी भगवद्गीता, घण्टा तो था ही और आरती उतारने के लिए घी के दीपक के स्थान पर मोमबत्ती प्रयोग होने लगी।

दिसम्बर २५ से ३१ को क्रिसमस कहकर क्रुस्त के जन्मदिन का त्योहार मनाया जाता है। किन्तु उसका कोई ऐतिहासिक आधार ही नहीं है। ईसाई लोग स्वयं स्वीकार करते हैं कि २५ दिसम्बर यह ईसा की जन्मतारीख नहीं है। ईसापूर्व काल से उत्तरायण के आरम्भ का वह पर्व यूरोप में मनाया जाता था। उन दिनों लम्बी रात समाप्त होने का हर्षोल्लास 'कृष्णमास पर्व' कहलाया। उसे 'बड़ा दिन' कहने की प्रथा इसलिए पड़ी कि दिसम्बर २३ तारीख से दिन बड़ा होने लग जाता है।

ईसाई बनने पर भी यूरोप के लोग अपना प्राचीन वैदिक कृष्णमास पर्व मना रहे हैं। दीर्घ रात्रि का मास इस अर्थ से उस मास (महीने) का कृष्णमास नाम पड़ा। कृष्ण मास का अपभ्रंश क्रुसमास हुआ।

The Plain Truth पुस्तक का उद्धरण

कट्टर ईसाइयों द्वारा लिखी गोरे लोगों की The Plain Truth नाम की एक पुस्तक Worldwide Church of God P.O. Box 6727;

Bombay-400052 (India) ने प्रकाशित की है।

ईसाई धर्म में जो अन्य पन्थों के रीति-रिवाज घुस गए हैं उन्हें निकाल फेंकने का आह्वान समय-समय पर अपने कृस्ती अनुयायियों को इस गुट के कर्त्ता-धर्ता करते रहते हैं। तो देखिए The Plain Truth पुस्तक में उन्होंने पृष्ठ १ से ६ पर क्या लिखा है। "चाहे सही हो या गलत आम लोग अनुकरणप्रिय होते हैं। जैसे भेड़ दूसरों के पीछे चुपचाप कत्लखाने में भी प्रविष्ट हो जाती है। किन्तु सुविचारी लोगों ने निजी कृत्य की जाँच करते रहना चाहिए। कई लोग कृसमस की विविध प्रकार से सराहना करते रहते हैं। किन्तु कृसमस का समर्थन न तो New Testament में प्राप्य है, बायबल में भी उसका कोई स्थान नहीं है और ईसामसीह ने जिन्हें धर्मोपदेश दिया उन मूल शिष्यों ने भी कृसमस त्योहार का कोई उल्लेख नहीं किया। ईसाई प्रचार के पूर्व रोमन् लोगों का जो धर्म था उसका यह त्योहार चौथी शताब्दी में ईसाई परम्परा में सम्मिलित हुआ, क्योंकि कृसमस मनाने की प्रथा Roman Catholic Church की है। देखें Catholic Encyclopaedia (विश्वकोश) इस सम्बन्ध में क्या कहता है? कृसमस शीर्षक के नीचे उस विश्वकोश में लिखा है कि "आरम्भ के ईसाई पर्वों में कृसमस का अन्तर्भाव नहीं था। उसका चंचुप्रवेश प्रथम ईजिप्त में हुआ। उत्तरायण सम्बन्धी तत्कालीन समाज की जो उत्सव विधि थी वह कृसमस में सम्मिलित हो गई।

इस प्रकार स्वयं कट्टर ईसाई विद्वान् मानते हैं कि कृसमस यह ईसाइयत के पूर्व का त्योहार ईसाई मान लिया गया है।

किन्तु ऊपर उद्धृत ईसाई कथन में अनेक दोष हैं जिनका विवरण यहाँ देना आवश्यक है।

चाहे ईसाई किसी पन्थ के हों, हम सारे ईसाइयों को सावधान करना चाहते हैं कि केवल कृसमस ही नहीं अपितु ईसाई मानी जाने वाली अन्य प्रथाएँ भी सारी ईसाइयत के पूर्वकाल की हैं। "यह प्रथा ईसाई नहीं, वह प्रथा भी ईसाई नहीं" इस तरह की बारीकी से, न्यायबुद्धि से और निष्पक्षता से यदि कोई जाँच करना शुरू कर दे तो ईसाई कहने योग्य कुछ शेष रहेगा ही नहीं।

आरम्भ स्वयं ईसामसीह से ही किया जाए। क्या ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति था ? तो मानना पड़ेगा कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था। तो फिर उसके नाम से जो पन्थ गठित किया गया वह तत्कालीन इधर-उधर की कुछ प्रथाएँ जोड़-जाड़कर कृत्रिम रीति से तैयार किया गया है।

स्वयं Christianity नाम ही देखिए। वह कृष्णनीति नाम है। कृष्ण-नीति भगवद्गीता में ग्रथित है। अतः कृष्णनीति मूलतः गीतावादी पन्थ है। उसे अलग ईसाई मोड़ देना ही गलत है।

कृसमस का अन्तर्भाव ईसाई प्रथा में चौथी शताब्दी से हुआ, यह धारणा भी सही नहीं है। बात इससे पूर्णतया उल्टी है। चौथी शताब्दी में मुट्ठी भर लोगों के इस पन्थ को सम्राट् कंस दैत्यन् और उसकी शक्तिशाली रोमन सेना का समर्थन प्राप्त होते ही उन चन्द ईसाइयों ने तत्कालीन रोमन लोगों की ही सारी प्रथाएँ अपनाकर उन पर ईसाइयत का ठप्पा लगा दिया। इस प्रकार उसी भूमि में, उन्हीं लोगों के विद्यमान रीति-रिवाजों को ईसाई घोषित कर दिया। बस, वहीं से रोमन लोगों में कुछ ईसाई, शेष गैर ईसाई ऐसी शुरू में फूट डालकर धीरे-धीरे सबको ईसाई कहलाने को छल-बल से मजबूर किया गया।

सन् १९६४ में प्रकाशित आंग्ल ज्ञानकोश ने भी माना है कि कृसमस त्यौहार ईसाइयों का नहीं है। अगर उसी को निकाल फेंका जाए तो ईसाइयत में रहता ही कुछ नहीं, ईसाइयत खोखली बन जाएगी। क्योंकि वही तो सबसे बड़ा दीर्घअवधि का आनन्ददायी पर्व है। वह समाप्त हो गया तो ईसाइयत ही समाप्त हो जाएगी। यह जानकर ही चन्द ईसाई सुधारक भले ही कुछ भी कहें, प्रत्यक्ष में कृसमस को ईसाइयत से अलग करने की किसी की हिम्मत नहीं। कृसमस ही ईसाइयत का प्राण है।

ऊपर जिस ईसाई पुस्तक का उल्लेख किया गया है उसके पृष्ठ ३ पर लिखा है "जीझस् का जन्म शरद् ऋतु में हुआ ही नहीं"। Adam Clarke के लिखे Commentary ग्रन्थ (खण्ड ५, पृष्ठ ३७०, न्यूयॉर्क संस्करण) में लिखा है कि "हमारे प्रभु २५ दिसम्बर को नहीं जन्मे थे, क्योंकि उन दिनों भेड़ चरने नहीं निकलते (जैसा कि जन्म प्रसंग का वर्णन है)। जीझस के जन्मदिन का कोई पता ही नहीं।"

इससे हमारे कथन का पूर्ण समर्थन होता है कि ईसामसीह एक काल्पनिक व्यक्ति है। पीटर, पॉल आदि ईशस् कृष्ण का जाप जीझस क्रुस्त के उच्चार से करते रहे। तत्पश्चात् १०-२० पीढ़ियाँ बीतीं और लोग समझने लगे कि वास्तव में ही जीझस कृस्त (क्राइस्ट) नाम का कोई व्यक्ति हुआ होगा। अत: उसके जन्म के सम्बन्ध में केवल अफवाहें ही अफवाहें हैं, ठोस प्रमाण एक भी नहीं।

उस समय के ईसाइपन्थी नेताओं ने चालाकी यह की कि रोम के सबसे उल्लासपूर्ण और दीर्घतम उत्तरायणी उत्सव से ही ईसा के कपोलकल्पित जन्म का नाता जोड़ दिया। The New Schaff Herzog Encyclopaedia of Religious Knowledge में लिखा है कि "दीर्घतम रात्रि समाप्त होकर 'नए सूर्य' के उत्तरायणी आगमन का तत्कालीन जनता के मन पर इतना प्रभाव था कि उस प्रसंग के Saturnalia तथा Brumalia कहलाने वाले उत्सव को ईसाई लोग टाल नहीं सके।

लोक मनोरंजन

ईसवी सन् के आरम्भ में सारे नृत्य-नाट्य आदि जनरंजन के कार्यक्रम धार्मिक, पौराणिक कथाओं पर आधारित होते थे। यूरोप में भी उस समय वैदिक सभ्यता थी। अत: भारत की तरह वहाँ भी मनोरंजन कार्यक्रम धार्मिक प्रणाली के ही होते थे।

इतना ही नहीं, अपितु यूरोपीय रंगमंच पर परियों के वस्त्र शुभ्र बतलाए जाते हैं। वे इसलिए कि भरतमुनि के लिखे नाट्यशास्त्र में वैसा आदेश है। और तो और इस्लामी शब्द 'परी' तथा यूरोपीय शब्द Fairy (फैरी) दोनों अप्सरा (Apsara) शब्द के ही अपभ्रंश हैं। उस शब्द में से a तथा s अक्षर निकालकर पढ़ें तो Para शब्द के ही उच्चार 'परी' तथा Fairy बने जान पड़ेंगे।

संस्कृत शब्द 'सत्-न' (यानि जो सत्य नहीं अपितु झूठ, ढोंग है) ही ईसाई लोगों में Satan तथा मुसलमानों में शैतान कहलाता है। इस्लामी 'खुद' तथा 'खुदा' यह संस्कृत के ही 'आत्मा-परमात्मा' के ढाँचे पर बने हुए

हैं। ईसाई लोग शैतान को Devil भी कहते हैं और मानते हैं कि जो देवों से पतित हुआ वह Devil। वह 'देवल' शब्द का ही रूप है।

रविवार भी ईसाई धर्मवार नहीं

ऊपर जिस ज्ञानकोश का उल्लेख है, उसमें लिखा है कि सम्राट् कंस दैत्यन् ने रविवार ईसाइयों का धार्मिक दिन तथा विश्रांति और छुट्टी का दिन इसलिए घोषित किया कि ईसवी सन् पूर्व प्रणाली में रविवार सूर्यपूजन का तथा छुट्टी का दिन होता था।

कृसमास् त्योहार मनाना ईसाई परम्परा से इतना विपरीत माना जाता है कि कई धर्मगुरुओं ने तथा शासनों ने उस पर प्रतिबन्ध लगाए, फिर भी कृसमास् ईसाइयों का प्रमुख त्योहार बन बैठा है।

सन् १६६० में Massachusetts Bay Colony, New England, U. S. A. ने एक कानून के द्वारा कृसमास त्योहार पर रोक लगानी चाही। उसमें लिखा था "आम जनता को यह आदेश दिया जाता है कि कृसमास् मनाना ईसाई धर्म का उल्लंघन है। वस्तुएँ भेंट देना-लेना, एक-दूसरे को कृसमास् के प्रसंग की बधाई देना, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनना, मिष्ठान्न भोजन और इसी प्रणाली के अन्य शैतानी व्यवहारों पर इस कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। उल्लंघन करने वाले को पाँच शिलिंग (शिवलिंग) दण्ड किया जाएगा।"

इसी प्रकार उसी १७वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में भी कृसमास् मनाने पर यह कहकर प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि "कृसमास् त्योहार Pagan, Papish, Saturnalian, Satanic, idolatrous और leading to idleness है। देखिए कितने दूषण लगाए गये थे कि "कृसमास् pagan (यानि भगवानवादी), Papish यानि पापहर्ता वैदिक धर्मगुरु का चलाया हुआ, Saturnalia यानि सूर्य के (सायन) मकर राशि में प्रवेश का, Satanic यानि शैतानी, idolatrous यानि मूर्तिपूजा प्रणाली का तथा आलस्य को प्रोत्साहन देने वाला पर्व है।" इससे बड़ा खण्डन और क्या हो सकता है? फिर भी विश्व भर के ईसाई कृसमास को ही निजी दीर्घतम और महत्तम त्योहार मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनकी ईसाइयत् केवल नाम ही नाम है।

Iehova's witness नाम का एक ईसाई संघटन है। उसके दिसम्बर २२, १९८१ के Awake (यानि 'जागृत') नाम के साप्ताहिक में लिखा था कि "सारे ज्ञानकोश तथा अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं कि जीझस की जन्मतिथि अज्ञात है। ईसाई धर्म ने २५ दिसम्बर तारीख और उस दिन से संलग्न सारे उत्सव और प्रथाएँ रोमन् लोगों से अपना लीं।"

ब्रिटिश ज्ञानकोश का कथन है कि "ईसाई धर्मविधियों में अनेक ईसा पूर्व की हैं; विशेषकर कृसमास्। उस त्यौहार द्वारा सूर्य का मकर राशि में प्रवेश तथा नए सूर्य (मित्र) के जन्म पर मिष्ठान्न भोजन और आनन्दोत्सव मनाए जाते थे।

Encyclopaedia Americana यानि 'अमेरिकी ज्ञानकोश' ने लिखा है "आम धारणा यह है कि ईसाइयों ने २५ दिसम्बर तारीख इस कारण चुनी क्योंकि उस दिन पहले से ही उत्तरायण का उत्सव भगवान (pagan) धर्मी लोग मनाया करते थे।" The New Catholic Encyclopaedia भी कहता है कि कृसमास् उत्तरायण का उत्सव था।

Saturnalia, यह सात दिन का उत्सव (दिसम्बर १७ से २४) रोमन लोगों में शनि के स्मरण में मनाया जाता था। इस उत्सव में लोग खाते-पीते, नाचते-गाते तथा एक-दूसरे को वस्तुएँ भेंट देते और घर-द्वार हरियाली से सजाते। ईसाई लोग वही उत्सव आगे चला रहे हैं।

अतः अच्छा यही होगा कि ईसाई लोग अपना अलग पन्थ त्यागकर अपने-आपको वैदिक धर्मी ही कहलाएँ। ईसाई कहलाकर वैदिक रीति, प्रथा अपनाना ठीक नहीं। एक तरफ वैदिक-प्रथा अपनाकर अपने-आपको ईसाई कहलवाना दोनों धर्मों का अपमान है। ईसाई लोग जिसे ईसाइयत या Roman Paganism (यानि Roman भगवान पन्थ) कहते हैं वह वैदिक हिन्दुत्व है।

विभूति बुधवार

एक बुधवार को ईसाई लोग Ash Wednesday यानि विभूति बुधवार कहकर उस दिन ललाट पर भस्म उर्फ विभूति लगाते हैं। ललाट पर भस्म लगाना मूलतः वैदिक प्रथा ही तो है।

सर्वपित्री अमावस्या

वैदिक प्रथा के अनुसार पितृपक्ष में सारे मृत पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। ईसाइयों का All Souls Day स्पष्टतया उसी का अनुसरण है।

ईस्टर (Easter)

ईसाइयों का ईस्टर नाम का एक त्योहार है। रोमन लोग उसमें बासन्ती देवी का पूजन वसन्तोत्सव के रूप में करते थे। उस देवी का नाम Easter था। उसी दिन यादवों की पहली टोली द्वारका नगरी छोड़ गई थी। अत: यहूदी लोग उसे Passover Day यानि प्रस्थान स्मृतिदिन के नाम से मनाते हैं और उसी से उनकी वर्ष गणना आरम्भ होती है।

ईसाई लोगों की धारणा है कि क्रूस पर कील ठोंककर मारे जाने के पश्चात् तीसरे दिन कृस्त कब्र से निकलकर जीवित ही स्वर्गारोहण कर गया। उसी स्वर्गारोहण के स्मरण में ईस्टर मनाया जाता है।

ईसापूर्व त्यौहारों को ईसाई मोड़ दिए जाने का यह एक और उदाहरण है। जीझस नाम का जब कोई व्यक्ति कभी था ही नहीं तो उसे सूली चढ़ाया, कब्र में दफनाया, तीसरे दिन वह कब्र से निकलकर स्वर्ग सिधार गया आदि सारी बातें निराधार सिद्ध होती हैं।

वास्तव में यह ईसाई कथा एक वैदिक प्रणाली की नकल मात्र है। पुराणों के अनुसार पार्वतीजी को पुत्र प्राप्ति की इच्छा हुई। किन्तु शिवजी तो ध्यानमग्न बैठे थे। तो पार्वती ने मदन से कहा कि वह शिवजी के मन में काम जागृत करे। मदन ने अपने एक-एक कोमल बाण मारकर शिवजी के मन में कामवासना जगाने की चेष्टा की। समाधि में कौन बाधा डाल रहा है? जब यह देखने के लिए शिवजी ने आँखें खोलीं तो पता लगा कि कामदेव वह बाधा उत्पन्न कर रहे थे। तब शिवजी ने तृतीय नेत्र खोलकर क्रोधाग्नि में कामदेव को भस्म कर दिया। उस पर मृत पति के लिए रति विलाप करने लगी। तब प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे वर दिया कि कामदेव पुन: जीवित होंगे किन्तु वे अनंग यानि शरीरहीन होंगे। ईसाई लोग जो ईसामसीह का सदेह स्वर्गारोहण बताते हैं वह वास्तव में कामदेव की कथा है। तत्प्रीत्यर्थ ईसाई लोग जो Easter मनाते हैं वह वास्तव में प्राचीन

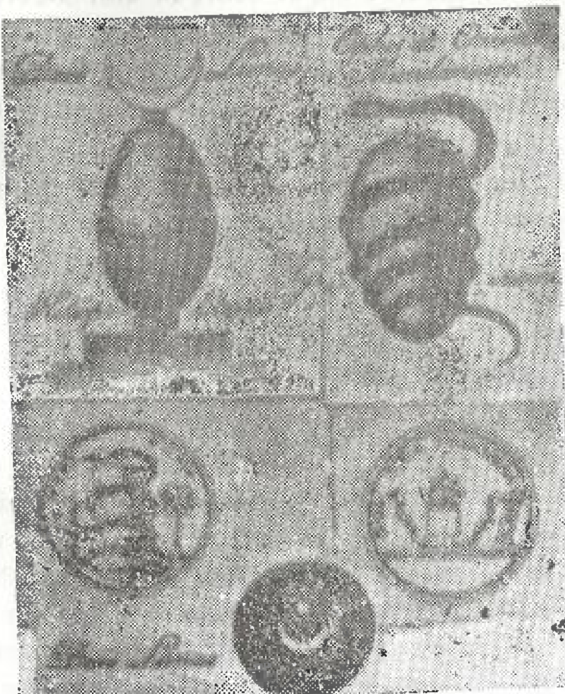
वैदिक वसन्तोत्सव पर्व है। अंग्रेजी में कामदेव को Cupid कहते हैं वह 'कोपद' यानि 'शिवजी को कोप देने वाला' इस अर्थ से है।

इस तरह बारीकी से शोध करने पर पता चलेगा कि जो त्योहार, प्रथाएँ, उत्सव, पर्व आदि ईसाई माने जाते हैं, वे सभी प्राचीन वैदिक हैं।



यह St. Paul उर्फ सन्त गोपाल का चित्र है। इसका पहरावा देखें। वह एक वैदिक प्रचारक था। दाहिने हाथ में खड्ग और बाएँ में भगवद्गीता है। उन दिनों बायबल लिखा ही नहीं गया था। अतः वह बायबल नहीं है। किन्तु स्थानीय भाषा में उसे Bible यानि पुस्तक कहते हैं। तो उस समय कृष्णपंथियों के एकमेव ग्रन्थ भगवद्गीता का ही उल्लेख Bible (यानि पुस्तक) कहकर होता था। सन्त गोपाल वैदिक धर्म का प्रचारक

था। वह अपने आपको कृष्णियन् या कृष्णभक्त कहलाता था। उसी कृष्णियन् शब्द का अपभ्रंश कृश्चियन हुआ है। वैदिक परम्परा से फूटकर ईसाई पन्थ को अलग करने में जिन दो-चार व्यक्तियों ने अगवाही की उनमें सन्त गोपाल एक था। गीता ही ऐसा धर्मग्रन्थ है जिसका प्रवचन खड्ग हाथ में लिए अच्छा किया जा सकता है। गोपाल एक साधु-सन्त था। उसकी सन्त उपाधि ईसाई पन्थ के निर्माण के पूर्व की है। क्योंकि जेरुसलेम, कॉरिंथ आदि नगरों में जो वैदिक देवताओं के मन्दिर थे उनकी कार्यकारी समिति के सन्त गोपाल एक सदस्य थे।



वैदिक परिभाषा में विश्व को ब्रह्माण्ड कहते हैं। फ्रेंच भाषा का Monde (मॉंड) यानि 'विश्व' उसी संस्कृत 'ब्रह्माण्ड' शब्द का अन्तिम

हिस्सा है। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् जब वैदिक सभ्यता टूट-फूट गई तब विविध, वैदिक पन्थ एक-दूसरे से बिछुड़कर स्वतन्त्र पन्थ या धर्म-प्रणालियां बन गईं। उसमें वैदिक देवताओं के स्वरूप भी बदलते गए। उदाहरणार्थ ऊपर के चित्र में देखें कि शिवलिंग, उसके ऊपर लिपटा नाग और अंकित चन्द्रमा का कैसा भिन्न-भिन्न चित्रण होता गया। कहीं शिवलिंग को अण्डे का रूप दिया गया है। ईसाई पन्थ के निर्माण से पूर्व परिस्थिति पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों में से यह चित्र लिए गए हैं। इनमें ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड को आधार देने वाला शेषनाग, शिवलिंग तथा शिवलिंग से लिपटा नाग, शिवजी के माथे पर दिखाई देने वाली चन्द्रकोर आदि विविध वैदिक चिह्नों की किस प्रकार तोड़-मरोड़ होती रही उसके कुछ प्रकार दिखाए गए हैं। अनादिकाल से शिवजी की पूजा सर्वत्र होती थी। इस्लाम का चाँद सितारा चिह्न शिवमन्दिरों से ही लिया गया है। सर्प की लपेटें आगामी अज्ञात युगों की प्रतीक हैं। सर्पाकार में एक बड़ी शक्ति होती है। अत: प्रत्येक देवमूर्ति नाग का फन बतलाई जाती है। नाग की उग्र तारक-मारक शक्ति पर प्रभुत्व रखने वाले भगवान नाग पर सुख-पूर्वक लेटे हुए बतलाए जाते हैं। उसमें एक और भाव यह है कि परमात्मा इस सृष्टि की भयानक और सुखकारी भावना से परे है।

कृस्त, कृष्ण का अपभ्रंश है

वर्तमान विद्वज्जनों का यह बड़ा दोष है कि जिन तथ्यों को स्वीकृत करने से उनकी मान्यताओं को, प्रतिष्ठा को या स्वार्थ को ठेस पहुंचे, उन तथ्यों को वे कभी मान्य ही नहीं करते, चाहे कितने ही सशक्त प्रमाण उसके समर्थन में प्रस्तुत क्यों न किए जाएँ ? जैसे मेरा एक शोध है कि विश्व में जितने भी ऐतिहासिक नगर, इमारतें, पुल, मीनार, किले, बाड़े, दरगाहें, मस्जिदें आदि मुसलमानों की कही जाती हैं, वे सारी दूसरों की कब्जा की हुई सम्पत्ति हैं। अतः इस्लामी शिल्पकला का सिद्धान्त निराधार है। उस सिद्धान्त के कारण इस्लामी कला, शिल्पकला, पुरातत्व तथा इतिहास सम्बन्धी विशाल साहित्य एकदम निकम्मा बन जाता है। अतः उस साहित्य के निर्माता या उस साहित्य का आधार चाहने वाले अध्यापक सरकारी अधिकारी आदि ऐसा रवैया अपनाते हैं जैसे वे उस मेरे शोध-सिद्धान्त से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।

वैसा ही मेरा दूसरा सिद्धान्त है कि ईसाई पन्थ का सारा ढांचा ही कृत्रिम है क्योंकि ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं था। उसे यदि मान्यता दी गई तो ईसाई प्रणाली का पूरा आडम्बर ही समाप्त हो जाएगा। उससे कई लोगों के व्यवसाय, द्रव्यार्जन के साधन, रोजगार, प्रतिष्ठा प्राप्त स्थान, अधिकार आदि नष्ट हो जाएँगे ! ऐसी आपत्ति से बचने का सीधा-सादा उपाय यह है कि उस सिद्धान्त की बात ही टाल दो। जैसे उस सिद्धान्त की वार्ता कभी सुनी तक न हो।

अधिकांश जनता तो उसी बात को सत्य मानकर चलती है

उसका पेट भरे। जिसको मानने से स्वार्थ में बाधा आए वह सब झूठ ही है, केवल सत्य या ज्ञान के उपासक कम ही पाए जाते हैं। अतः ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी था या नहीं इस तथ्य का निष्पक्षता से विचार करने वाले व्यक्ति मिलने कठिन हैं। ऐसे मूलगामी प्रश्नों का न्यायबुद्धि से विचार करने वाला मन निर्भीक और निःस्वार्थी हो तब ही वह सत्य तत्व ग्रहण कर सकता है। ईसाई पन्थ के विद्यमान विराट स्वरूप से भयभीत होकर कोई ईसामसीह नाम का व्यक्ति था या नहीं; इस प्रश्न का विचार ही न कर सके, इससे सत्यान्वेषण कभी होगा ही नहीं।

एक छोटी-सी बात लें। आंग्लभाषा में feather inside cap मुहावरा है। टोपी में पंख चढ़ाना या लगाना इसका हिन्दी अर्थ होता है। भगवान कृष्ण के मुकुट में मयूर पंख होता था। उसी से यूरोपीय स्त्री-पुरुषों की टोपी में श्रेष्ठता तथा शोभादायी पंख लगाने की प्रथा पड़ी।

H. Spencer Lewis ने The Mystical Life of Jesus नाम का ग्रन्थ अमेरिका से सन् १९४४ में प्रकाशित किया (Rosicrucian Park, Sanjoes, California, 95114 U.S.A.)। इसके पृष्ठ २२० पर वे लिखते हैं कि "The 'i' and 'j' in the early Latin language were identical in form"। यानि प्राचीन लैटिन भाषा में i तथा j अक्षर दोनों एक समान ही लिखे जाते थे।

Spencer Lewis स्वयं भावुक ईसाई होने से ईसामसीह सचमुच एक अवतारी व्यक्ति हो गए ऐसा उनका विश्वास है। किन्तु मजे की बात यह है कि उन्होंने स्वयं अपने लिखे ग्रन्थों में ऐसे प्रमाण दिए हैं जिनसे Jesus Christ नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं यह निष्कर्ष निकलता है।

ऊपर कही बात ही देखिए कि लॅटिन भाषा में i और j अक्षर एक जैसे लिखे जाते थे। दूसरे एक मुद्दे का उन्होंने ध्यान नहीं रखा। वह बात ऐसी है कि Sn. का उच्चार St. किया जाता था। इसी कारण iesus chrisn की बजाय Jesus Christ लिखा जाने लगा।

उसी कारण कृष्णमास का उच्चार 'कृस्तमास्' रूढ़ हुआ। कृष्णमास त्यौहार ईसाई पन्थ के निर्माण से पूर्वकाल से मनाया जा रहा है यह तो हम बता ही चुके हैं।

जीझस क्राइस्ट के जन्म की तारीख कितने अण्ट-सण्ट तरीके से २५ दिसम्बर निश्चित की गई, इसकी बाबत Tom Burnam द्वारा लिखित ग्रन्थ 'The Dictionary of Misinformation' (Futura Publications, a division of Mcdonald & Co., Maxwell House, 74 Worship Street, London EC 2 A 2EN, Futura Publications Ltd. 1985 edition; first published 1978) में पृष्ठ ४९-५० पर लिखा है कि "The date itself is purely conjectural; There is no historical evidence that Christ was born on December 25. The date was not chosen until hundreds of years after the beginning of the Christian era. Meanwhile various dates had been used. Finally December 25 was officially adopted in 354 A. D. by Bishop Liberius of Rome. It is not however universal even now among all Christians."

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है "क्रुस्त का जन्म २५ दिसम्बर को हुआ इसका ऐतिहासिक आधार कोई नहीं है। वह तारीख ३५४ ईसवी में रोम नगर के बिशप लिबेरियस् के आदेश से मानी गई। फिर भी उस तारीख से सारे ईसाई सहमत नहीं हैं।"

रोमन लोग जो कृष्णमास मनाते थे उसका एक कारण तो पिछले पृष्ठों में स्पष्ट हो गया है कि वह उत्तरायण का उत्सव था। किन्तु हम उस उत्सव का एक और महत्वपूर्ण प्रयोजन बतला रहे हैं।

भगवद्गीता में "मासानां मार्गशीर्षोऽहम्" ऐसा भगवान कृष्ण का वचन है। दिसम्बर ही मार्गशीर्ष मास है। अतः महाभारतीय युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मार्गशीर्ष में कृष्णोत्सव मनाया जाने लगा। भगवान कृष्ण का जन्म मध्यरात्रि का है अतः इस समय घण्टियाँ बजाकर कृष्ण मास का उत्सव मनाने की प्रथा पड़ी। युद्ध दिसम्बर में ही समाप्त हुआ। सारे कौरव मारे गए और पाण्डव भगवान कृष्ण के मार्गदर्शन से विजयी हुए। अतः युधिष्ठिर के राज्यारोहण के समय अग्रपूजा का मान भगवान कृष्ण को दिया गया। युद्ध समाप्ति के वर्ष दिसम्बर में उत्तरायण के उत्सव की दो और विशेषताएँ थीं। एक विशेषता युद्ध समाप्ति के आनन्द की

और दूसरी विशेषता कृष्ण के मार्गदर्शन से प्राप्त विजय की। उसके साथ उत्तरायणी उत्सव का तीसरा महत्व। इस प्रकार उत्तरायण के उस पर्व का कृष्ण मासोत्सव भी नाम पड़ा। यह हमें यूरोप की Chrismas उर्फ Chrisnmas परम्परा से पता लगता है। अतः विशेषकर ईसाई लोगों को यह जान लेना आवश्यक है कि वे कृष्णमास मनाते आए हैं।

Chrismas को वे X'mas भी लिखते हैं ? क्यों ? यह शायद ईसाई भी नहीं जानते। वह इस कारण कि सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर यह सारे सप्ताम्बर-अष्टाम्बर-नवाम्बर-दशाम्बर ऐसे संस्कृत शब्द हैं जिनका अर्थ है ७वाँ, ८वाँ, ९वाँ, १०वाँ महीना। रोमन लिखाई में १० का आँकड़ा X ऐसा लिखा जाता है। अतः X'mas का अर्थ है १०वाँ महीना। दिसम्बर उर्फ दिशाम्बर का भी अर्थ ठेठ वही है। वैदिक विश्वसाम्राज्य के समय मार्च (चैत्र) पहला मास होता था तभी सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर यह गिनती ठीक बैठती है।

'The Secret Doctrines of Jesus' नाम की H. Spencer Lewis की लिखी दूसरी एक पुस्तक है। उसके पृष्ठ ३९ पर दी टिप्पणी में वे लिखते हैं "Findings of such archaeologists as G. Lankaster Harding, Director of the Jordanian Department of Antequities (viz. the) most startling disclosure of the Essene documents so far published is that the seat possessed, years before christ, a terminology and practice that has always been considered uniquely christian, the Essenese praetised baptism and shared liturgical repast of bread and wine presided over by a priest. They believed in redemption and immortality of the soul. Their most important leader was a mysterious figure called the Teacher of Righteousness."

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

"जोर्डन देश के पुरातत्व विभाग के निदेशक श्री लंकास्टर हार्डिंग जैसों के अनुसार ईशानी पंथ के जो दस्तावेज आज तक प्रकाशित हुए हैं

उनमें एक अत्यन्त खलबली मचाने वाला है। उस दस्तावेज से यह पता चलता है कि क्रुस्त के कई वर्ष पूर्व भी उसी प्रकार की परिभाषा और कर्मकाण्ड अस्तित्व में था, जिसे आजकल ईसाई माना जाता है। ईशानियों का बपतिस्मा (व्रतबन्ध), पुरोहित के मार्गदर्शन में किया जाता था तथा पूजापाठ और तीर्थ प्रसाद होता था। पापमुक्ति और जीवनमुक्ति में उनका विश्वास था। उनका प्रभु एक अवतारी व्यक्ति था जो पुण्य पथप्रदर्शक के नाम से ख्यात है।"

किसी भारतीय हिन्दू को ऊपर दिया उद्धरण पढ़ते ही पता लग जाएगा कि ईशानी लोग ईशपन्थी वैदिक लोग थे। जोर्डन स्वयं जनार्दन शब्द का अपभ्रंश है। जनार्दन भी ईश्वर उर्फ ईशान का ही नाम है। वैदिक धर्म में ही पापमुक्ति और जीवनमुक्ति की विचारधारा होती है। और उन लोगों के प्रभु भगवद्‌गीता द्वारा पुण्य पथप्रदर्शक विख्यात भगवान कृष्ण ही थे।

इतना ही नहीं हरि तथा कृष्ण यह दोनों नाम अन्य देशों में भी प्रचलित थे। H. Spencer Lewis की पुस्तक 'The Mystical side of Jesus' में पृष्ठ १५७ पर लिखा है "ईजिप्त का 'ख' अधिकतर 'क' उच्चारा जाता है। अतः ईजिप्ती लिपि में यदि 'खेरू' लिखा जाए तो उसका उच्चार 'केरू' या 'क्रु' करना चाहिए। क्रुस्त (कृष्ण) यह उपाधि उसको लगाई जाती थी जिसका अवतार किसी विशेष (दैवी) मार्गदर्शन के हेतु हुआ हो।"

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन ईजिप्त में कृष्ण नाम रूढ़ था। किन्तु उसका उच्चार उसी तरह 'कृष्ट' होता हो जैसे भारत में बंगाली और कानड़ी लोग कृष्ण को कृष्ट ही कहते हैं।

H. Spencer Lewis ने एक और बड़ा महत्त्वपूर्ण रहस्य बतलाया है जो स्वयं उनकी समझ के बाहर था। वे कहते हैं कि प्राचीन ग्रीक लोग उनके भगवान के नाम के अद्याक्षर XP ऐसे लिखा करते थे। ठीक तो है। वास्तव में वह 'कृ-प' ऐसे अक्षर हैं—यानि 'कृष्ण-पुरुषोत्तम'।

उसी ग्रन्थ के पृष्ठ २२० पर श्री लुइस आगे लिखते हैं कि "प्राचीन-काल में ईश्वर के अद्याक्षर IHS ऐसे लिखकर उन अद्याक्षरों के बीच के विरामचिह्न अक्षरों के शीर्ष पर डाले जाते थे। आगे चलकर पढ़ने वाले उन चिह्नों को अक्षरों में (मात्रा आदि समझकर) गलत पढ़ने लगे।

परिणाम यह हुआ कि केवल IHS के बजाय लोग IHS ऐसा (H अक्षर के ऊपर) क्रूस लगाकर 'परमात्मा' का निर्देश करने लगे। अब ईसाई लोगों का वही पन्थचिह्न बन गया है।"

यह यूरोपीय गोरे लोग बिचारे क्या जानें कि IHS अक्षरों से ईश्वर हरि श्रीकृष्ण (Ishwar Hari Srikrishna) का बोध होता है। वे अद्याक्षर हैं यह बतलाने के हेतु उन अक्षरों के ऊपर जो विरामचिह्न लगाए जाते, बदलते-बदलते उनका क्रूस बन गया। यह बात स्वयं स्पेंसर लुइस इस ईसाई अमेरिकी ने ही लिखी है। इससे भारतीय वाचक देख सकते हैं कि प्राचीन विश्व में फैले वैदिक संस्कृति के अपार प्रमाण गोरे पाश्चात्य लोगों को प्राप्त होने पर भी वे ताड़ नहीं सके कि वह सारी एक संघ वैदिक संस्कृति के द्योतक हैं। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि का ठीक ज्ञान न होने के कारण गोरे संशोधक उन चिह्नों में विविध असम्बद्ध पन्थों की कल्पना करने लगे।

अब जेसुइट पन्थी ईसाई लोगों को भी समझाना होगा कि उनके पन्थ-चिह्नों में सम्मिलित उन अक्षरों का गूढ़ अर्थ क्या है? क्योंकि उनका तो टूटा-फूटा, रटा-रटाया पन्थ था। वे बेचारे क्या जानें कि उनका पन्थ चकनाचूर हुई वैदिक सभ्यता का एक भाग था। इससे पता चलेगा कि अपने आपको ईसाईपन्थी मानने वाले लोग कितने भटक गए हैं। वे कहाँ से कहाँ चले गए थे। वे थे कृष्णापन्थी। किन्तु अब वे अपने आपको असहाय्य अवस्था में फाँसी चढ़ाए गए किसी कपोलकल्पित ईसामसीह का वृथा जाप करने में जीवन बिता रहे हैं।

उस कपोलकल्पित ईसा को क्रूस पर लटकाया गया। अत: ईसाई लोग उस क्रूस का एक छोटा प्रतीक गले में लटकाते हैं, ऐसी आम धारणा है। किन्तु वह सरासर गलत है। एक टीकाकार ने ठीक ही कहा है कि यदि कृस्त बन्दूक से मारा जाता तो क्या उसके अनुयायी बन्दूक का चिह्न गले में लटकाते? वास्तव में कृस्त नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं। अत: उसके क्रूस पर लटकाए जाने की घटना हो ही नहीं सकती। और एक बात सोचें कि यदि वह सचमुच अवतारी व्यक्ति था तो निजी विरोधियों को परास्त करने की बजाय असहाय अवस्था में वह स्वयं कैसे फाँसी चढ़

गया ? ईश्वर क्या ऐसा दुर्बल होता है या सर्वशक्तिमान होता है ? ईसाई पन्थ में विश्वास करने वालों ने कभी ऐसी बातों को सोचा ही नहीं।

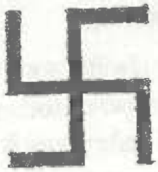
क्रूस एक प्राचीन वैदिक चिह्न है। त्रिशूल को देखें (चित्र १)। इसके दाएँ-बाएँ के दो गोलाकार डण्डे इस प्रकार सीधे कर दिये जाएँ तो वह क्रस बन जाता है (चित्र २)। अब दूसरा वैदिक चिह्न 'स्वस्तिक' देखें (चित्र ३)। इसके कोनों वाली चार छोटी भुजाएँ निकाल दी जाएँ तो



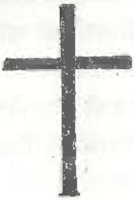
चित्र (१)



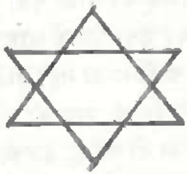
चित्र (२)



चित्र (३)



चित्र (४)



चित्र (५)

(चित्र ४) क्रूस ही बचेगा। अतः क्रूस कोई ईसाई चिह्न नहीं है। वह भी एक टूटा-फूटा वैदिक चिह्न ही है। वह ईसवी सन् के पूर्व प्रचलित था इसके प्रमाण हम दे चुके हैं। प्राचीन समय के सूर्यभक्त भी सूर्य को नेत्र-दीपक चमकीले सुनहरी क्रूस चिह्न से दिग्दर्शित करते थे। Syrian Christians कहलाने वाले अभी तक अपने गिरिजाघरों में उस ईसापूर्व सूर्य चिह्न को सँभाले हुए हैं।

श्रीचक्र उर्फ चक्र भी ऐसा ही एक वैदिक चिह्न था जो ईसवी सन पूर्व विश्व में प्रचलित था। यहूदी लोग अभी तक उसे निजी पन्थचिह्न मानते

हैं। उसे वह (देवी + द) Davids Star यानि 'देवी का दिया सितारा उर्फ चिह्न' कहते हैं। देवीपूजन में प्रयुक्त होने वाला यह एक तान्त्रिक चिह्न है। इस व्युत्पत्ति से उसका (देवी का सितारा) Davids Star सार्थ है। परशु भी एक प्राचीन वैदिक चिह्न है जो यूरोप में प्रचलित था।

एक गुणा चिह्न जैसा × क्रूस और दूसरा अधिक चिह्न जैसा लम्बे डण्डे वाला दोनों वैदिक धार्मिक चिह्न यूरोप तथा पश्चिमी एशिया में ईसवी सन् पूर्व समय से प्रचलित थे।

मरिअम्मा

ईसवी सन् पूर्व समय में मरिअम्मा मन्दिर होते थे। उसी मरिअम्मा का अनुवाद Mother Mary यानि मरिमाता होता है। भारत के बडोदरा उर्फ बड़ौदा नगर के बाबाजीपुरा में मरिमातानो खाचों नाम की गली में मरिमाता का मन्दिर है। भारत की तमिल जनता में मरिमाता के मन्दिर होते हैं। रोमन लोगों ने उसी वैदिक मरिमाता की पूजा चालू रखने हेतु ईसाई बनाए जाने पर भी उसे जीझस् उर्फ ईसामसीह की माता बना दिया।

जीझस् की माता मेरी कुमारी थी, फिर भी उसी की कोख से ईसा का जन्म हुआ ऐसा ईसाई लोग मानते हैं। यह दोनों परस्पर विरोधी बाते हैं। कुमारी कभी माता नहीं होती और न ही माता कभी कुमारी हो सकती है। इससे भी ईसाई पन्थ की नींव अण्ट-सण्ट धारणाओं से किसी तरह ऊट-पटांग बना दी गई है, इसका सबूत मिलता है।

यूरोप भर में Mary या Madonna आदि के नाम से जितने गिरिजा-घर, गुफाएँ या अन्य धर्मस्थान हैं वे सारे ईसवी सन पूर्व काल में देवीमन्दिर थे। जैसे-जैसे विविध प्रदेश या लोग ईसाई बनते गए उन्हीं के पुराने देवी-देवताओं को भी ईसाई परम्परा का ठप्पा लगाकर ईसाई बनाया गया। Madonna नाम भी "माता: न:" यानि "हमारी माता" इस संस्कृत उक्ति का अनुवाद है। कहीं Black Madonna यानि कालीमाता के मन्दिर हैं। फिर भी उसे ईसाई ही समझा जाता है। जनता की यह कितनी बड़ी वंचना है। यूरोपीय भाषा में Madam (मादाम्) शब्द वस्तुत: 'माता' का ही 'मादा' उच्चार है।

जीसस नाम का कोई व्यक्ति नहीं था

सारा ईसाई धर्म एक व्यक्ति पर आधारित है। वह व्यक्ति (ईसामसीह) कपोलकल्पित सिद्ध होने पर ईसाई धर्म सारा निराधार बनता है। इस पर कुछ नासमझ व्यक्ति ऐसा आक्षेप उठाते हैं कि यदि आप ईसामसीह को काल्पनिक व्यक्ति कहें तो ईसाई लोग कृष्ण को भी काल्पनिक व्यक्ति कह देंगे।

इस आक्षेप के दो उत्तर हैं। एक तो यह कि इतिहास तो सत्य घटनाओं का ब्योरा होता है। वह कोई राजनयिक लेन-देन या समझौता तो है नहीं कि 'आप यदि जीसस के अस्तित्व को मान्यता देंगे तो ही हम कृष्ण का अस्तित्व मान्य करेंगे। यदि आप कहेंगे की ईसा नहीं था तो हम भी कहेंगे कि कृष्ण भी काल्पनिक व्यक्ति था।'

यह तो केवल विवाद बढ़ाने वाली बात है। कृष्णावतार हुआ था या नहीं इसके सबूत अलग होंगे। उसी प्रकार ईसाई धर्म के संस्थापक कृस्त नाम का कोई व्यक्ति था या नहीं इसके प्रमाण भिन्न होंगे। दोनों का स्वतन्त्र रूप से निर्णय हो।

हमारा दूसरा उत्तर यह है कि ईसाई धर्म जिस प्रकार ईसामसीह पर आधारित है उस प्रकार वैदिक धर्म राम या कृष्ण पर आधारित नहीं है। राम या कृष्ण का अस्तित्व मान्य न करने पर भी वैदिक धर्म को कोई अन्तर नहीं पड़ता। वैदिक धर्म तो केवल वेदों यानि ज्ञान पर आधारित है।

इसी आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि "बुद्ध, ईसामसीह और मोहम्मद जैसे एक-एक व्यक्ति पर आधारित धर्मों की नींव

दुर्बल होती है। यदि इतिहास कभी कह दे कि उस नाम का कोई धर्म संस्थापक कभी था ही नहीं तो उस धर्म के अनुयायी कहीं के नहीं रहेंगे।" उनकी वह भविष्यवाणी सही निकली। क्योंकि यूरोप में ऐसे सैंकड़ों विद्वान हैं जो अब मानने लगे हैं कि ईसामसीह एक कपोलकल्पित व्यक्ति है।

सामान्यजन तो भेड़ की तरह अनुकरणप्रिय होते हैं। "गतानुगति को लोका:" यह संस्कृत वचन प्रसिद्ध है। प्रत्येक प्रश्न का स्वतन्त्र हल ढूंढने के लिए न तो सामान्य व्यक्ति के पास समय होता है न बुद्धि। वह तो देखता है कि भीड़ किधर जा रही है? उधर ही उसके पैर मुड़ जाते हैं।

ईसामसीह के अस्तित्व की बाबत स्वयं पाश्चात्य गोरे लोगों में ही जो विवाद है उसका सार William Durant के लिखे The Story of Civilization के खण्ड ३ में पृष्ठ ५५३ पर इस प्रकार दिया है—

"जीशस् ईसापूर्व वर्ष ४ से ईसवी सन् ३० तक।"

"क्या क्रुस्त वास्तव में कोई व्यक्ति था? ईसाई धर्मसंस्थापक की जीवनी क्या मनगढ़न्त कहानी है?"

"अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ के वर्षों में Bolingbroke मित्र-मण्डल के सदस्यों में आपस में इस प्रश्न की चर्चा हो रही थी कि क्या ईसामसीह कपोलकल्पित व्यक्ति है? Waltaire जैसे (स्वतन्त्र विचारी) व्यक्ति को भी उस (धार्मिक धृष्ठता) से धक्का लगा। Ruins of Empire नाम के ग्रन्थ में लेखक Volney ने सन् १७९१ में यही शंका प्रकट की थी। फ्रेंच सेनानी तथा सम्राट् नेपोलियन ने सन् १८०८ में जर्मन विद्वान् Wieland से भेंट होने पर यही प्रश्न पूछा था "कि क्या क्रुस्त कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था या नहीं?"

इस प्रकार कम-से-कम गत २०० वर्षों से कुछ स्वतन्त्र विचारी यूरोपीय-जन जो निडर और सत्यप्रेमी हैं, ईसामसीह की ऐतिहासिकता की बाबत शंका प्रकट कर रहे हैं।

विलियम ड्यूरंट लिखते हैं, "उस दो सौ वर्ष के विवाद का पहला हमला Hermann Reimarus नाम के व्यक्ति ने चुपचाप किया। वे हैम्बर्ग विश्वविद्यालय में प्राच्य-भाषाओं के प्राध्यापक थे। उनकी मृत्यु सन् १७६८ में हुई। मरते समय जीशस की जीवनी पर वे १४०० पृष्ठों का

एक हस्तलिखित ग्रन्थ अप्रकाशित छोड़ गए। छह वर्ष पश्चात् Gothold Lessing ने कुछ मित्रों के विरोध को ठुकराकर उस हस्तलिखित ग्रन्थ के कुछ भाग Wolfnbuettel Fragments शीर्षक से प्रकाशित किए। सन् १७९६ में Herder ने दर्शाया कि Matthew, Mark तथा Luke द्वारा दर्शाया गया कृस्त, जॉन के लिखे वर्णन से कितना असंगत है।

"सन् १८२८ में Heinrich Paulus ने जीशस की जीवनी की जांच करते हुए ११९२ पृष्ठों के अपने ग्रन्थ में यह सिद्ध किया कि जीशस के जो चमत्कार माने जाते हैं, वे तो तत्कालीन प्राकृतिक घटनाएँ थीं।"

"किन्तु David Strauss ने १८३५-३६ में जो Life of Jesus नाम का एक विशाल ग्रन्थ लिखा, उसमें उसने बड़ा स्पष्ट और स्वतन्त्र निष्कर्ष यह प्रकट किया कि जीशस के जो चमत्कार कहे जाते हैं वे सारी कपोल-कल्पित बातें हैं।" इससे ईसाई विद्वानों में एक बड़ा जोरदार विवाद चल पड़ा।

"सन् १८४० में Bruno Baur ने एक प्रकाशनमाला ही आरम्भ कर दी जिसका उद्देश्य था लोगों को यह बताना कि जीशस एक काल्पनिक व्यक्ति है। दूसरी शताब्दी में यहूदी, ग्रीक तथा रोमन लोगों की जो धार्मिक धारणाएँ थीं उनको सम्मिश्र रूप देने हेतु एक जीशस का कृत्रिम व्यक्तित्व बनाया गया।"

"सन् १८६३ में Ernest Revan[१] ने अपनी पुस्तक Life of Jesus (जीशस की जीवनी) में बड़ी तर्कशुद्ध पद्धति में तथा आकर्षक शैली में यह स्पष्ट किया कि Mark, Matthew, Luke, John आदि द्वारा लिखे गए बायबल के gospels कतई विश्वसनीय नहीं हैं।"

इस शताब्दी के अन्त के कुछ वर्षों में Abbe Lusy नाम के एक फ्रांसीसी लेखक ने New Testament नाम के बायबल के उत्तरी भाग का इतनी गहराई से विश्लेषण किया कि कैथलिक पंथियों ने क्रुद्ध होकर उसे और उसके समान धारणा रखने वाले सभी व्यक्तियों को पन्थ से

---

१. Ernest Revan नाम वास्तव में 'रावण' का ही यूरोपीय अपभ्रंश है।

बहिष्कृत कर दिया।

हालैण्ड देश में Pierson, Naber और Mathew के नेतृत्व में एक आन्दोलन चल पड़ा जिसमें जीशस की अन-ऐतिहासिकता बताई गई थी।

"जर्मनी में Arthur Drews ने जीशस की ऐतिहासिकता में अविश्वास प्रकट किया। इग्लैण्ड में W. B. South, G. M. Robe G.A. wells) जैसे विद्वानों ने भी कहा कि जीशस एक कपोलकल्पित व्यक्ति है।"

इतना होते हुए भी जीशस क्राइस्ट की मनगढ़न्त कहानी बनाकर कृस्ती धर्म का विशाल आडम्बर कैसे रचा गया इसका विवरण Christianity is Chrisn-nity नाम के मेरे ग्रन्थ में दिया गया है। इस ग्रन्थ में भी हमने समय-समय पर उसका विवरण दिया है।

महाभारतीय युद्ध समाप्ति के भीषण परिणामों से कुछ राहत मिलने के पश्चात् Bethleham, Nazareth, Jerusalem, Corinth तथा Rome आदि नगरों में कृष्णवंश के छोटे-छोटे मण्डल स्थापित हुए।

जोसेफस नाम का यहूदियों का एक विख्यात इतिहासकार है। उसने ईसवी सन् ९३ के आसपास Antiquities (यानि "पुराण" उर्फ प्राचीन इतिहास) ग्रन्थ लिखा। उसमें उसने एक कही-सुनी बात लिख दी कि नब्बे वर्ष पूर्व "Lived Jesus, a holy man, If man he may be called for he performed wonderful works, and taught men and joyfully received the truth. And he was followed by many Jews and many Greeks. He was the Messiah."

यानि "लगभग नब्बे वर्ष पूर्व जीशस नाम का एक साधु था, यदि उसे मानव समझा जाए, क्योंकि उसने बड़ी लीला बताई, लोगों का मार्गदर्शन किया और बड़े सन्तोष से सत्य स्वीकार किया। अनेक यहूदी व ग्रीक लोग उसके अनुयायी थे, तो वह देवदूत था।"

यही प्राचीनतम जीशस सम्बन्धी एकांकी ऐतिहासिक उल्लेख है। जोसेफस एक विख्यात और विश्वसनीय इतिहासकार माना जाता है। अतः लोगों ने ऊपर दिए उद्धरण को बड़ा महत्व दे रखा है।

किन्तु हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि चाहे जोसेफस कितना ही

विश्वसनीय माना गया हो उसने ऊपर लिखी जीसस की जो बात कही है वह तो जरा भी विश्वसनीय नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति ९३ वर्ष पूर्व जीवित था इसका ब्योरा जोसेफस को कैसे प्राप्त हुआ यह जब तक इतिहासकार न कहे तब तक उसका कोई भी ऊटपटांग कथन स्वीकार कर लेना भारी भूल है।

यदि जोसेफस स्वयं जीशस से मिला होता या उसके पिता जीशस से मिले होते और उन्होंने जोसेफस को जीशस की जानकारी दी होती, या कुछ दस्तावेजों का हवाला देकर जोसेफस लिखता तो कोई बात थी। फिर भी जोसेफस ने जीशस की बाबत जो कुछ लिखा है उसमें जरा भी ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। क्योंकि जीशस का पूरा नाम, उसके माँ-बाप, भाई-बहन, घर का पता, जन्म की तारीख, जीवनी, मृत्यु की तारीख, स्थान, मृत्यु का कारण आदि कोई काम की बात तो लिखी ही नहीं। अतः उसे ऐतिहासिक उल्लेख नहीं माना जा सकता। यह भी हो सकता है कि मूल जोसेफस का लिखा इतिहास यदि उपलब्ध नहीं है तो उसके सैकड़ों वर्ष पश्चात् जिसने जोसेफस के जीर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ की नकल निकाली वह कोई नया ईसाई होगा जिसने जोसेफस के नाम जीशस सम्बन्धी उल्लेख घुसेड़ दिया। अगले संस्करणों में वह जीशस सम्बन्धी उल्लेख भूल से जोसेफस का माना गया हो। इतिहास संशोधन में अनेक ऐसी शक्यताओं का अवधान रखना पड़ता है।

यदि लगभग एक सौ वर्ष तक जीशस के तथाकथित चमत्कारों का किसी ने कोई उल्लेख नहीं किया तो वह उल्लेख यकायक जोसेफस ने एक शतक के बाद किस आधार पर किया ? जब कोई बात स्वयं की उपस्थिति में नहीं होती है, अपितु ९३ वर्ष पूर्व होती है तो उसका आधार बतलाना इतिहासकार का कर्त्तव्य बन जाता है। स्वयं सन्त गोपाल उर्फ गोशाल (क्योंकि Paul को Saul भी कहते थे) कभी जीशस को मिला नहीं था। Durant भी कहता है कि जोसेफस का पाया जाने वाला जीशस सम्बन्धी उल्लेख विश्वसनीय नहीं है। ईसाई विद्वान भी उसे प्रक्षिप्त मानते हैं। क्योंकि ९३ वर्ष पहले एक घटना हुई थी ऐसा कोई कह दे तो उसकी जाँच कौन कैसे करे ? यदि जोसेफस सचमुच जीशस को देवावतार मानता तो

वह कभी का यहूदी पन्थ छोड़कर स्वयं ईसाई बना होता। इससे भी प्रतीत होता है कि जीशस सम्बन्धी वर्णन जोसेफस का न होकर प्रक्षिप्त है।

जन्म गाँव

जीशस का जन्मस्थान कोई बैथलम (Bethlehem) तो कोई नजरथ (Nazareth) बताते हैं। वास्तव में बात यह थी कि उस समय अरब प्रदेश में हर नगर में कई कृष्ण मन्दिर होते थे। उन सबमें कृष्ण जन्मोत्सव होता था। अतः कोई भी नगर कृष्ण (कृस्त) का जन्मस्थान कहा जा सकता था।

अब इन दोनों ग्राम नामों का जरा विश्लेषण करें। Bethlehem 'वत्सलधाम' का अपभ्रंश है। Nazareth नन्दरथ का अपभ्रंश है क्योंकि 'द' का 'झ' उच्चार होता है। इससे पता चलता है कि उस प्रदेश में कृष्ण-लीला का बड़ा प्रभाव था।

जीशस् की जन्मकथा भी कृष्णकथा की नकल है। नाम भी ईशस् कृष्ण का अपभ्रंश जीशस् कृस्त है। रात के १२ बजे घण्टा बजाकर कृष्ण जैसा ही कृस्त का जन्म मनाया जाता है।

जीशस् के जन्म समय का दृश्य जो गिरिजाघरों में दिग्दर्शित किया जाता है वह सारा गोकुल की तरह ही होता है।

जन्म वार, तिथि, वर्ष, समय, स्थान

जीशस के जन्म का वार, तिथि, मास, वर्ष, समय तथा स्थान सभी बातें अज्ञात हैं। यदि वह इतना प्रसिद्ध सन्त महात्मा और अवतारी व्यक्ति होता तो सारा ब्यौरा तत्कालीन जनता जानने का यत्न करती।

विलियम ड्यूरँट ने जीशस् का जन्म वर्ष ईसापूर्व चौथा वर्ष लिखा है। यही कितनी असंगत बात। भला ईसा का ही जन्म ईसा पूर्व कैसे हो सकता है?

ऐसे और भी अनेक अनुमान हैं। कोई कहता है जीशस का जन्म ईसवीसन पूर्व ६३वें वर्ष या ६८वें वर्ष में हुआ। ईसवी सन की गणना ईसा-मसीह के जन्मदिन से होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में यह प्रतिपादन करना कि स्वयं ईसा ईसवी सन के पूर्व ४ वर्ष या ६३ वर्ष या ६८ वर्ष जन्मा था कितनी भद्दी बात लगती है।

और एक असंगति देखें। ईसा का जन्म २५ दिसम्बर को मनाया जाता है। और नववर्ष का दिन होता है एक जनवरी। तो क्या ईसा का जन्म ईसवी सन् से एक सप्ताह पहले हुआ ? और यदि हुआ हो तो उसी दिन से वर्ष गणना क्यों नहीं की गई ?

यदि वर्ष गणना जनवरी से आरम्भ की हो और वर्ष के २९ दिसम्बर को ईसा का जन्म हुआ हो तो उसका अर्थ यह है कि ईसा का जन्म ईसवी सन के ५१ सप्ताह बीत जाने पर हुआ। यह भी बड़ा ऊटपटांग-सा लगता है।

इससे साफ सिद्ध होता है कि ईसा नामक कोई व्यक्ति था ही नहीं। उसके नाम से एक कालगणना ईसाई कहलाने वालों ने अण्टसण्ट चला दी।

यदि जीशस चमत्कार करने वाला ऐसा महात्मा होता जिसके चरणों पर हजारों भक्तजन रोज नमन करते तो उसके घर का पता अवश्य उपलब्ध होता।

जीशस् के प्रवचन भी नहीं

यदि जीशस ने धार्मिक प्रवचन करते जीवन बिताया होता तो उसके प्रवचनों की कोई बड़ी पुस्तक होती या Bible में ही उसके प्रवचन होते। वे सारे भाषण कहाँ हैं ?

क्रुस्त के बनावटी चित्र

Ernest Kitzinger तथा Elizabeth Semor ने मिलकर ३२ पृष्ठ की एक Portraits of Christ नाम की पुस्तक प्रकाशित की हैं। इसके पृष्ठ २ और ३ पर वे लिखते हैं कि "जब हम पता करने लगते हैं कि जीशस के समय का ही जीशस का कोई चित्र या स्वरूप का कोई प्रत्यक्ष वर्णन है या नहीं तो पता चलता है कि तत्कालीन वर्णन या चित्र कोई भी नहीं है। जीशस के जो चित्र माने जाते हैं वे बाद की पीढ़ियों में काल्पनिक बना दिए गए हैं। मार्क, मैथ्यू, जॉन और ल्यूक द्वारा लिखे Bible में जो Gospels नाम के अध्याय हैं उनमें भी जीशस के स्वरूप का या शरीरयष्टि का कोई वर्णन नहीं है।

उन दो संशोधकों को यह दिखाई दिया कि सिकन्दर या सूर्यदेव के

चित्र जैसे बनाये जाते थे वैसा ही जीशस का चेहरा दर्शाने की प्रथा रूढ़ हो गई।

अब पाठक विचार करें कि William Durant, Ernest Kitzinger तथा Elizabeth Semor जैसे लेखक, संशोधक जीशस सम्बन्धी धौंसबाजी का पूरा पता चलने पर भी उसे स्पष्ट धौंसबाजी या हेरा-फेरी कहने का साहस नहीं करते और ईसाई धर्म से चिपके रहते हैं तो वे करोड़ों ईसाई जो बेचारे बिना सोचे-विचारे ईसाई कहलाते हैं इन्हें क्या दोष दिया जाए?

जीशस की मनगढ़न्त जीवनी

जीशस के ३३-३४ वर्ष के जीवन में केवल तीन ही घटनाओं का उल्लेख किया जाता है—उसका जन्म, बपतिस्मा (यानि व्रतबन्ध) और क्रूस पर कील ठोंककर मृत्यु। किन्तु मृत्यु की घटना को मोड़कर यह कहा जाता है कि यद्यपि उसे मृत समझकर दफनाया गया तथापि तीसरे दिन वह पुनर्जीवित होकर कब्र तोड़कर बाहर निकला और सीधा स्वर्ग सिधार गया।

अपने जीवन के ३३-३४ वर्ष जीशस ने कैसे और कहाँ बिताए? वह प्रातः से शाम तक करता क्या था? रहता कहाँ था? आदि बातों का ब्यौरा दिए बगैर यकायक यह कहा जाता है कि एक शाम को १२-१३ शिष्यों सहित भोजन करते समय Judas नाम के अनुयायी ने विश्वास-घात कर रोमन् अधिकारियों को जीशस का परिचय करवाकर जीशस को बन्दी बनवा दिया। उस पर रोमन अधिकारियों ने आरोप लगाया कि "तुम अपने आपको यहूदियों का राजा कहलाते हो (या यहूदी तुम्हें राजा कहते हैं) अतः तुम्हें क्रूस पर हाथों-पाँवों में कील ठोंककर मृत्यु दण्ड दिया जाता है।"

यह सारा ही वर्णन अटपटा, असंगत और अविश्वसनीय है। इधर तो यह कहा जाता है कि क्रस्त बिचारा बड़ा सीधा-सादा, गरीब और दयालु था और उधर उस पर आरोप यह लगाया जाता है कि उसे यहूदियों का राजा कहलाने की महत्वाकांक्षा थी। यदि वह आरोप सही होता तो रोज बड़े-बड़े जुलूस निकाले जाने का और जीशस को कन्धों पर उठाए हुए लोगों

के झुण्डों द्वारा रोमन दफ्तरों पर धावा बोलने की घटनाएँ इतिहास में लिखी जातीं। यहूदी उसे राजा कहते या जीशस अपने आपको यहूदियों का राजा कहलवाता, यह तो पूरी गप है क्योंकि यहूदी तो आज तक जीशस् से किसी प्रकार का नाता नहीं जोड़ते, राजा कहने की तो बात ही नहीं उठती।

यदि जीशस इतना प्रसिद्ध व्यक्ति था तो अन्तिम शाम के भोजन के समय कुल १२-१३ व्यक्तियों में Judas ने अंगुलि निर्देश द्वारा जीशस को कैद कराने में रोमन अधिकारियों को सहाय्य किया, यह बात भी विश्वसनीय नहीं दीखती।

यदि जुडस ने विश्वासघात किया तो अन्य साथियों ने उसे क्या दण्ड दिया ? यह भी जीशस की जीवनी में कोई ईसाई नहीं बताता।

ईसाइयों का झूठा प्रचार

पाश्चात्य देशों के सारे ही गोरे लोग ईसाई बन जाने के कारण उन्होंने सारा इतिहास विकृत कर रखा है। Benhur जैसे चित्रपटों में ऐसा बतलाया जाता है कि ईसाई बड़े सीधे-सादे, गरीब, भोले-भाले ईसा भक्त व्यक्ति थे जिन्हें रोमन अधिकारी क्रूरता से धर्मप्रचार से रोकते थे। वास्तव में पीटर, पॉल आदि ईसाई नेता जनता को रोमन शासन के विरुद्ध भड़काकर स्वयं शासक बनना चाहते थे। इस हेतु उन्होंने जब लोगों के झुण्ड जमा कर उन्हें भड़काकर बलवा करना आरम्भ किया तब उनका दमन करना रोमन शासन को अनिवार्य हो गया। लोग जब धर्म बदल देते हैं तो वे इतिहास भी किस प्रकार झुठला देते हैं। यह ईसाई और इस्लामी इतिहास से सत्यप्रेमी लोग सबक सीखें।

कब्र सम्बन्धी धौंस

जीशस की कब्र कहाँ थी, इसका भी आज तक किसी को पता नहीं। गत १९०० वर्ष तक सारे ईसाई कहते रहें कि ईसा को जेरूसलेम में सूली चढ़ाकर वहीं दफना दिया गया। अतः जीशस् की कब्र किसी अन्य स्थान पर होने की कोई बात ही नहीं थी।

किन्तु गत ७०-८० वर्षों से नतोविच (Natovich) नाम के एक रूसी के कहने पर कुछ ईसाई कहने लगे हैं कि सूली चढ़ाने के पश्चात् भी जीशस जीवित रहा। इतना ही नहीं अपितु तगड़ा होकर तिब्बत गया। वहाँ उसने किसी लामा से दीक्षा पाई किन्तु लौटते समय कश्मीर में जीशस् का देहान्त हुआ। वहां उसके नाम की एक कब्र बताई जाती है।

वास्तव में यह एक बड़ी वंचना ही है। भला ईसा की कब्र की देख-भाल एक मुसलमान परिवार क्यों कर रहा है? बात वस्तुतः यह है कि उस कब्र के मुसलमान मुजावर भोले-भाले ईसाइयों को यह कहकर चढ़ावा चढ़ाने पर राजी कर लेते हैं कि वह कब्र ईसा की है। बाकी बचे मुसलमान दर्शनार्थी। उनको वे मुजावर कहते हैं कि "अजी यह तो मुसलमान पीर की कब्र है"। इस तरह भावुक, धार्मिक धौंसबाजी से भोले-भाले ईसाई तथा इस्लामी प्रेक्षकों से धन बटोरते रहने का वह एक साधन बन गया है। जितने अधिक प्रेक्षक आते रहते हैं, उतनी ही वह बात अधिक फैलकर और धन आता रहता है। इस प्रकार इतिहास की हेरा-फेरी और जन-वंचना चालू रखना ही एक किफायती धन्धा बना हुआ है। जिससे एक परिवार को धन मिलता रहता है और प्रतिदिन सैंकड़ों दर्शनार्थी ठगे जाते रहते हैं।

ईसामसीह के जीवन की कहानी कैसे चल पड़ी?

इस प्रकार जन्मस्थान से मृत्यु स्थान तक ईसामसीह की कथा एक मनगढ़ना कहानी होने से ईसाई धर्म की नींव ही धँस जाती है। जेरूसलेम, कॉरिंथ आदि मन्दिरों की व्यवस्थापक मण्डली से मतभेद होने पर पीटर, पॉल आदि व्यक्ति वहाँ से निकाले गए। तब उन्होंने "हम पर बड़ा अन्याय हुआ, हमारे विरोधियों ने सत्य को क्या कुचला, प्रत्यक्ष ईश्वर को ही ठुकराकर सूली चढ़ा दिया।" इस प्रकार के क्रोध और चिढ़ भरे भाषण वे असन्तुष्ट नेता विविध नगरों में देते गए। वह सुनते-सुनते कुछ अनपढ़ भोले-भाले अनुयायी समझने लगे कि सचमुच ही किसी अवतारी व्यक्ति की हत्या हो गई। यह है ईसामसीह के काल्पनिक चरित्र का स्रोत—चन्द चिढ़े हुए व्यक्तियों की भीड़ को भड़काने वाले असम्बद्ध भाषण।

विश्व की वैदिक परम्पराएँ

नवरात्रि में देवीपूजन एक महत्वपूर्ण वैदिक परम्परा है। इस देवी-पूजन प्रथा का प्राचीन विश्व के अनेक भागों में पाया जाना वैदिक परम्परा के विश्वप्रसार का एक बड़ा प्रमाण है।

विविध नामों से वह देवी ख्यात हैं जैसे माँ, उमा, अम्बा, अम्मा, शक्ति, कन्या, माया, दुर्गा, शांता दुर्गा, सन्तोषी माँ, वैष्णवी देवी, भगवती, परमेश्वरी, पार्वती, चण्डी, भवानी, काली, भुवनेश्वरी, मोहिनी, महिषासुर-मर्दिनी, लक्ष्मी, गौरी, अन्नपूर्णा, अन्ना पेरीना, श्री, Ceres, माता मेरी (Mother Mary), मरिअम्मा, Madonna, Notre Dome, Allah आदि।

अल्ला 'ह' शब्द संस्कृत शब्दकोश में देखें। वह स्त्रीवाचक है। उसका अर्थ है "माता"। इसी कारण मुसलमान भी इसका स्मरण संस्कृत रूप के अनुसार ही "या अल्लाह!" कहकर करते हैं। जैसे "या कुन्देन्दु तुषार हार धवला।" उसे 'हे अल्ला' या 'भो अल्ला' कहा जाता यदि यह पुल्लिंगी शब्द होता।

ईसाइयों में तथा यहूदियों में David नाम 'देवीप्रसाद' जैसा 'देवीनन्द' यानि 'देवी ने दिया हुआ' इस अर्थ का है।

ईजिप्त और रोम के लोग देवी पूजा करते थे। जापान में भी देवी की पूजा होती है। रोमन लोग वर्षारम्भ के समय अन्नपूर्णा देवी की पूजा किया करते थे। फ्रांस में नेत्रदाम देवी के मन्दिर, जो अब गिरिजाघर कहलाते हैं, उस देश में सर्वत्र हैं।

शिव पूजा का विश्व-प्रसार

भगवान शिव पार्वती के पति हैं। उनकी पूजा भी सारे विश्व में होती थी। उन्हें Father God यानि पितृदेव कहा जाता था। इंग्लैण्ड में Caius College है। उस शब्द के प्रथम अक्षर 'C' का उच्चार यदि 'श' किया जाए तो शिवस्' उच्चार होता है। Canterbury इंग्लैण्ड की शंकरपुरी है।

प्रायश्चित की प्रथा

ईसाइयों में धर्मगुरु से भेंट कर निजी पापों को प्रकट रूप से स्वयं कह डालना और धर्मगुरु द्वारा उसका प्रायश्चित कराने की प्रथा वैदिक प्रणाली से ही चली आ रही है।

राम और कृष्ण की भक्ति

राम और कृष्ण वैदिक परम्परा में माने हुए अवतार हैं। उनकी भक्ति प्राचीन विश्व में हर प्रदेश और हर नगर में होती थी। इसके अनेक प्रमाण इस ग्रन्थ में समय-समय पर हम दे चुके हैं। रामायण हर देश में अभी भी किसी न किसी रूप में उपलब्ध है। उसका ब्यौरा हम दे चुके हैं। रोम नगर राम के नाम से बसा हुआ है तो जेरूसलेम = येरूशालेयम = यदुईशालयम् कृष्ण के नाम से बसा हुआ है। उधर मुसलमानों में रामझान यानि रामध्यान का महीना है तो इधर ईसाई क्रुसमास यानि कृष्ण-मासोत्सव का पर्व मनाते हैं। राम और कृष्ण से स्थान नाम और व्यक्ति के नाम मुसलमानों में और ईसाइयों में किस तरह पड़े हैं, यह हम बता चुके हैं। मुसलमानों का 'ईदगाह' वस्तुतः 'ईड + गेह' यानि 'पूजा घर' संस्कृत शब्द है। ईदगाहों में वैदिक देवमूर्तियाँ होती थीं।

वैदिक वर्ण-प्रथा

वैदिक समाज में चार प्रमुख वर्ण यानि व्यवसाय वर्ग–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र होते हैं। सारे विश्व में ऐसा चार वर्ण का समाज होता था, इसका उल्लेख हम इस ग्रन्थ में समय-समय पर कर चुके हैं। जैसे रोमन

सेनानी जूलियस सीझर के संस्मरण में यूरोपीय समाज के चार वर्णों का उल्लेख है।

आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण चारों वर्णों से एक-एक पत्नी रख सकता था। इस प्रकार चार पत्नियाँ रखने की प्रथा अरबों में इस्लामपूर्व काल से चली आ रही थी।

दैनन्दिन वैदिक आचार-प्रणाली

वैदिक जीवन-पद्धति में दैनन्दिन व्यवहार पंचांग में बताए ग्रहयोगों से बँधे होते हैं। इस व्यवस्था में कई बड़े ऊँचे तथ्य अन्तर्भूत हैं। एक तो यह कि मानवीय जीवन विश्वयंत्रणा का एक अंग है। दूसरा यह कि मन-माना जीवन बिताने से समाज में अव्यवस्था, अनाचार और अशान्ति फैलती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के दैनन्दिन व्यवहार, दैवी ग्रहयोगों के नियमानुसार ढाले जाने चाहिएँ। प्रत्येक दिन के ग्रहयोगों के अनुसार उस दिन के विशिष्ट आचार-व्यवहार आदि निश्चित किए जाने से जीवन में एक नई स्फूर्ति, नया रंग, नया उत्साह, नई कर्त्तव्यपूर्ति की भावना जागृत रहकर, आलस्य, जीर्णता, नीरसता, विफलता, निराशा आदि से मन मुक्त रहता है।

अत: पंचांग दैनन्दिन ग्रहयोग देखकर जब अक्षय्य तृतीया, कर्वा चौथ, नाग पंचमी, ऋषि पंचमी, एकादशी, सर्वपित्री अमावस्या, **प्रदोष**, विजया-दशमी, नवरात्र, लोढ़ी, नवरात्र, दशहरा, दीपावली, गणेश चतुर्थी आदि के अनुसार समाज के व्यवहार होते रहते हैं तो समाज में मिलकर रहने की भावना बढ़ती है और प्रत्येक व्यक्ति आगामी दिन के व्यवहार बड़े उत्साह, स्फूर्ति और श्रद्धा के साथ निभाता है।

इस्लाम और ईसाई पन्थ चलाए जाने से पूर्व सारे विश्व में उसी वैदिक ज्योतिषीय नियमानुसार मानवीय व्यवहार किए जाते थे। इसी कारण ब्रिटिश ज्ञानकोष में Church शीर्षक के नीचे दिए ब्यौरे में लिखा है कि विश्व के लगभग सारे प्रमुख गिरिजाघर ज्योतिषीय दृष्टिकोण से बने हैं।

ईजिप्त का प्रचीन Karnak मन्दिर संस्कृत कोणार्क का अपभ्रंश है। भारत के पूर्वी किनारे पर उड़ीसा राज्य में बना प्राचीन भव्य मन्दिर इसी-

लिए कोणार्क कहलाता है कि उत्तरायण-दक्षिणायण, जाते-आते सूर्य की किरण एक विशिष्ट कोण से एक निश्चित तिथि पर मन्दिर की सूर्यमूर्ति के मुख पर पड़ती है। ईजिप्त के प्राचीन कोणार्क उर्फ कारनाक मन्दिर का भी ठीक वैसा ही प्रयोजन था।

चक्रव्यूह उर्फ भूलभुलैय्या

महाभारत पुराण आदि में चक्रव्यूह उर्फ भूलभुलैय्या का उल्लेख होता रहता है। वैसी एक भूलभुलैय्या लखनऊ का प्राचीन मत्स्यभवन हिन्दू राजमहल (जिसे इस्लामी कब्जे के समय से बड़ा इमामबाड़ा कहा जाता है) की ऊपरली मंजिल में बना है।

ईजिप्त (अजपति) वैदिक देश था। उसमें ऐसी एक प्रसिद्ध भूल-भुलैय्या थी जिसका उल्लेख Strabo Herodotus, Pling, Diodorus आदि कई प्राचीन ग्रन्थकारों ने किया है। ईसवी सन् पूर्व पाँचवी शताब्दी में Herodotus ने उस भूलभुलैय्या को देखकर लिखा, "उसका विस्तार तथा भव्यता अवर्णनीय है। पिरॉमिड तो भव्य हैं ही किन्तु भूलभुलैय्या तो उनसे भी श्रेष्ठ कारीगरी के नमूने हैं। उनमें आमने-सामने १२ दालानों की जोड़ियाँ छत के नीचे बनी हुई हैं, उसकी दो मंजिलें हैं जिनमें एक मंजिल भू-स्तर के नीचे है। उसमें तीन हजार कक्ष थे और उनकी दीवारों पर तरह-तरह के रंगीन चित्र बने हुए थे।"

Strabo ने वह भूलभुलैय्या ईसापूर्व वर्ष २५ में देखी। उसे वह मन्दिर कहता है। "ईजिप्त में जितने जिले हैं उतने ही उसमें दालान बने हैं। कुशल मार्गदर्शक के बिना उस भूलभुलैय्या से कोई बाहर नहीं निकल सकता था। इतने उसमें कक्ष, गलियाँ, छज्जे, ढके या खुले मार्ग आदि बने हैं।"

ऐसी भूलभुलैय्या वैदिक राजप्रासादों में तथा मन्दिरों में बनाने की प्रथा थी। इसका एक उत्तम साहित्यिक प्रमाण यह है कि संस्कृत नाटकों में "इतो इतो राजान:" यानि "राजा जी इधर से चलें, इधर से चलें" ऐसा मार्गदर्शन करने वाला प्रतिहारी नाम का एक विशेष सेवक रहता था। क्योंकि राजकाज में मग्न राजा की उस भूलभुलैय्ये वाले विशाल महल में कहीं भटककर खो जाने की सम्भावना रहती थी।

दूसरा प्रमाण है महाभारत की चक्रव्यूह की परम्परा। तीसरा प्रमाण है मय द्वारा रचे महल में हुई दुर्योधन की दुर्दशा। चौथा प्रमाण है लखनऊ के मत्स्य महल में ऊपर की मंजिल पर बनी भूलभुलैय्या।

आगरा, दिल्ली आदि नगरों में बड़े-बड़े प्राचीन हिन्दू महल बने हुए हैं जिन्हें इस्लामी कब्जे के दिनों से सफदरजंग का मकबरा, हुमायूं का मकबरा आदि कहा जाता हैं। उनमें भी कई बार प्रेक्षक रास्ता भूल जाते हैं। कई बार बाहर आने का या ऊपर की मंजिलों में पहुँचने का मार्ग ही नहीं मिल पाता। प्राचीन वैदिक स्थापत्य की अनेक विशेषताओं में उलझनवाली रचना का अन्तर्भाव होता है।

पिरॉमिड्स का वैदिक स्थापत्य

पिरॉमिड्स भी वैसे ही प्राचीन वैदिक स्थापत्य से बने विस्मयकारी, उलझनकारी मरुस्थल के किले उर्फ राजप्रासाद हैं। वैदिक यज्ञ में ताँबे का एक हवनपात्र होता है, जो ऊपर से चौकोना और नीचे नोकीला होता है। उसे उल्टा रखा जाए तो पिरॉमिड का पूरा ढाँचा बन जाता है। यह आकार और किसी सभ्यता का नहीं है।

और एक प्रमाण यह है कि वैदिक स्थापत्य का जो दुर्गविधान है उसमें समतल भूमि पर, पहाड़ पर, तालाब आदि विविध स्थलों पर दुर्ग बनाने सम्बन्धी अध्याय हैं। उनमें मरुस्थल में दुर्ग बनाने की विधि भी लिखी है। संस्कृत स्थापत्य ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले देखें कि क्या पिरॉमिड्स उसी शैली की रचनाएँ हैं?

Peter Kolosimo द्वारा लिखित Not of this world ग्रन्थ में पृष्ठ २३६ पर उल्लेख है कि ईजिप्त के फेरोहा नरेश Chepos, Chefren तथा Mencheres से पूर्व Pyramids का निर्माण होना कोई अटपटी घटना नहीं है। उन अतिप्राचीन इमारतों में बड़ी महत्वपूर्ण तथा विपुल ऐतिहासिक सामग्री (दस्तावेज आदि) रही होगी जो अरबों के आक्रमणों में नष्ट हो गई होगी।

Oriental (यानि प्राच्य) पिरामिड के बाहर एक रक्षक देवता की मूर्त्ति थी जिसके ऊपर काली तथा सफेद धारियाँ बनी हुई थीं। उसके एक

हाथ में भाला था जिस पर दृष्टिपात करने वाला प्रेक्षक मर जाया करता था।

इसी पुस्तक के पृष्ठ २३७ पर उल्लेख है कि पश्चिम के पिरॉमिड पर भी एक रक्षक देवमूर्त्ति हाथ में भाला पकड़े लाल पत्थर की बनी हुई थी। इसके सिर पर नागफनी बनी हुई थी। तीसरे पिरॉमिड के सम्मुख भी चबूतरे पर विराजमान प्रस्तर की एक रक्षक देव प्रतिमा बनी थी।

अल् मुर्तादी नाम का एक अरबी हस्तलिखित इतिहास ग्रन्थ है। सन् १६६६ में Pierre Vatlier ने उसे फ्रेंच भाषा में अनूदित किया। Chepos पिरॅमिड के राजकक्ष में अरबी हमलावरों के प्रवेश का उसमें वर्णन है। उस कक्ष में एक पुरुष की काले पत्थर की बनी प्रतिमा थी। धवल प्रस्तर में बनी एक स्त्री की प्रतिमा भी वहाँ थी। प्राचीन ईजिप्त में पाई जाने वाली मूर्त्तियों से उसका कद तथा चेहरा एकदम भिन्न शैली का था।

पुस्तक के पृष्ठ २३९ पर उल्लेख है कि विशाल पिरॉमिड में ६० लाख टन वजन की शिलाएँ लगी हुई हैं। आधुनिक युग में एक-एक हजार टन वजन के पत्थर ढोने वाले ६०० रेल इंजन लगेंगे तब इतनी सामग्री पहुँच सकती है। पिरॉमिड केवल नष्ट भी करना हो तो उसके लिए आधुनिक ईजिप्त सरकार की सारी सम्पत्ति भी पूरी नहीं पड़ेगी।

Kolosemo के ग्रन्थ में पृष्ठ २४० पर लिखा है कि "कई शतकों तक आधुनिक यूरोपीय शास्त्रज्ञ एक आदर्श Meridian (रेखांश) यानि 'ख' रेखा का शोध कर रहे थे। प्रथम उन्हें लगा कि Paris की 'ख' रेखा ठीक रहेगी। कुछ समय पश्चात् उन्होंने ग्रीनिच नगर (इंग्लैण्ड) की 'ख' रेखा चुनी। किन्तु अब पता चला है कि विशाल पिरामिड के शिखर पर से जाने वाली 'ख' रेखा आदर्श रहेगी। क्यों? इसलिए कि उस रेखा के नीचे सर्वाधिक भू-प्रदेश आता है। उस रेखा का दूसरा गुण यह है कि Bearing Straits से यदि बस्ती-योग्य भूमि का हिसाब लगाया जाए तो उस रेखा से वैसे भू-प्रदेश के दो सम-भाग बनते हैं।

"उस स्थान से अन्य महत्त्वपूर्ण खगोल ज्योतिषीय हिसाब भी लगाए जा सकते हैं। जैसे उस विशाल पिरॉमिड की ऊँचाई से पृथ्वी से सूर्य के अन्तर का हिसाब लगाया जा सकता है। चेपॉस पिरॉमिड उत्तरी ध्रुव से

उतनी ही दूरी पर है जितना वह पृथ्वी के मध्यबिन्दु से है।

"उस पिरॉमिड के राजकक्ष में शवयात्रा वाले लोगों ने कहाँ से प्रवेश किया होगा इसके सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ी उलझन-सी है। अरबों ने जब उस पिरॉमिड पर हमला किया तो अन्दर उन्हें प्रवेश बन्द करने वाली एक ऐसी शिला दीखी जिसकी मोटाई प्रवेश मार्ग की चौड़ाई से बड़ी थी। तो वह शिला किस प्रकार अन्दर ले गए होंगे।

"नौवीं शताब्दी में जब अरबों ने प्रथम बार उस कक्ष में प्रवेश किया तब उन्हें शव या औजार आदि कुछ नहीं दिखाई दिया। वहाँ केवल एक पत्थर का बक्सा था जो प्रवेश द्वार तथा ऊपर के कक्ष में जाने वाले मार्ग से भी चौड़ा था। इससे निष्कर्ष यह निकलता था कि बक्सा उस स्थान पर रखने के पश्चात् उस कक्ष की दीवारें आदि बनाई गई होंगी। किन्तु यदि पत्थर का विशाल बक्सा पिरॉमिड बनाने से पूर्व उसमें रखा गया तो उसमें "Ka" (यानि प्राण) या आत्मा नहीं रह सकती थी। तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये पिरॉमिड दफन के लिए बने ही नहीं थे। केवल योगायोग से कुछ आगे आने वाली पीढ़ियों ने उनमें शव दफनाना आरम्भ किया।"

पाठक देखें कि पाश्चात्य संशोधकों की इतिहास संशोधन पद्धति कितनी गलत है। सैकड़ों वर्ष तक विशाल साधन-सामग्री तथा विपुल धन जुटाकर ईजिप्त के पिरॉमिडो में कई चक्कर लगाने के पश्चात् वे उन्हें कब्रें समझते रहे। अब कुछ विपरीत लक्षण देखने के पश्चात् वे ऐसी एक अस्पष्ट शंका-सी प्रकट कर रहे हैं कि हो सकता है कि पिरॉमिड किसी अन्य उद्देश्य से बनाए गए हों; किन्तु कुछ पीढ़ियों के पश्चात् उन्हें रिक्त खण्डहर समझकर उसमें शव दफनाने की कुछ घटनाएँ हुई हों।

ऐसी गल्तियों से केवल समय और पैसा तो व्यर्थ जाता ही है बल्कि अनेक पीढ़ियों को गुमराह भी किया जाता है। पिरॉमिड कब्रों के हेतु बनाए गए, यह विचार गलत निकला।

इससे तो हमारी संशोधन पद्धति कितनी सीधी और सरल है और इसमें एक कौड़ी का खर्चा भी नहीं है। हम पूछते हैं कि जिस जीवित ट्यूटेनखॅमेन् का कोई महल नहीं है उसके शव के लिए एक विशाल पिरॉमिड

कैसे निर्माण हो गया ?

अब दूसरा प्रश्न देखिए कि ट्यूटेनखॅमेन के पश्चात् जो ईजिप्त का सम्राट् बना हो उसका अपना महल जब नहीं है तो मृत ट्यटेनखॅमेन के लिए पिरॉमिड जैसा विशाल महल या किला बनाने की उसे क्या आवश्यकता पड़ी ?

ईजिप्त के विशाल पिरॉमिड की बाबत यह कहा जाता है कि सम्राट् चेपॉस ने ईसापूर्व २६५० वर्ष के आसपास उसका निर्माण आरम्भ किया। उसके चार कोने पूरे चारों दिशाओं के मध्यबिन्दु साधे हुए हैं। उसकी ऊँचाई १४८-२० मीटर है। पृथ्वी से सूर्य तक का जो १४८२०८००० किलोमीटर अन्तर है उससे १४८-२० मीटर संख्या से पूरा भाग जाता है। कई पुरातत्त्वविदों का अनुमान है कि पिरॉमिड कब्र के लिए नहीं अपितु खगोलीय तथा फलज्योतिषीय उद्देश्यों से बनाया गया।"

पीटर कोलोमिस के ग्रन्थ में पृष्ठ २४४-४५ पर लिखा है कि Osiris (ईश्वरस्), Isis (ईशीस्) देवी तथा Horus (हरिः उर्फ हरीश) यह ईजिप्त के त्रिमूर्त्ति देवता थे। होरस (हरिः) के सिर पर गरुड़ बताया जाता है। छः हजार वर्ष पूर्व ईजिप्त की राजधानी Heliopolis में एक विशाल सूर्य मन्दिर था।

सूर्य के अनेक संस्कृत नामों में 'हेली' भी एक नाम है। 'पोलिस' 'पुरः' उर्फ 'पुरस्' का अपभ्रंश है। अतः हेलिओ-पोलिस यानि सूर्यपुरस् उर्फ सूर्यपुर यह संस्कृत नाम है। सूर्य के नाम के नगर में एक विशाल सूर्य-मन्दिर होना स्वाभाविक बात है। किन्तु ऊपर लिखे ब्योरे से एक बात स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि ईजिप्त में सूर्य तथा सूर्यमण्डल आदि का गहन अध्ययन करने का एक विशाल केन्द्र बना हुआ था।

चेपॉस पिरॉमिड के चार कोने—उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम—चारों दिशाओं के मध्यबिन्दु साधे हुए हैं, यह जो बात ऊपर कही है वह वैदिक सभ्यता की एक विशेष परिपाटी है। इससे भी सिद्ध होता है कि पिरॉमिड वैदिक परम्परा में बनाए गए हैं।

वेदों से बँधा भवितव्य

विरक्त विद्वानों द्वारा वेदों के ज्ञान कण समय-समय पर सामान्यजन तक पहुँचाए जा सकते हैं। इसी कारण वेद-पठन की परम्परा भी जागृत रखी जा रही है। मानवीय सभ्यता का आरम्भ वेद-पठन से हुआ। अतः निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि यदि वेद-पठन की परम्परा खण्डित होकर समाप्त हो गई तो उसी के साथ-साथ मानव वंश का भी अन्त हो जाएगा। अतः वेद-पठन परम्परा में एक तरह से मानवीय सभ्यता के प्राण गुँथे हुए हैं।

वेदपठन का अधिकार

कई नासमझ व्यक्ति आधुनिककाल में 'स्त्री को, शूद्र को वेद-पठन का अधिकार नहीं है' आदि वचनों को प्रस्तुत कर विवाद खड़ा कर देते हैं। ऐसे आक्षेपों का हम यहाँ निराकरण करना चाहेंगे।

वैसे तो वेदों की पोथी कईयों के घर होती है। कोई भी उसे उठाकर पढ़ ले, किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि देवनागरी लिपि जानने वाला कोई भी व्यक्ति वेद-पठन शैली का अभ्यास न होते हुए या संस्कृत का पण्डित हुए बिना ही केवल वेदों की पोथी पर दृष्टिपात करने से क्या वह पारम्परिक पद्धति से वेद पढ़ पाएगा ? और यदि पढ़ भी पाया तो क्या वह उनसे कुछ अर्थ समझ पाएगा या उनपर प्रवचन कर सकेगा ?

जो वेदपाठी होते हैं वे केवल वेद पढ़कर ही लोगों को सुनाते हैं। उन ऋचाओं पर भाष्य करने का वे भी प्रयास नहीं करते। क्योंकि प्रत्येक धातु या स्वर के विविध विद्यशाखाओं के अनुसार विविध अर्थ हैं। तो अनभिज्ञ पाठक क्या अर्थ बताएगा ? अतः वेद-पठन की शास्त्रीय पद्धति जिसने नहीं सीखी हो ऐसे किसी व्यक्ति को वेद पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा। इतना ही नहीं अपितु वह व्यक्ति यदि दुराचारी, दुर्व्यवहारी हो तो वह या तो वेदों का मजाक उड़ाकर उनके प्रति लोगों में घृणा फैलाएगा या वेदपाठ की नकल कर श्रद्धालु लोगों से पैसे बटोरेगा या वेद-पठन की अन्य कोई अण्ट-सण्ट पद्धति रूढ़ कराकर सही वेदपाठ पद्धति कौन-सी है इसके सम्बन्ध

में श्रद्धालु या भावुक लोगों के मन में संभ्रम निर्माण करेगा। अतः अधिकारी (यानि Qualified) व्यक्ति के बिना कोई वेद न पढ़े, ऐसा सामान्य नियम समाज में रूढ़ है और उसे पालन करने में ही सबकी भलाई है।

अब रही स्त्रियों और शूद्रों की बात। उन्हें वेद नहीं पढ़ने चाहिएं, यह तो एक स्थूल लौकिक मुहावरा-सा है। जैसे कहते हैं स्त्री का विवाह १८ वर्ष की आयु पूरी होने के पूर्व न हो या १६ वर्ष की आयु पूर्ण न हो तो कॉलेज में छात्र को प्रवेश न दिया जाए। ऐसे स्थूल नियम अनुभव पर आधारित होते हैं न कि वैमनस्य और शत्रुता पर।

मासिक धर्म, प्रसूति, बालसंगोपन, घर का काम आदि में मग्न स्त्री को अनेक घण्टे रोज वेद-पाठ करने का समय ही कहाँ मिलेगा? उसी प्रकार शूद्र लोग जो मजदूरी का काम करते थे उन्हें वेदों की पण्डिताई करने का समय या ज्ञान नहीं हो सकता था, यह जानकर ही मोटे तौर पर स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें, ऐसा कहा जाता था। इसमें किसी वर्ग का अवमान करने का उद्देश्य जानकर क्रोध प्रकट करना सर्वथा अयोग्य है। संस्कृत के पण्डित भी वेदपाठ के आदी नहीं होते और न ही वेदों से कुछ उपयुक्त अर्थ निकाल पाते हैं तो औरों की तो बात ही क्या?

वेद-पठन की जिम्मेदारी

वेदपठन करना कोई बच्चों का खेल नहीं था और न ही उसमें कोई सम्पत्ति, अधिकार या आराम की प्राप्ति थी। वेदपाठी तो बेचारे सारे प्रलोभनों से दूर जंगलों में स्वावलम्बी दरिद्री और सत्शील जीवन बिताते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रातः से शाम तक वेद-पठन परम्परा कायम रखना ही अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। इस लगन, इस समर्पण, इस चारित्र्य का संस्कृत की ज्ञान आदि की पात्रता जिसमें हो, वह अपने आप वेदपाठी ब्राह्मण गिना जाता था। अन्य लोग निजी कर्मोंऔर गुणों के अनुसार, अन्य सामाजिक वर्गों में अन्तर्भूत होते थे।

आजकल कई लोग वेद-पठन के अधिकार को ऐसा मान बैठे हैं जैसे उसमें कोई बहुत बड़ा लाभ हो जिससे सारी जनता को वंचित रखा जाता था। परिस्थिति इससे पूर्णतया विपरीत थी। वेदपाठी घराने तो कठोर

नियमों से बँधे कष्टपूर्ण, दरिद्री जीवन बिताकर केवल एक दैवी, सामाजिक कर्त्तव्य-पूर्ति की भावना से वेद-पठन कार्य को जीवन समर्पण कर देते थे। अत: वेदपाठी घरानों के प्रति आदर और कृतज्ञता व्यक्त करने की बजाय उनके प्रति असूया प्रकट कर, क्रोध भरे फूत्कार करते रहना बड़ा पाप और कृतघ्नता है। वेद-पठन का उन्होंने समाज से कोई ठेका नहीं ले रखा था। वह तो त्यागभरा और कड़े नियमों से बँधा सेवाव्रत था। उसमें त्याग-ही-त्याग था और व्यक्तिगत प्रलोभन या लालसा शून्य थी।

वेदों का ज्ञान घर-घर पहुँचाने की व्यवस्था

वेदों का ज्ञान या वेद-पठन का अधिकार निजी हाथों में रखकर पण्डितों ने समाज को लूटा या समाज को वंचित किया, ऐसा प्रचार किया जाता है, यह आभास कई लोग निर्माण करते रहते हैं। इसका खण्डन हमने ऊपर प्रस्तुत किया है। वेदों का ज्ञान गुप्त रखने की तो बात ही छोड़ो वेदों का ज्ञान अनपढ़-से-अनपढ़ या व्यस्त-से-व्यस्त व्यक्ति को घर बैठे मिलता रहे, इसकी भरपूर व्यवस्था वैदिक-प्रणाली में की गई है। वेद हाथों में होते हुए भी वेदों से लाभान्वित होना अशक्यप्राय: है, यह जानकर कथा, कीर्तन, पुराण, प्रवचन, रामायण-महाभारत पाठ तथा सन्त-महात्माओं के काव्योपदेश आदि द्वारा हर गाँव के हर झोंपड़े तक जीवन-भर नि:शुल्क पहुँचाने की व्यवस्था वैदिक समाजव्यवस्था में होना यह सेवाभाव का, दूरदर्शिता का तथा समाज के प्रति आस्था का लक्षण है।

संस्कृत कहीं पूर्ण ब्रह्माण्ड की भाषा तो नहीं है ?

आजकल पाश्चात्य शास्त्रज्ञ प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्त मानने लगे हैं कि पृथ्वी जैसी जीवसृष्टि अन्य कई सूर्यमण्डलों में हो सकती है। वहाँ का जीवन या मानवों से भेंट होने पर पारस्परिक प्रतिक्रिया दर्शाने वाले काल्पनिक नाटक पाश्चात्यों के दूरदर्शन माध्यमों से कई बार दिखलाए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य शास्त्रज्ञ निजी रेडियो सन्देश दूसरे ग्रहों पर भेजकर वहाँ के मानवसदृश ज्ञानी जीवों से कोई ज्ञान पाने की आतुरता

से प्रतीक्षा करते रहते हैं। यदि वे सन्देश इंजन की सीटी की तरह केवल निरर्थक ध्वनि ही हों तो कोई बात नहीं, किन्तु यदि वे सन्देश आंग्ल या दूसरी किसी यूरोपीय भाषा में हों तो प्रश्न यह उठता है कि अन्य ग्रहों के लोग क्या आंग्ल आदि पाश्चात्य भाषाएँ जानते होंगे ? यह तो असम्भव-सा लगता है कि यूरोप की भाषाएँ वे जानते हों। क्योंकि यह भाषाएँ एक या दो सहस्र वर्षों से प्राचीन नहीं हैं।

यदि पृथ्वी पर ज्ञात कोई भाषा अन्य ग्रहों के लोग जानते हों तो वह संस्कृत के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकती। क्योंकि संस्कृत देववाणी है, संस्कृत वेदों की भाषा है, सृष्टि की उत्पत्ति के समय से संस्कृत भाषा अस्तित्व में है और प्राचीनतम वाङ्मय केवल संस्कृत में ही है। अतः अन्य ग्रहों पर मानव सदृश या मानव से भी श्रेष्ठ दर्जे के कोई ज्ञानी जीव हों तो उनके पास भी वेद वाङ्मय होगा और वह संस्कृत में ही होना चाहिए। क्योंकि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक की सारे ब्रह्माण्डों के लिए एक ही भाषा हो सकती है। अतः भारतीयों का न केवल भारत की वैदिक सभ्यता बचाए रखने के लिए वरन् सारी मानवजाति को पुनः एकता के वैदिक सूत्र में पिरोने के लिए तथा अन्य ग्रहों से सम्पर्क साधने के हेतु संस्कृत भाषा का संगोपन तथा संवर्धन करना; एक पवित्र कर्त्तव्य बन जाता है। विविध ग्रहों से सम्पर्क साधने वाले नारद आदि ब्रह्माण्ड यात्री सर्वत्र संस्कृत में ही बोलते हुए दिखाए जाते हैं। यदि कोई कहे कि नारद आदि ब्रह्माण्ड यात्री प्रान्तिक नाटकों में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् आदि भाषाओं में भी बोलते बतलाए जाते हैं तो उसका उत्तर यह है कि केवल प्रान्तिक श्रोतागणों की सुविधा हेतु वैसा किया जाता है।

सिंहावलोकन

इस अध्याय से हम वैदिक विश्वराष्ट्र के इतिहास का तीसरा खण्ड समाप्त कर रहे हैं। आशा है कि इन तीन खण्डों में पाठकों को यह पता लग गया होगा कि वर्तमान पाठ्य-पुस्तकें किस प्रकार खण्डित, सीमित तथा विकृत इतिहास प्रस्तुत करती हैं और वास्तविक इतिहास क्या है ? तब भी हम उस विशाल कार्य की केवल रूपरेखा ही दे पाए हैं। हमारे द्वारा इस ग्रन्थ में दर्शाए मार्ग से यदि विश्व इतिहास दुबारा लिखना हो तो उसके लिए एक बड़ी संस्था स्थापित करनी होगी और उसके केन्द्र सारे विश्व के प्रसिद्ध नगरों में खोलने होंगे ? उसी प्रकार उस विश्व इतिहास का अन्वेषण, लेखन, पाठन आदि करने के लिए एक जागतिक इतिहास विश्वविद्यालय स्थापित करना होगा। उसी का आवाहन हमने प्रथम खण्ड के आरम्भ में प्रकाशित किया है।

इस ग्रन्थ के चौथे खण्ड में हम इतिहास की चर्चा न करते हुए केवल इतिहास लेखन, संशोधन तथा पाठन के दोष बताएँगे। क्योंकि सारे विश्व का इतिहास यदि खण्डित, दूषित तथा विकृत होने पर भी आज तक न तो किसी ने उसकी कोई दखल ली, न चिन्ता की और न ही कोई उपाय किया ? तो ऐसा क्यों है ?

यह क्यों हुआ ? कारण यह है कि इतिहास की व्याख्या, इतिहास का महत्व, इतिहास संशोधन की पद्धति, इसकी सम्यक् कल्पना विद्वानों को भी नहीं रही। आम धारणा यह है कि राजाओं की वंशावली तथा लड़ाइयों का वर्णन ही इतिहास है। वह धारणा भ्रमपूर्ण है। अतः इस ग्रन्थ के

अन्तिम खण्ड में हम इतिहास की व्याख्या, इतिहास के उद्देश्य, इतिहास की आवश्यकता तथा इतिहास की सही अन्वेषण पद्धति, इनका विश्लेषण करते हुए पाठकों को यह बतला देंगे कि आज तक अधिकांश विद्वानों ने इतिहास लेखन, अन्वेषण आदि के मूलभूत तत्व तथा सिद्धान्तों की अपार लापरवाही की, उन्हें ठुकराकर वे मनमाने ढंग से इतिहास लिखते रहे—इसी कारण इतिहास की वर्तमान दुर्दशा हुई है। उसे सुधारने के मार्ग तथा उपाय बतलाकर हम चार खण्डों के इस ग्रन्थ को समाप्त करेंगे।

पिछले पृष्ठों में हमने सर्वप्रथम वर्तमान आम इतिहासग्रन्थों का एक बड़ा दोष यह बतलाया कि वे लाखों-करोड़ों वर्षों का प्राचीन इतिहास मिटाकर यकायक चार सहस्र वर्ष पूर्व के सीरिया, असीरिया आदि को प्राचीनतम राष्ट्र कहकर वहीं से इतिहास की कथा आरम्भ कर देते हैं। वे जिन चार सहस्र वर्षों का इतिहास प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं वह भी बड़ा ही भ्रमपूर्ण तथा दोषपूर्ण है। उसमें सर्वप्रथम यह भी नहीं बताया जाता कि प्राचीनतम कहे जाने वाले उन राष्ट्रों के नाम सीरिया, असीरिया, बेबीलोनिया, मेसोपोटेमिया आदि कैसे पड़े ?

विविध जंगली जमातों ने पशु-पक्षियों की आवाजों की नकल करते-करते भाषाएँ बना लीं, यहाँ से वर्तमान भाषा सिद्धान्त आरम्भ होकर आगे सेमेटिक भाषाएँ, इण्डो-यूरोपियन भाषाएँ आदि मनमाने अण्ट-सण्ट निर्मूल विभाग बनाए जाते हैं। वे विभाग क्यों हुए, कैसे हुए, कब हुए ? आदि का विवरण टाल दिया जाता है।

हमारे विचार में उनके ऐसा करने के दो कारण हैं—एक तो यह कि उनको सृष्टि के निर्माण आदि के प्राचीन इतिहास का पूरा ज्ञान नहीं है। दूसरे यह कि यदि उन्हें यह ज्ञान है भी तो भी वे इसे इसलिए स्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करने से उनका अपनी जाति का, अपने बड़प्पन का, दूसरों को अपने से अल्प ज्ञानी, नीचा समझने का भ्रम समाप्त हो जाएगा और वह उन लोगों से कहीं अधिक बौने हो जाएंगे जिन्हें वे अब तक बौने ही समझते आ रहे हैं।

सृष्टि उत्पत्ति, जीवोत्पत्ति तथा भाषा निर्माण आदि के सम्बन्ध में पारम्परिक इतिहास क्या है ? वह कथन करने की बजाय वर्तमान इतिहास-

कारों ने एक अग्निगोल के विस्फोट मात्र से भौतिक विश्व का निर्माण हुआ यह चन्द पाश्चात्य शास्त्रज्ञों का अनुमान तथा सूक्ष्म जन्तुओं में धीरे-धीरे परिवर्तन होते-होते बड़े-बड़े प्राणी बनते गए यह डार्विन का अनुमान और जंगली लोगों के बड़बड़ाने से भाषा-निर्माण आदि पाश्चात्य भाषाविदों के अनुमान जोड़-जोड़ कर प्रचलित इतिहासग्रन्थों ने जैसे-तैसे इतिहास का टेढ़ा-मेढ़ा ढांचा खड़ा कर लिया है। लेकिन ऐसे अनुमानों का इतिहास में कोई स्थान नहीं होता। पूर्वजों से पाई लिखी या मौखिक जानकारी को इतिहास कहा जाता है। वैसा लिखा या सुना ब्योरा न हो तो उसका रिक्त स्थान शास्त्रज्ञों के आधे-अधूरे, कच्चे-पक्के, अण्ट-सण्ट शास्त्रीय अनुमानों को सम्मिलित कराके भरा नहीं जा सकता।

विश्व निर्मिति का ऐतिहासिक ब्योरा पाश्चात्य गोरे ईसाई लोगों के पास नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि वह और किसी के पास भी प्राप्य नहीं है। वैदिक संस्कृत ग्रन्थों में सृष्टि उत्पत्ति के दिन से आधुनिक काल तक का इतिहास उपलब्ध होते हुए भी हिन्दू लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे या इतिहास का महत्व नहीं जानते थे आदि निराधार निन्दा आधुनिक विद्वान करते रहते हैं।

इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वज्जगत् में अकाट्य और बेजोड़ समझा जाने वाला डार्विन का जीवोत्क्रान्ति सिद्धान्त अब दिन-प्रतिदिन अमान्य होता जा रहा है। अधिकाधिक पाश्चात्य विद्वान ही डार्विन के जीवोत्क्रान्ति सिद्धान्त को असंगत तथा निराधार बतलाने लगे हैं।

जनवरी १९८२ में लन्दन के Royal Institute के तत्वावधान में भरी सभा को सम्बोधित करते हुए Cambridege University के astronomy तथा Expermiental Philosophy विभाग के ६६ वर्षीय प्राध्यापक Fred Hoyle ने कहा था कि विविध जीवों के पेचीले रासायनिक ढाँचे अपने आप बनते चले गए यह (डार्विन वाली) बात सिद्धान्त: जँचती नहीं। जीवों की पेचीली यन्त्रणा किसी तरकीबी सोच-विचार द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है, अपने आप नहीं।

Gordon Rattray Taylor द्वारा लिखित The Great Evolution Mystery ग्रन्थ में भी डार्विन के उत्क्रान्तिवाद की निराधारता बतलाई

गई है। उसने यह कहा है कि डार्विन के जीवोत्क्रान्ति सिद्धान्त का खण्डन विविध शाखाओं के शास्त्रज्ञ कर रहे हैं।

डार्विन जैसों के सिद्धान्त जब प्रतिपादित किए गए उस समय अंग्रेजों का बड़ा बोलबाला था। महारानी विक्टोरिया के अधिकार में एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो गया था। पाश्चात्य लोग भी शास्त्र आदि कोई विशेष नहीं जानते थे। उनके गुलाम बने भारत जैसे विशाल देशों में अधिकतर लोग अनपढ़ थे। जो मुट्ठीभर पढ़े-लिखे थे उन पर ब्रिटिश अधिसत्ता का इतना गहरा प्रभाव था कि गोरे लोगों की कलम से जो भी लिखा जाए उसे वे ब्रह्मवाक्य मानकर चलते थे, बाकियों की कोई सुनवाई नहीं थी। ऐसी अवस्था में बगैर सोचे समझे ही डार्विन के सिद्धान्त को यकायक आकाशवाणी का दर्जा प्राप्त हो गया।

किन्तु अब लोग हिम्मती, पढ़े-लिखे और समझदार हो गए हैं। गोरे लोगों के सिद्धान्तों पर विचार कर उन पर हम मतप्रदर्शन कर सकते हैं; इतना आत्मविश्वास लोगों में आ गया है।

डार्विन के जीवोत्क्रान्ति सिद्धान्त की ही बात लीजिए। एक आक्षेप यह है कि मानव यदि बन्दर से उत्क्रान्त होता तो पशु की तरह मानव का बच्चा भी जन्म लेते ही थोड़े समय में चलने-फिरने लग जाता। किन्तु मानवीय शिशु को तो कई वर्ष तक पालपोसकर आत्मनिर्भर करना पड़ता है।

विश्व की निर्मिति का वैदिक सिद्धान्त

वैदिक पंचांगों तथा ब्रह्माण्ड पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थों में विश्व का निर्माण शेषशायी विष्णु ने कैसे किया? इसका पूरा ब्यौरा दिया हुआ है। पहले ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्माजी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सब प्रकार के मानवों की पहली पीढ़ी का निर्माण कर मानवों को इस विश्व की यन्त्रणा का उच्चतम ज्ञानभण्डार 'वेद' उपलब्ध करा दिया और तबसे कृतयुग आरम्भ हुआ। हो सकता है कि इस ग्रन्थ के कुछ वाचक नास्तिक हों जो किसी कृपालु, दयालु, प्रार्थना से वश होने वाले भगवान में विश्वास न रखते हों, तो उन्हें हम कहेंगे कि वे भले ही भगवान का अस्तित्व न

मानें, वे यूं समझें कि यह अपार-असीम विश्व यन्त्रणा अपने आप तैयार होकर प्रकट हो गई और उसमें अन्य असंख्य जीवों के साथ-साथ मानवों की पीढ़ी भी निर्माण हुई।

वैदिक सभ्यता तथा वेदों की भाषा संस्कृत की विरासत

मानव निर्मिति के साथ-साथ इस विश्व की पेचीली तथा अपार यन्त्रणा में मानव दिशाहीन होकर कहीं खो न जाए इस हेतु मानव के मार्गदर्शन के लिए वेद दिए गए। वे देववाणी संस्कृत में होने के कारण संस्कृत मानव की एकमेव प्रथम देवदत्त भाषा हुई।

इस प्रकार कृतयुग से आरम्भ हुए मानवीय इतिहास का त्रेता तथा द्वापर युगों का ब्यौरा विविध पुराणों में तथा महाभारत में दिया हुआ है। उसके अनुसार कृतयुग का मानव सर्व प्रकार के दैवी गुणों से मण्डित था। धीरे-धीरे उसका सर्वांगीण अधःपतन होते-होते कलियुग में भ्रष्टाचार तथा विनाश की मात्रा बढ़ती रहेगी, यह भविष्यवाणी है। या यूं कहें कि इस विश्व यन्त्रणा की योजना करते समय उसका पूरा अगला हाल विश्वनिर्माता को ज्ञात होने से एक तज्ञ यन्त्रविशारद की तरह परमात्मा ने आरम्भ में ही यह विश्वयन्त्रणा कितने युगों तक चलेगी और कैसे चलेगी, इसका विस्तृत विवरण (तफसील) दे रखा है।

इसकी सत्यता की पुष्टि दो प्रमाणों से होती है। एक तो यह कि कोई भी वस्तु नई हो तो देखने में और कार्य-प्रणाली में अच्छी होती है। वह जितनी जीर्ण होती जाएगी उतने ही उसमें दोष उत्पन्न होते हैं। तो कृत से कलियुग के अन्त तक मानव की दुर्गति होना स्वाभाविक ही है।

वैदिक परम्परा के कथनों की पुष्टि करने वाला दूसरा प्रमाण यह है कि कलियुग में भ्रष्टाचार बढ़ेगा, पापवृत्ति बढ़ती रहेगी, कलह बढ़ती रहेगी, संगठन बनाकर संघर्ष करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी, मानव का कद घटता रहेगा आदि। इन भविष्यवाणियों की सत्यता हम देख ही रहे हैं। ऐसी देववाणी, भविष्यवाणी जिन प्राचीन संस्कृत वेदोपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में प्रस्तुत है उनका गहरा अध्ययन कर उनसे मार्ग-दर्शन पाना प्रत्येक मनुष्यमात्र का पवित्र कर्त्तव्य होना चाहिए।

पाश्चात्यों के अनुसार विश्व की उत्पत्ति विस्फोट, जीवोत्पत्ति आदि से हुई तथा विविध वनों में जहाँ-तहाँ, जैसे-तैसे, छोटी-मोटी संख्या में बन्दरों के मानव बनते-बनते मानवीय इतिहास आरम्भ हुआ, इससे तो वैदिक परम्परा का विवरण अधिक तर्कसंगत है क्योंकि उसके अनुसार इस विश्व की निर्मिति योजनाबद्ध रीति से बड़ा सोच-विचार करके, व्यवस्थित पद्धति से की गई। इतना ही नहीं कलियुग के अन्त तक इसके क्या-क्या स्थित्यन्तर होंगे उसका भी पूरा ब्यौरा आरम्भ से लिख रखा है। आरम्भ से अन्त तक विश्व के इतिहास की रूपरेखा विश्वनिर्माता परमात्मा ही दे सकता है। वह इतिहास केवल वैदिक संस्कृति में ही प्राप्य है। इसी से वैदिक संस्कृति का दैवी उद्गम सिद्ध होता है।

वैदिक एकता खण्डित कैसे हुई ?

कृतयुग से महाभारतीय युद्ध के अन्त तक यानि कलियुग के आरम्भ तक सारा मानव समाज वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा से बँधा हुआ था। महाभारतीय युद्ध के सर्वनाश के पश्चात् मानवीय एकता के वे दोनों सूत्र टूट गए। फिर धीरे-धीरे कई राष्ट्र, कई भाषाएँ, कई धर्म—इनमें मानव समाज बँटकर बिखर गया। अतः मानव समाज में पुनः एकता प्रस्थापित करने का एकमेव मार्ग है वैदिक समाज की पुनर्स्थापना और शिक्षा-प्रणाली संस्कृत गुरुकुल का पुनरुज्जीवन।

इस ग्रन्थ की विशेषताएँ

इस प्रकार सृष्टि निर्माण की घटना से लेकर आज तक के ऐतिहासिक मोड़ और परिवर्तन क्यों हुए और कैसे-कैसे हुए इसकी अखण्ड ऐतिहासिक रूपरेखा देने वाला आधुनिक साहित्य का यह शायद पहला ही ग्रन्थ होगा।

इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिक विवेचन के साथ-साथ इतिहास के क्षेत्र की कई समस्याओं का पता लगाकर उनका तर्कसंगत हल भी प्रस्तुत किया गया है। इससे पाठक देख सकेंगे कि वर्तमान इतिहास लेखन, पाठन, संशोधन की पद्धति कितनी दोषपूर्ण है। उसमें केवल विविध राजाओं के शासनकाल का ऊपरी कथासूत्र कह डालना ही इतिहास समझा जाता है। इस पद्धति में इतिहास की विविध समस्याएँ और उनका

समाधान ढूंढ़ने की क्षमता छात्र में नहीं आती। वर्तमान पद्धति को कथा-पद्धति या सन्देश-पद्धति कहा जा सकता है क्योंकि उसमें अध्यापक द्वारा बताया इतिहास का कथा-सूत्र विद्यार्थी परीक्षा में ज्यों-का-त्यों लिख डालते हैं। उससे नई दृष्टि से स्वतन्त्र विचार करने की क्षमता इतिहास पढ़ने वालों में नहीं आती।

इस ग्रन्थ की तीसरी विशेषता यह है कि जैसे एक विशाल हिमालय से निकले अनेक झरने और नदियाँ विविध दिशाओं में बहती चली जाती हैं, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में यह दर्शाया गया है कि भिन्न-भिन्न धर्मपन्थ, विविध राजकुल आदि सारे एक ही वैदिक स्रोत से निकलकर कैसे-कैसे दूर जाते रहे हैं।

इस ग्रन्थ की चौथी विशेषता यह है कि इसमें वर्तमान इतिहास संशोधन पद्धति के दोष बतलाकर सही संशोधन पद्धति का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

वेदों के अर्थ की समस्या

कई विद्वान् वेदों के कई अर्थ लगाते रहे हैं, फिर भी उनमें से कोई भी अर्थ सर्वमान्य क्यों नहीं होता? इस समस्या का हमने इस ग्रन्थ में यह उत्तर दिया है कि इस अपार विश्व की यन्त्रणा का समग्र ज्ञान वेदों के सीमित शब्दों में ग्रंथित होने के कारण वेदों के एक-एक शब्द, अक्षर या धातु में कई अर्थ गुँथे हुए हैं। अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, यन्त्रशास्त्र, अस्त्र-विद्या, जीवशास्त्र, रसायनशास्त्र, स्थापत्यशास्त्र आदि किसी भी विद्या या कला के उच्चतम सूत्रों का सांकेतिक संक्षेप जिस ग्रन्थ में घुला-मिलाकर प्रस्तुत किया गया हो, ऐसा ग्रन्थ पढ़ने पर यदि सारे ही विद्वान् स्तम्भित या विस्मित होते हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

श्रीमद्भागवतम् में भगवान कृष्ण ने उद्धव के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि सागर जैसी वेदों की गहराई तथा विस्तार सामान्य व्यक्ति की समझ के बाहर रहेगा। इसका कारण भी शायद आधुनिक साहित्य में प्रथम बार ही इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।

वेदों से कौन ज्ञान प्राप्त कर सकता है ?

प्रश्न यह उठता है कि क्या वेदों का पठन निरर्थक है ? इसका उत्तर यह है कि गहरे कुएँ से पानी वही निकाल सकता है जिसके पास रस्सी हो, बाल्टी हो और भरी बाल्टी ऊपर खींचने की ताकत हो। इसी प्रकार वेदों से जो कोई ज्ञान या मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहे; उसमें निम्न तीन गुण अवश्य होने चाहिएँ—

प्रथम, वेद यह उच्चतम ज्ञान का भण्डार होने के कारण उनसे ज्ञान-प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति स्वयं किसी एक या अधिक विद्याशाखा में उच्च ज्ञान प्राप्त किया हुआ हो—जैसे गणित या नैतिकशास्त्र या रसायनशास्त्र में एम० एस्सी० स्तर का उसका अध्ययन हुआ हो।

दूसरा गुण यह कि उस व्यक्ति का मन विरक्त, संन्यस्त होना चाहिए। सांसारिक जीवन की उलझनों में, चिन्ताओं में या दुःखों में फँसा व्यक्ति चाहे कितना ही विद्वान् क्यों न हो, उसे उस अवस्था में वेदों से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होगा।

तीसरा गुण यह कि वेदों की विशिष्ट ऋचाओं के चिन्तन-मनन-विश्लेषण में उस व्यक्ति की समाधि लगनी चाहिए या वह व्यक्ति तुरीय अवस्था में पहुँच जाना चाहिए। इतना होने पर भी उस व्यक्ति को केवल उसी विद्याशाखा के कुछ ज्ञानकण प्राप्त होंगे, जिसमें उसने उच्चस्तर की प्रवीणता प्राप्त की हो। वेदों में ग्रथित अन्य विद्याशाखाओं का ज्ञान उसे भी अज्ञात रह जाएगा क्योंकि उसे स्वयं उन शाखाओं का प्राथमिक ज्ञान भी नहीं है।

ऊपर कहे विवरण के हम दो प्रत्यक्ष उदाहरण पाठकों को प्रस्तुत कर सकते हैं।

प्रथम, जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ (१८८४-१९६०) गणित के विद्वान् थे। वे विरक्त भी थे और वेदों के चिन्तन मनन में उनकी समाधिस्थ अवस्था भी हो जाया करती थी। अतः वे Vedic Mathematics नाम का अप्रतिम ग्रन्थ लिख सके जो पाश्चात्य देशों में भी गणितीय शिक्षा में प्रयुक्त होता है।

दूसरा उदाहरण है स्वामी दयानन्द सरस्वती का। उनका वेदों का भाष्य कई बातों में दूसरे भाष्यों को मात कर गया। उनके पश्चात आज तक कोई विद्वान वैसा भाष्य नहीं कर सका।

ईश्वरी माया

ईश्वरी माया या लीला का एक विशिष्ट रहस्यपूर्ण अर्थ यह है कि इस अपार विश्व में जहाँ असंख्य जीवों की शारीरिक, मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया सतत चलती रहती है वहाँ ईश्वरीय गणकयन्त्र से प्रत्येक जीव के पापपुण्य का हिसाब अपने आप होता रहता है और उसके अनुसार अच्छा-बुरा फल मिलता रहता है। वह हिसाब मानव की समझ के बाहर होने से उसे ईश्वर की माया या लीला कहा जाता है। तथापि ऐसी अवस्था में मानवमात्र के मार्गदर्शन के लिए महर्षि व्यास द्वारा एक सादा एवं सरल नियम इस प्रकार कहा गया है—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

सभी १८ पुराणों का भावार्थ व्यास जी के दो वचनों में समाविष्ट है कि दूसरों पर उपकार करने से पुण्य प्राप्त होता है और पीड़ा देने से पाप पाया जाता है।

पुराण, गत युगों का इतिहास है

कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक के प्रदीर्घ काल का इतिहास प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को पुराण कहते हैं। उन्हें उपन्यास की तरह कल्पित कथाएँ मानने की कुछ लोगों में प्रवृत्ति है। किन्तु हमारे इस ग्रन्थ के अध्ययन से पाठक यह जान गए होंगे कि पुराणों के वर्णन के अनुसार वास्तव में वैदिक विश्व साम्राज्य के कारण ही राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि की प्रथा थी। पुराणों की कुछ बातें यदि अटपटी-सी लगती हों तो इस कारण कि गत युगों की परिस्थिति की हम कल्पना नहीं कर पाते। उस समय का रहन-सहन, शस्त्रास्त्र, शासन-व्यवस्था, लोगों के आदर्श या आकांक्षाएँ, अड़चनें, समस्याएँ आदि सब अज्ञात होने से रामायण, महाभारत तथा

पुराणों में वर्णित परिस्थिति अवास्तविक लगना स्वाभाविक है।

पुराणों की बातों को छोड़ यदि केवल गत चार-सौ वर्षों का ही इतिहास हम देखें तो उस समय की बातें भी बड़ी अपरिचित और अवास्तविक-सी लगती हैं।

विश्व भर के वैदिक धर्मपीठ

विश्व वैदिक साम्राज्य में समाज के मार्गदर्शन तथा समाज-व्यवस्था के संरक्षण हेतु स्थान-स्थान पर शंकराचार्यों के धर्मपीठ बने हुए थे। इनके स्थान वही हैं जो प्राचीन ईसाई या इस्लामी धर्मपीठ माने जाते हैं। जैसे काबा या पोप महाशय का रोमनगर का वैटिकन या इंग्लैण्ड के कैंटरबरी नगर का आर्चबिशप का धर्मपीठ। यह सारे वैदिक धर्मपीठ थे। दमस्कस, बगदाद आदि में जो वैदिक धर्मपीठ थे वे स्थानीय जनता के इस्लामी बनते ही खलीफा के इस्लामी धर्मपीठ कहलाने लगे।

ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व का इतिहास

इस ग्रन्थ में हमने यह भी बतलाया है कि अधिकांश देश ढाई हजार वर्ष का ही इतिहास जानते हैं। ईजिप्त जैसे कुछ देश चार-पाँच हजार वर्ष का इतिहास कहते हैं। यह क्यों? वह पर्दा-सा क्या है? उसका उत्तर हमने इस ग्रन्थ में यह दिया है कि सारे देश या सारी जमातें महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक सभ्यता से फूट निकलीं तब से निजी इतिहास प्रारम्भ करती हैं।

जबकि वास्तविकता यह है कि इस सृष्टि का निर्माण हुए लगभग दो अरब वर्ष हो चुके हैं। मानव की सृष्टि का इतिहास भी हजारों वर्ष पुराना है। यदि पश्चिमी इतिहासकारों की बात मान ली जाए तब महाभारत ईसा पूर्व २५०० वर्ष में हुआ अर्थात् आज से ४५०० वर्ष पूर्व। राम-रावण युद्ध उससे भी २५०० वर्ष पूर्व हुआ अर्थात् आज से ७००० वर्ष पूर्व। रामायण सभ्यता काल तक पहुँचते-पहुँचते भी मानव ने कुछ हजार वर्षों का समय लिया होगा। उन्हीं की बात को स्वीकार कर आज की मानव सभ्यता १०,००० वर्ष पुरानी बनती है। और जब ईसाइयत केवल २००० वर्ष की

है तो उससे पूर्व का ८००० हजार वर्ष का इतिहास कहाँ खो गया।

इसके विपरीत वेद-पुराण तथा अन्य शास्त्र मानव का इतिहास इससे भी हजारों वर्ष पुराना मानते हैं। अमेरिका की प्राचीन मय सभ्यता विज्ञान के क्षेत्र में इतनी उन्नत थी कि पृथ्वी के चारों ओर घूम रहे ग्रहों से उसका सम्पर्क था। जब उन ग्रहों के निवासी पाताल लोक (अमेरिका) में आते-जाते थे, जिसके प्रमाण अमेरिका में अनेक स्थानों पर आज भी उपलब्ध हैं, तो क्या यह सम्भव नहीं कि मय सभ्यता के निवासी उन ग्रहों की यात्रा न करते हों।

कुछ नई धारणाएँ

इस ग्रन्थ में हमने सर्वांगीण प्रमाणों से यह दर्शा दिया है कि ईशस् कृष्ण का ही अपभ्रंश जीशस क्रुस्त (उर्फ क्राइस्ट) होने के कारण ईसाई धर्म पूर्णतया निराधार एवं कपोलकल्पित है। उसी प्रकार इस्लाम भी कोई धर्म नहीं है। यह देश-विदेश में आतंक फैलाकर सारी सम्पत्ति, साम्राज्य तथा सत्ता हस्तगत करने का वह एक अरबी प्रयास था।

हिन्दुत्व की भिन्नता

वर्तमान युग में भारत में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, सिख आदि नाम लेकर यह आभास निर्माण किया जाता है कि जैसे वे सारे धर्म किसी गाड़ी के पहिए जैसे समान आकार के हैं, अतः बराबर हैं और उनमें से कोई-सा भी एक चुना जा सकता है। यह धारणा सरासर गलत है। ईसाई और मुसलमान दोनों धर्म नहीं हैं। वे राजनयिक पक्ष या गुट हैं जिनमें एक ही नेता को सर्वाधिकारी मानकर उसी नेता के नाम से प्रस्तुत पुस्तक को सर्वज्ञान का भण्डार माना गया है।

हिन्दुत्व उर्फ वैदिक धर्म उनसे पूर्णतया भिन्न है। हिन्दुत्व में कोई ग्रन्थ, कोई नेता या कोई कर्मकांड किसी पर लादा नहीं गया है। आस्तिक से नास्तिक तक किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक विचारधारा पर यहाँ कोई रोक-टोक नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण मानसिक तथा वैचारिक स्वतन्त्रता दी गई है। किन्तु आचरण पर अंकुश है। मनमाना आचरण कर

दूसरे पर दबाव या आक्रमण करना या समाज में अयोग्य आदर्श निर्माण करना हिन्दुत्व में विहित नहीं है। अतः हिन्दुत्व एक आचारसंहिता है। इसमें धार्मिक कर्मकाण्ड का कोई महत्व नहीं है। कर्त्तव्यपालन, सेवाभाव त्याग और परोपकार यही वैदिक उर्फ हिन्दू व्यवहार की प्रमुख बातें हैं। इस्लाम या ईसाई धर्मों में इससे पूर्णतया विपरीत और उल्टा नियम यह है कि जीवन में चाहे कुछ करो जीशस और बायबल अथवा मोहम्मद और कुराण इनसे बँधे रहो और इन्हें सर्वश्रेष्ठ कहते रहो।

सिख कोई धर्म नहीं है। वह वैदिक धर्म के रक्षण का एक सैनिकी क्षात्र पन्थ है। सिख उर्फ शिष्य पन्थ का धर्म तो हिन्दू उर्फ वैदिक ही है। अतः अन्य धर्मियों को सीधा सिख बनाना गलत है। किसी को भी प्रथम वैदिक (हिन्दू) धर्म की दीक्षा या कल्पना देकर पश्चात् पूछना होगा कि क्या वह शिवाजी, राणाप्रताप या गुरुगोविन्द सिंह जैसी क्षात्रवृत्ति द्वारा समाज की सेवा करना चाहेगा। यदि इस मार्ग को वह चुने तभी वह सिख कहला सकता है।

एकता का मार्ग

सारी मानव जाति को पुनः वैदिक धर्म की दीक्षा देकर एक किया जा सकता है—यह मार्ग इस ग्रन्थ में दर्शाया गया है। सर्वश्रेष्ठ नेता या सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का कोई दबाव हिन्दुत्व में किसी पर नहीं होता। अतः सेवाभाव, कर्त्तव्यपालन, त्याग, समानता, न्याय, शान्ति तथा सुख का मार्ग केवल वैदिक प्रणाली में ही अन्तर्भूत है; यह इस ग्रन्थ में दर्शाया गया है।

पाश्चात्यों में जागृति

पाश्चात्य लोगों में भी अब कहीं-कहीं उनकी प्राचीन वैदिक विरासत की जानकारी प्रकट हो रही है। उदाहरणार्थ १६१ Queens Gate, South Nensington, London (England) में कुछ विचारी अंग्रेज लोगों ने एक शिक्षामण्डल स्थापित कर उसके द्वारा दो कन्या विद्यालय तथा दो कुमार विद्यालय चलाए हैं जहाँ साढ़े चार वर्ष के बालकों को प्रवेश दिया जाता है और तभी से उन्हें अनिवार्य रूप से संस्कृत सीखनी पड़ती

है। उन विद्यालयों का नाम St. James Independent School for Boys और for Girls है। वे अपना वार्षिक समारम्भ संस्कृत वैदिक प्रार्थना से आरम्भ करते हैं।

Harrow, wealdstone, Middlesex, United Kingdom में 19 Spencer Road पर The Academy of Vedic Heritage है। वहाँ भी संस्कृत पढ़ना अनिवार्य है।

विश्व के हर देश-प्रदेश में इस प्रकार संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान, आर्य वैदिक साहित्य का अध्ययन तथा वैदिक आदर्शों का पुनरु जीवन प्रस्थापित करना आवश्यक है।

मनु तथा पाणिनी

समाज में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति का आचरण कैसा हो इसके सम्बन्ध में में कृतयुग के आरम्भ से ही एक धर्मनीति शास्त्र बनाना आवश्यक था। जैसे किसी देश का कारोबार तथा शासन चलाने का संविधान होता है। अत: मनुस्मृति कृतयुग के आरम्भ में बनी। प्रत्येक मन्वन्तर की बदलती परिस्थिति के अनुसार मनुस्मृति के विभिन्न संस्करण होते रहे। इस प्रकार अभी सातवें मन्वन्तर का संस्करण प्रचलित है। उसमें भी कलियुग के प्रारम्भ से कई बार मिलावट होती रही या पाठभेद करा दिए गए। तथापि मनुस्मृति का सूत्र कृतयुग के आरम्भ से प्राप्त समझना चाहिए।

इसी प्रकार पाणिनि को भी एक व्यक्ति मानने के बजाय एक व्याकरणपीठ माना जाना चाहिए; जो कृतयुग के आरम्भ से बना हुआ था और जिसके अध्यक्ष सारे पाणिनि ही कहलाते थे। संस्कृत के विद्वान इस शोध पर विचार करें।

यूरोपीय रामायण का शोध

आधुनिक काल में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण परिषदों के दो-तीन अधिवेशन हो चुके हैं तथापि उनमें सारे विद्वान उसी घिसी-पिटी बात को दोहराते रहे हैं कि रामायण भारत का ग्रन्थ; उसकी घटनाएँ भारत में घटी और भारत तथा पूर्ववर्ती देशों में ही रामायण ज्ञात है।

ऊपर कही धारणाओं में इस ग्रन्थ में कई आवश्यक सुधार हमने सुझाए हैं, जैसे (१) रामायण कोई कपोलकल्पित कथा नहीं अपितु त्रेता-युग के एक महान् राजनयिक संघर्ष का इतिहास है। (२) उसमें निर्देशित वानर, राक्षस, रीछ, पक्षी सारे उस समय के मानव ही थे। युद्धमान अवस्था में ऐसे सांकेतिक या लाक्षणिक नाम मानवों को आज भी दिए जाते हैं। (३) रामायणकालीन संघर्ष त्रैलोक्य के स्वामित्व के लिए या कम-से-कम पृथ्वी की प्रभुता के लिए होने के कारण रामायण की घटना आधुनिक भारत तथा आधुनिक श्रीलंका तक ही सीमित रही, ऐसा मानना गलत है। (४) सीता पर राजद्रोह का आरोप था जिसका कलंक अन्त तक उसका जीवन त्रस्त करता रहा, (५) रामायण सारे विश्व का ललामभूत काव्य था। अतः वह यूरोप के देशों में भी अत्यन्त श्रद्धा, आदर और भक्तिभाव से पढ़ा जाता था।

पुराण कथाओं का भी विश्वप्रसार था

जिस प्रकार रामायण सारे देशों में प्रसृत थी उसी प्रकार पौराणिक कथाएँ भी केवल भारत की ही नहीं अपितु सारे विश्व की विरासत हैं। इसके प्रमाण में हमने George Dunozil के Mythes-e Epopee नाम के तीन खण्डों के ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

भाषा सम्बन्धी गुत्थी सुलझाई

भाषा कैसे निर्माण हुई ? पहली भाषा कौन-सी थी ? विश्व की विविध भाषाएँ कैसे बनीं ? आदि प्रश्नों के आजतक किसी ने समाधानकारक उत्तर नहीं दिए थे। इस ग्रन्थ में उन सारे प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर हमने आधुनिक युग में प्रथम बार प्रस्तुत किए हैं। मानव अपनी भाषा नहीं बना सकता। पहली भाषा संस्कृत देवदत्त देववाणी वेदों के साथ आई। महाभारतीय युद्ध के विनाश के कारण संस्कृत भाषा का विघटन होकर अन्य भाषाएँ बनीं।

आर्य और द्रविड़ समस्या सुलझाई

अंग्रेजों के प्रचार के कारण द्रविड़ों को अभी भी अधिकतर विद्वान

एक-दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी मानते आ रहे हैं। हमने इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया है कि द्रविड़ लोग तो आर्य संस्कृति के रक्षक, अधीक्षक, नियन्त्रक आदि होने के नाते वैदिक सभ्यता के अभिन्न अंग हैं।

इतिहास यह शास्त्र है

आजकल के महाविद्यालयों में Social Sciences यानी सामाजिक शास्त्रों के विभाग में इतिहास का अन्तर्भाव होता है ? तथापि यदि अध्यापकों से पूछा जाए कि क्या इतिहास शास्त्रीय विषय है तो लगभग सारे ही कहेंगे कि इतिहास शास्त्रीय विषय नहीं है। किन्तु अगले भाग में हम सिद्ध करेंगे कि इतिहास यदि सत्य लिखा गया हो, यदि उसे विकृत नहीं किया गया हो, उसमें हेरा-फेरी नहीं की गई हो तो इतिहास के सिद्धान्त, निष्कर्ष आदि गणितीय हिसाब की तरह नापे-तोले-जाँचे जा सकते हैं। इतना ही नहीं अपितु सत्य इतिहास से भविष्य भी कहा जा सकता है।

नए सिद्धान्त—नए निष्कर्ष—नए नियम

इस ग्रन्थ में समय-समय पर हमने जो विवेचन किया है उसमें हमने इतिहास के नए-नए सिद्धान्त, नए निष्कर्ष तथा संशोधन, विश्लेषण, लेखन अध्यापन आदि के नए नियम पाठकों को विदित कराए हैं।

नए प्रमाण तथा नए तर्क

विश्व में ढेर-के-ढेर ऐतिहासिक प्रमाण होते हुए भी किसी विद्वान के द्वारा ध्यान न दिए जाने के कारण इतिहास का कितना विशाल भाग अज्ञात रह गया तथा हेरा-फेरी, काट-छांट या सबूतों का उल्टा अर्थ लगाने के कारण इतिहास की किस प्रकार तोड़-मरोड़ हुई इसके हमने समय-समय पर इस ग्रन्थ में उदाहरण दिए हैं।

इतिहास पर खोजपूर्ण रचनाएं

श्री गुरुदत्त

भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास

इतिहास में भारतीय परम्पराएं

पुरुषोत्तम नागेश ओक

भारत का द्वितीय संग्राम .. अर्थात्

आज़ाद हिन्द फौज की कहानी . सचित्र. रंगीन.

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय

ताज महल मन्दिर भवन है

ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है

भारत में मुस्लिम सुल्तान भाग - 2 भाग

आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है

दिल्ली का लाल किला लाल कोट है

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास - 4 भाग

फतहपुर सीकरी हिन्दु नगर है

लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं

क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है ?

हास्यास्पद अंग्रेज़ी भाषा

क्रिश्चियनिटी कृष्ण नीति है

कौन कहता है अकबर महान था?

तेजपाल सिंह धामा

पृथ्वीराज चौहान एक पराजित विजेता

अखण्ड आर्यवर्त - चन्द्रगुप्त चाणक्य कथा

पंक से पंकज अर्थात महर्षि वालमिकी कथामृत

अजेय अग्नि - आत्मकथा चित्तौड़ की

अग्नि की लपटें - महारानी पद्मिनी की कथा

मनुर्भव अर्थात् विजयी विश्व हिन्दुत्व हमारा

हमारी विरासत (दिव्य भारत का गौरवशाली इतिहास)

गौ का गौरव

पुरुषोत्तम नागेश ओक की खोजपूर्ण रचनाएं

- भारत का द्वितीय स्वतन्त्र्य समर
- भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
- विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
- ताजमहल मन्दिर भवन है
- ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
- भारत में मुस्लिम सुल्तान
- आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है
- दिल्ली का लाल किला लाल कोट है
- वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास
- फतहपुर सीकरी हिन्दू नगर है
- लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
- क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है?
- हास्यास्पद अंग्रेजी भाषा
- क्रिश्चियनिटी कृष्ण-नीति है
- कौन कहता है अकबर महान था?

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 23551344